काव्यांग-कौमुदी

(तृतीय कला)

लेखक
विश्वनाथप्रसाद मिश्र
प्राध्यापक काशी विश्वविद्यालय

प्रकाशक
नंदकिशोर ऐंड ब्रदर्स
वाराणसी

प्रकाशक
नंदकिशोर ऐंड ब्रदर्स
बुकसेलर्स, बनारस सिटी ।

संवत् २०१४
तृतीय संस्करण
२१००
मूल्य ३।)

मुद्रक
रामनिधि त्रिपाठी
मायापति प्रेस, मध्यमेश्वर, वाराणसी ।

काव्यरीति के उन आचार्यों

की

सेवा में

जो साधारण रचयिताओं के
गुण एवम् असाधारण
रचयिताओं के दोष
प्रकट करने
में हिचकते
नहीं।

आभास

'कौमुदी' की 'तृतीय कला' भारतीय विश्वविद्यालयों की बी० ए० परीक्षा की समकक्ष सभी परीक्षाओं में काम आ सकती है। इसमें नाटक, शब्दशक्ति और दोष के प्रकरण बढ़ाए गए हैं तथा अन्य विषयों को विकसित रूप, भाषा एवम् शैली के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसमें 'कविशिक्षा' की कुछ बाते और जोड़ देने का विचार था, पर कलेवर बढ़ता देखकर उन्हें रहने दिया गया। इस भाग मे रीतिशास्त्र के सभी प्रमुख विषय आ गए हैं। जिन विषयों एवम् उपविषयों से विद्यार्थियों को काम प्रायः नहीं पड़ता वे रहने दिए गए हैं। इसी से इसमें फालतू अलंकार नहीं जोड़े गए और विषय को दुर्बोधता से बचाने के लिए भेद-प्रभेदों को बड़ी सरलता से एवम् उपयोग मे आने भर समझाया गया है।

इस भाग मे शास्त्रीय ढंग एवम् तर्कपद्धति के अनुसार आधुनिक शैली से विषय प्रस्तुत किए गए है, क्योंकि आगे चल-कर विद्यार्थियो को रीतिशास्त्र मे उस पद्धति से अवश्य सामना करना पड़ेगा। लक्षणों के स्वरूप पर अधिक ध्यान रखने के कारण उन्हें गद्य मे ही दिया गया है। पद्यवाले लक्षण—जो

नीचे की कक्षाओं के लिए याद करने की सुविधा के विचार से रखे गए थे—हटा दिए गए है। कक्षा के अनुरूप ही उदाहरण भी जुटाए गए है। पुरानी भाषा के ही नहीं, आधुनिक भाषा (खड़ी बोली) के भी उदाहरण प्रचुर परिमाण में रखे गए है और जहाँ तक हो सका है पूरे पद्य दिए गए है। उदाहरण प्रायः लक्ष्य ग्रंथों से ही चुने गए है। उदाहरणों को पुस्तकों से खोज-कर रखा गया है, यह नहीं कि पुरानी भाषा के लक्षण-ग्रंथों के उदाहरणों को खड़ी बोली का अंगा पहनाकर बैठा दिया गया हो। यही नहीं, प्रथम भाग के 'प्राक्कथन' में जो जो प्रतिज्ञाएँ की गई थीं उनका यथाशक्ति सर्वत्र पालन किया गया है।

इस 'कला' के प्रकाशित होने में कुछ विलंब अवश्य हो गया। उसके लिए क्षमा माँग लेने से भी क्या! इधर 'कौमुदी' की देखीदेखा इसी ढंग से और इन्हीं विषयों पर और लोगों ने भी 'प्रकाश' डालने का प्रयत्न किया है। पर प्राचीन तर्कपद्धति पर दृष्टि न रखने से उनमें कहीं कहीं अर्थ का अनर्थ भी देखा जाता है।

अंत में हम उन सभी ग्रंथकारों के प्रति अत्यंत विनम्र भाव से कृतज्ञता स्वीकार करते है जिनके ग्रंथों से इसके निर्माण में किसी प्रकार की—छोटी या बड़ी—सहायता मिली है।

भारतेंदु जयंती, १६६१ }
ब्रह्मनाल, काशी। }

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

द्वितीय संस्करण

'काव्यांग-कौमुदी' की देखादेखी छात्रोपयोगी अनेक पुस्तकें निकलीं। नाम तक पर्यायवाची रखे गए। यह इसके लोकग्राह्य होने का प्रमाण है। पर शास्त्रचरचा धीरे-धीरे उठती जा रही है यह खटके की बात है। छात्रों में ही नहीं अध्यापकों मे भी शास्त्र के अभ्यास की रुचि क्षीण हो रही है।

इस संस्करण में यत्र-तत्र ही कुछ परिवर्तन किए गए हैं, विशेषतया आरंभिक अंश में।

वाणी-वितान भवन
ब्रह्मनाल, काशी
निर्जला, २००७

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

तृतीय संस्करण

यह द्वितीय संस्करण की आवृत्ति मात्र है। पर यथास्थान उक्तानुक्त को स्पष्ट करने के लिए समुचित संशोधन भी किया गया है।

वाणी-वितान भवन
ब्रह्मनाल, वाराणसी–१
निर्जला २०१४,

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

अनुक्रमणिका

षष्ठ प्रकाश

सप्तम प्रकाश

अष्टम प्रकाश

काव्यांग-कौमुदी

(तृतीय कला)

प्रथम प्रकाश

काव्य-विवेचन

(१) काव्य-लक्षण

रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाले शब्द को काव्य कहते हैं ।*

उक्त लक्षण मे 'रमणीय' कहने का अभिप्राय 'लोकोत्तर आनंद उत्पन्न करनेवाले ज्ञान के अनुभव' से है। आनंद या आह्लाद को चमत्कार का पर्यायवाची समझना चाहिए। यह आनंद लोक की प्रकृति के अनुरूप नहीं होता इसी से इसे 'लोकोत्तर' कहा गया है। यदि कोई किसी से आकर कहे कि 'तुम्हारे पुत्र हुआ अथवा तुम्हें एक लाख रुपये मिले है' तो इसका आनंद केवल उसी व्यक्ति को होगा। पर काव्य में ऐसी बात नहीं है, यहाँ हम दूसरों के दुख से दुखी और सुख से सुखी होते हैं, इसी से इसके लिए 'लोकोत्तर' शब्द लिखा गया है।

काव्य को सब प्रकार से निर्दोष होना चाहिए। उसमें गुणों की योजना हो और यथावश्यक अलंकारों का भी प्रयोग

---

* रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्द काव्यम्—रसगंगाधर ।

किया जाय।* किसी के शरीर में दोष हो तो उससे अरुचि उत्पन्न होती है। इसी प्रकार काव्य में दोषों के आ जाने से वह यथावश्यक आनंद नहीं उत्पन्न कर सकता। किसी गुणी मनुष्य के प्रति जिस प्रकार श्रद्धा का भाव जागरित होता है उसी प्रकार गुणों के रहने से काव्य में भी अभिरुचि उत्पन्न होती है। जिस प्रकार गहनों के कारण सुंदर व्यक्ति की सुंदरता और खिल उठती है उसी प्रकार अलंकार के प्रयोग से काव्य में भी सौंदर्य बढ़ जाता है; पर यह नहीं कहा जा सकता कि अलंकार के बिना काव्य हो ही नहीं सकता, कहीं-कहीं बिना अलंकार के भी काव्य होता है। क्योंकि स्थूल अलंकारों अर्थात् गहनों से केवल सुंदरता भली जान पड़ने लगती है, वे ही सुंदरता नहीं हैं। वे शोभा के बाहरी धर्म हैं। ठीक इसी प्रकार काव्य के अलंकारों को भी समझना चाहिए। वे भी काव्य के बाह्य धर्म हैं। इसी से यदि अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग कर दिया जाय तो काव्य के लिए वे भार से ही प्रतीत होते हैं।

(२) काव्य हेतु

काव्य करनेवाले के लिए शक्ति, निपुणता और अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है।† शक्ति उस प्रतिभा को कहते हैं जिसके द्वारा काव्य करनेवाला नई-नई उद्भावनाएँ किया करता है। निपुणता लोक, शास्त्र और काव्य के अवलोकन से आती

---

* तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि—काव्यप्रकाश।

† शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥—वही।

है। अभ्यास करने के लिए किसी सहृदय काव्यमर्मज्ञ का सहारा लेना पड़ता है। जिनमें उक्त तीनों गुण परिपूर्ण होते है वे वड़े अच्छे कवि निकलते है। अभ्यास को भी कवि होने के लिए आवश्यक लिखने से इस सिद्धांत का विरोध नहीं होता कि कवि बनाए नहीं जा सकते, उनमे कवित्व-गुण सहज होता है। उक्त तीन गुणों में शक्ति वही सहज गुण है।

(३) काव्य के भेद

लेखन-शैली, स्वरूप और रमणीयता के विचार से काव्य के भेद तीन ढंग से किए गए हैं। लेखन-शैली के अनुसार विचार करें तो काव्य-रचना दो प्रकार की शब्दावली द्वारा होती है—गद्य और पद्य। गद्य और पद्य के मिश्रण से जो रचना होगी उसे मिश्र काव्य या चंपू कहेंगे। गद्य-काव्य के अंतर्गत उपन्यास, आख्यायिका, निवंध आदि सभी आ जाते हैं। यदि स्वरूप के अनुसार विचार करें तो काव्य के दो भेद किए जा सकते है—श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। जिस काव्य का आनंद केवल कानों से सुनकर या पढ़कर मिले वह श्रव्य काव्य और जिसका वास्तविक चमत्कार रंगमंच पर खेलकर दिखाए जाने से प्रकट हो वह दृश्य काव्य है। श्रव्य काव्य दो प्रकार के होते है—एक सबंध, दूसरे निर्वंध। 'बंध' का अर्थ है 'कथा' का बंधन। सबंध के भी प्रकर्ष और लाघव के विचार से दो भेद हो सकते है—प्रबंध और निबंध। प्रबंध के भी अखंड जीवन और खंड जीवन की अभिव्यक्ति की दृष्टि से दो प्रकार माने जाते हैं—महाकाव्य और खंडकाव्य।

सबंध काव्य की रचना बंध (कथा के अवयवों के सम्यक् बंधान) के अधीन होती है। उसका प्रत्येक छंद एक-दूसरे से संबद्ध होता है। पर निर्बंध काव्य का प्रत्येक छंद स्वतंत्र होता है, और अपने विषय का ज्ञान कराने अथवा रस या भाव का संचार करने मे स्वतः समर्थ होता है। इसे मुक्तक या प्रकीर्ण भी कहते है।*

महाकाव्य में विस्तृत जीवनवृत्त लिया जाता है। लक्षण-ग्रंथों के अनुसार महाकाव्य का नायक उत्कृष्ट गुणो से युक्त होना चाहिए। वह देवता हो अथवा कुलीन नरेश। कहीं-कही अनेक कुलीन नरेश भी नायक हो सकते है। शृंगार, वीर और शांत मे से कोई एक रस प्रधान होना चाहिए, अन्य रसो को गौण रखना चाहिए। कथा या तो इतिहासप्रसिद्ध हो अथवा लोकप्रसिद्ध जैसे—पुराणो की कथाएँ। इसमे चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) मे से कोई एक फल हो। इसमे छोटे-बड़े आठ से अधिक सर्ग (अध्याय) हो। प्रत्येक सर्ग में एक छंद का व्यवहार हो, पर सर्ग के अंत मे दो-एक पद्यो में छंद बदल देना चाहिए। सर्ग के अंत में आगे का कथा की सूचना भी दे देनी चाहिए। इसमे संध्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रभात, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संयोग-वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, युद्ध, यात्रा, विवाह, मंत्र, पुत्र, अभ्युदय आदि का यथाशक्ति सांगोपांग वर्णन होना चाहिए।

खंडकाव्य में जीवन के नाना रूपो का सम्यक् निरूपण नहीं होता। उसमें जीवन के किसी विशेष अंग का ही चित्रण किया जाता है। यद्यपि उसमे चित्रण का नियोजन होता महा-

---

* मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्—अग्निपुराण।

काव्य के ही ढंग पर है,* पर उसमें जिस खंडजीवन का निरूपण किया जाता है वह स्वतः पूर्ण होता है। इसलिए महाकाव्य के किसी अंश को खंडकाव्य नहीं कहा जा सकता।

सूचना—महाकाव्य और खंडकाव्य के बीच का भी एक प्रबंध-काव्य होता है जिसमें किसी एक प्रयोजन (एकार्थ) की सिद्धि के लिए जीवन के एकाधिक अंगों का बंधान होता है।† इसे संस्कृत में 'काव्य' कहा गया है, पर हिंदी में स्पष्टता के लिए इसे 'एकार्थ काव्य' कहना चाहिए; प्रियप्रवास, गंगावतरण, साकेत, कामायनी आदि इस प्रकार 'एकार्थ काव्य' ही ठहरते है।

निबंध काव्य या काव्यनिबंध में कोई लघुवृत्त या प्रसंग लेकर अनेक छंदों मे निर्माण किया जाता है। हिंदी में दानलीला, मानलीला आदि पर लघुकाय पोथियाँ बहुत सी लिखी गई। आधुनिक युग में 'प्रसाद' आदि अनेक कवियों ने छोटे-छोटे प्रसंगो को लेकर निबंध काव्य लिखे हैं। 'प्रसाद' की कविता 'प्रलय की छाया' इसका अच्छा उदाहरण है।

निर्बंध या मुक्तक काव्य के भी गीततत्त्व की अल्पाधिक योजना की दृष्टि से तीन भेद किए जा सकते हैं—अल्पगीत, गीत और प्रगीत। संस्कृत के वर्णवृत्त या हिंदी के मात्रिक छंदों में जो रचना की जाती है या इसी प्रकार नवीन छंदों की भी उद्भावना करके जो एक ही छंद में स्वच्छंद निर्माण किया जाता है उसमें 'गीततत्त्व' अल्प मात्रा में ही रहता है। इसलिए उसे अल्पगीत कहा जा सकता है। संगीतशास्त्र की विलावल, रामकली आदि राग-

---

* खंडकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च—साहित्यदर्पण।

† भाषा विभाषानियमात्काव्यं सर्गसमुत्थितम्।
एकार्थप्रवणैः पद्यैः संधिसामग्र्यवर्जितम्॥—वही।

रागिनियों को ध्यान में रखकर जो रचना होती है उसमें 'गीत-तत्त्व' भरपूर रहता है। इससे उसे गीत कहना चाहिए। जैसे सूरदास के गीत। इधर हिंदी में नई चाल के ऐसे गीत रहते हैं जिनमें गीततत्त्व के प्रकर्ष का विचार रखा जाता है। गीतों की भाँति इनमें टेक तो रहती है, इनमें आत्मपक्ष का प्राधान्य और अनुभूति की अतिशयता का भी ध्यान रखा जाता है इन्हें प्रगीत (लिरिक) कहते हैं। जैसे महादेवी वर्मा की दीपशिखा के प्रगीत।

रमणीयता की दृष्टि से विचार करें तो काव्य के तीन भेद हो सकते हैं। शब्द के कोश-व्याकरणादि-संमत प्रत्यक्ष संकेतित अर्थ को वाच्यार्थ कहते हैं। शब्द के इस प्रथम मुख्य अर्थ के अतिरिक्त उससे दूसरा भिन्न अर्थ भी बहुधा निकलता है जिसे व्यंग्यार्थ कहते हैं। वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ के न्यूनाधिक्य से ही काव्य की तीन श्रेणियाँ की गई हैं—(१) उत्तम, (२) मध्यम, (३) अधम (अवर)। जहाँ व्यंग्यार्थ की प्रधानता हो उसे उत्तम काव्य कहेंगे। इसी का नाम ध्वनि है। यह प्रथम श्रेणी का काव्य है। जहाँ वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ दोनों समान कोटि के हों अथवा व्यंग्यार्थ से वाच्यार्थ अच्छा हो वहाँ गुणीभूत व्यंग्य होगा। यह मध्यम श्रेणी का काव्य है। जिससे वाच्यार्थ ही वाच्यार्थ हो व्यंग्यार्थ नाम मात्र का हो अथवा न हो, वह अवर काव्य (चित्र या अलंकार) कहलाता है। यह तीसरी श्रेणी का काव्य है।

उत्तम काव्य (ध्वनि)

उदाहरण (चौपाई)

कह कपि—'धर्मसीलता तोरी।
हमहुँ सुनी कृत परतिय चोरी।

धर्मसीलता तव जग जागी ।
पावा दरस हमहुँ बड़भागी' ॥

जब रावण अंगद को यह समझाने लगा कि जिसने तुम्हारे पिता को मारा उसी के तुम दूत बनकर आए हो, तुम्हें कुछ तो धर्म और नीति का विचार करना था तब अंगद ने कहा कि हाँ-हाँ, आपकी धर्मशीलता मैंने सुनी है। आपने दूसरे की स्त्री चुराकर अपने घर में रख ली है। आप ऐसे धर्मशील व्यक्तियों के दर्शन मुझे बड़े भाग्य से मिले। यहाँ शब्दों का वाच्यार्थ तो यही है। पर व्यंग्यार्थ यह है कि तुम धर्म को कुछ भी नहीं जानते। दूसरे की स्त्री चुराने से तुम बड़े भारी पापी हो गए हो। तुम्हारे ऐसे लोगों का मुँह देखना तक दुर्भाग्य की बात है। यह व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से बढ़कर है।

मध्यम काव्य (गुणीभूत व्यंग्य)

उदाहरण—(दोहा)

मानौ सिर धरि लंकपति श्रीभृगुपति की बात ।
तुम करिहौ तो करहिंगे वेऊ द्विज उतपात ॥

राक्षसों के उपद्रव से क्रुद्ध होकर परशुराम ने रावण के यहाँ संदेश भेजा है। परशुराम का दूत रावण से कह रहा है कि लंकेश ! भृगुपति की बात मानकर उत्पात मचाना छोड़ दो। यदि तुम ब्राह्मणों को भी दुःख दोगे तो वे ब्राह्मण है। 'उत्पात करने पर राक्षसो के कुल का संहार कर देंगे' यह व्यंग्य हुआ। पर यह व्यंग्य इस वाच्यार्थ से बढ़कर नहीं है कि तुम ब्राह्मण हो तो वे भी ब्राह्मण है। इसलिए गुणीभूत व्यंग्य है।

अवर काव्य

उदाहरण (कवित्त)

कूलन[1] मैं केलिन मैं कुंजन कछारन[2] मैं,
क्यारिन मैं कलित कलीन किलकंत है।
कहै 'पद्माकर' परागन मै पौनहू मैं,
पानन मैं पिक[3] मैं पलासन पगंत[4] है।
द्वार मै दिसान मैं दुनी मैं देस-देसन मैं,
देखौ दीप-दीपन मैं दीपत दिगंत है।
बीथिन मैं ब्रज मै नवेलिन मै बेलिन मै,
बनन मैं बागन मैं बगरौ बसंत है॥

यहाँ पहली पंक्ति में प्रत्येक शब्द 'क' अक्षर से आरंभ होता है। इसी प्रकार दूसरे चरण में 'प', तीसरे में 'द' और चौथे मे 'व' से आरंभ होनेवाले ही पद अधिक रखे गए हैं। वाच्यार्थ के अतिरिक्त इस कवित्त में यही चमत्कार विशेष है, व्यंग्य कुछ भी नहीं है। इसलिए यह अवर काव्य है।

---

१ किनारा। २ तट का मैदान। ३ कोयल। ४ पगा हुआ, छाया।

काव्य
(शैली)
(स्वरूप)
(रमणीयता)
गद्य
पद्य
मिश्र
उत्तम
मध्यम
अधम
श्रव्य
दृश्य
सबंध
निर्बंध
प्रबंध
निबंध
महाकाव्य
एकार्थकाव्य
खंडकाव्य
अल्पगीत
गीत
प्रगीत
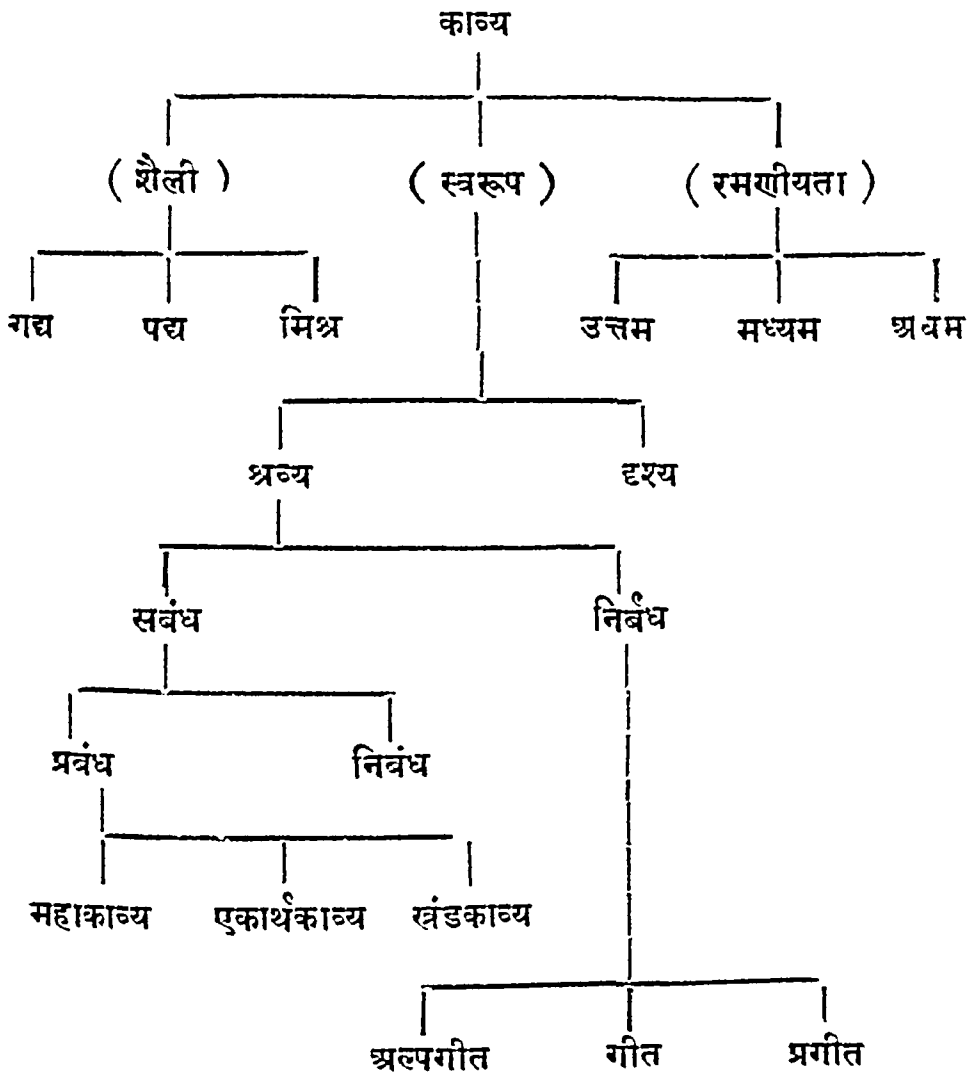
द्वितीय प्रकाश

दृश्य काव्य

(१) रूपक

जो काव्य अभिनय के द्वारा दिखाया भी जा सके वह दृश्य काव्य कहलाता है। अभिनय अवस्था के अनुकरण का नाम है। यह अनुकरण आंगिक (अंग अर्थात् देह के द्वारा), वाचिक (वचन के द्वारा), आहार्य (भूषण, वस्त्रादि के द्वारा), और सात्त्विक (स्तंभ, स्वेद, रोमांचादि के द्वारा) होता है। इन चार प्रकार के अनुकरणों द्वारा नट किसी व्यक्ति का रूप धारण कर रंगमंच पर खेल दिखाता है अर्थात् नट के ऊपर उस व्यक्ति के रूप का आरोप किया जाता है। इसी से दृश्य काव्य को 'रूपक' कहते हैं।* हिंदी में रूपक के लिए साधारणतया 'नाटक' शब्द का व्यवहार होता है, जो अँगरेजी के ड्रामा का पर्यायवाची होकर प्रयुक्त होता है।

रूपक के दस भेद होते हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रह-

* रूपारोपात्तु रूपकम्—साहित्यदर्पण।

सन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक, ईहामृग। जिनमें से सबसे मुख्य 'नाटक' है।

(२) कथावस्तु

नाटकों में तीन तत्त्व माने गए हैं--वस्तु, नेता और रस। नाटक की कथा का नाम वस्तु है। इसके दो भेद किए गए हैं—आधिकारिक और प्रासंगिक। नाटक के फल के भोग का नाम 'अधिकार' होता है और इस अधिकार के भोगनेवाले को 'अधिकारी' या नायक कहते है। इसी अधिकारी से संबंध रखनेवाली मूलकथा का नाम आधिकारिक वस्तु है। इस आधि-कारिक वस्तु की सहायता करनेवाली प्रसंगतः आई हुई कथा का नाम प्रासंगिक वस्तु है। जैसे रामचरित में रामचंद्र से संबंध रखनेवाली रावण को मारने आदि की कथा तो आधिकारिक है, पर सुग्रीव की कथा प्रासंगिक है। प्रासंगिक कथा के भी दो भेद किए गए हैं—पताका और प्रकरी। बड़ी प्रासंगिक कथा को पताका कहते है और छोटी को प्रकरी। जैसे रामकथा में सुग्रीव की कथा पताका और 'श्रमणकुमार' की कथा प्रकटी है। पताका द्वारा या तो कथा आगे बढ़ाई जाती है या उसे विस्तृत होने से रोका जाता है। इसके द्वारा रोचकता का भी समावेश होता है। कभी-कभी इसका विस्तार इतना कर दिया जाता है कि यह नाटक के समाप्त होने तक बराबर चलती रहती है। प्रकरी मे विस्तार बिलकुल नहीं होता और इसमें प्रधान पात्रों का समा-वेश नहीं किया जाता।

उक्त दो प्रकार की प्रासंगिक कथाओं के अतिरिक्त किसी नाटक मे कथावस्तु के विकास के लिए तीन बातें और होती है। इनका नाम है—बीज, बिदु और कार्य। बीज कथा की वह स्थिति

है जिसका उल्लेख संक्षेप में किया जाता है और जो वस्तु के अंकुरित करने में पूर्ण सहायक होती है। अर्थात् बीज किसी पौधे के अंकुरित होने में जो कार्य करता है, ठीक वही कार्य यह बीज भी करता है। यह कारण होता है और इसका विकास कई रूपों में होता है। विंदु उस स्थिति में होता है जब किसी दूसरी घटना के घटित होने से वस्तु में विच्छिन्नता आ जाती है। विंदु इस विच्छेद के दूर करने का प्रयत्न करता है और घटनाओं को जोड़े रहने का कार्य करता है। जैसे जल में तैल विंदु गिरकर फैल जाता है वैसे ही कथा के फैल जाने के कारण इसे विंदु कहते है। कार्य नाटक के फल को कहते हैं। इसकी प्राप्ति के पश्चात् कथा का अंत हो जाता है और नाटक भी समाप्त हो जाता है। पाँचो बीज, विंदु, पताका, प्रकरी और कार्य अर्थप्रकृति कहलाते हैं अर्थात् ये कथा के अर्थ (प्रयोजन) के स्वाभाविक धर्म हैं।

इनके अतिरिक्त वस्तु की पाँच अवस्थाएँ भी होती है–आरंभ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। नाटक में एक उद्देश्य होता है, उसी के उन्मुख होकर कथा का विकास होता है, इसे महत्कार्य कहते है। जहाँ से इस महत्कार्य के संपादन अथवा प्राप्त करने का कार्य चलता है उसे आरंभ कहते है। इस कार्य के प्राप्त करने मे जब नायक सचेष्ट होता है तो उस अवस्था को यत्न कहते है। उपायादि करने पर जब उसकी प्राप्ति की आशा होने लगती है तो उस दशा का नाम प्राप्त्याशा है। इसके पश्चात् प्राप्ति का निश्चय हो जाता है, इस अवस्था का नाम नियताप्ति है। तदनंतर फलागम या फलप्राप्ति होती है और नाटक की समाप्ति हो जाती है।

उक्त पाँच अवस्थाओ को अर्थप्रकृति से जोड़ने के लिए संधियो

का विधान होता है। ये संधियाँ भी पाँच है। ये पाँचों संधियाँ अर्थ-प्रकृतियों को उनके अनुरूप अवस्थाओं से जोड़ती हैं। इन संधियों का नाम है—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श, निर्वहण (अथवा उपसंहार)। मुखसंधि बीज और आरंभ को जोड़ती है। यहाँ नाटक में प्रतिपादित रस के साथ बीज बो दिया जाता है। प्रतिमुख संधि में यत्न अपनी पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। मुखसंधि में बोया हुआ बीज अंकुरित हो जाता है, कथा विच्छिन्न होकर फैल जाती है। गर्भसंधि में ईप्सित वस्तु की प्राप्ति अथवा अप्राप्ति में उसकी प्राप्ति के संकेत मिलते हैं। प्राप्त्याशा का अंकुरित पौधा और अधिक विकसित होता है। इस संधि मे नाना प्रकार की अड़चलें आती है, पर कथा की अवस्थिति बनी रहती है। अवमर्श संधि में उक्त पौधे का अधिक विकास होता है और ईप्सितार्थ की प्राप्ति निश्चित हो जाती है। इसमे फल की प्राप्ति निश्चित हो जाने पर भी फलागम होने के लिए बीच में अनेक विघ्न उपस्थित हो जाते हैं। निर्वहण (उपसंहृति) संधि में उक्त सभी विभागों का अन्वय होता है और महत्कार्य-रूप फल की प्राप्ति होती है।
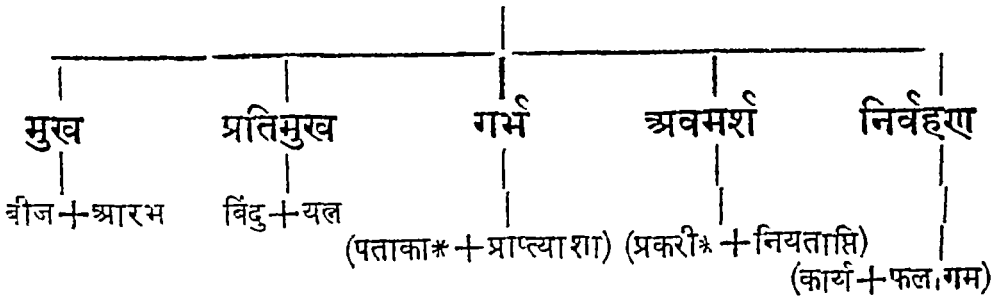
* यह वैकल्पिक है। यहाँ रह भी सकती है और नहीं भी।

कथा ऐतिहासिक और कल्पित अथवा मिश्र होती है। इसका ग्रहण दो प्रकार से किया जाता है। एक तो कुछ घटनाओं की केवल सूचना दे दी जाती है और दूसरे वे घटनाएँ जिनका पूर्णतया प्रदर्शन होता है तथा जो दर्शक को विस्तार से दिखाई जाती है। वस्तु को इन दो प्रकारों में बाँट देने का मूल तात्पर्य यह है कि अरोचक अंश दूर हो जाय और रोचक अंश ही अभिनय में समक्ष आए। जिन घटनाओं की सूचना दी जाती है वे कई कारणों से छोड़ दी जाती है। एक तो वे इसलिए छोड़ दी जाती हैं कि कथा में अनावश्यक विस्तार न हो। दूसरे जो बातें रंगमंच के नियमानुसार दिखाने योग्य नहीं है उन्हें भी पाठक प्रकारांतर से जान ले। तीसरे नाटक में अरोचकता का बचाव हो सके। इनका नाम सूच्य है।

इन सूच्य कथाओं का निदर्शन पाँच प्रकार से होता है। इनके नाम विष्कंभ, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य और अंकावतार है। विष्कंभ और प्रवेशक में कम अंतर है। प्रवेशक में नीच पात्रों द्वारा कथा का निर्देश किया जाता है और विष्कंभ में मध्यम पात्रों द्वारा। चूलिका में नेपथ्य (स्वाँगघर) से कथा का निदर्शन होता है। अंकास्य या अंकमुख में किसी अंक की समाप्ति पर आगे आनेवाली कथा का पूरा-पूरा निदर्शन कर दिया जाता है और यह निदर्शन उस अंक के वे पात्र करते है जिनका अभिनय-कर्म अंत में रहता है। इस निदर्शन के बिना आनेवाली कथा अप्रासंगिक और छिन्न-भिन्न ज्ञात होगी। अंकावतार किसी अंक के अंत में रखा जाता है और आगामी अंक का बीजभूत होता है। अगला अंक उसी का अवतार सा होता है। इसमें जो पात्र आते है वे ही अगले अंक में कार्य करते है,

पर निदर्शन के लिए वे पहले ही आकर सूचना दे देते है, वस्तुतः कथा बराबर चलती रहती है।

कथा में कुछ वृत्तियाँ भी होती हैं। वृत्ति से तात्पर्य विशेष प्रकार की चेष्टा से है, जिससे किसी विशेष रस की उत्पत्ति हो। नाटकों में चार वृत्तियाँ मानी गई हैं—(१) कैशिकी, (२) सात्वती, (३) आरभटी और (४) भारती। कैशिकी वृत्ति शृंगार मे, सात्वती वीर में, आरभटी रौद्र और वीभत्स में तथा भारती सब रसो मे प्रयुक्त होती है।

ऊपर कथावस्तु का जो विवेचन किया गया है उसके अतिरिक्त रंगमंच के अभिनय को दृष्टि मे रखते हुए वस्तु का तीन प्रकार से विभाग किया जाता है—(१) सर्वश्राव्य अथवा प्रकाश (२) अश्राव्य अथवा स्वगत (आप ही आप), (३) नियत-श्राव्य। सर्वश्राव्य का तात्पर्य उस वस्तु से है जो रंगमंच पर सभी पात्रों के सुनने की है और अश्राव्य वह है जिसे कोई पात्र अपने मन ही मे कहता है, यह किसी और पात्र के सुनने की नहीं होती। अभिनय करते समय पात्र कुछ मुँह फेरकर धीमे पर स्पष्ट स्वर मे इसे कहता है, जिससे दर्शक अवश्य सुन ले। नियतश्राव्य वह है जिसे कुछ चुने हुए पात्र ही सुनें, और लोग नही। इसके दो भेद किए गए हैं—जनांतिक और अपवारित।

(३) नायक

नेता नायक को कहते हैं। इसका वर्गीकरण तीन प्रकार से किया गया है—कुल से, स्वभाव से और व्यवहार से। कुलानुसार इसके तीन भेद है—(१) दिव्य (देवता), (२) अदिव्य (मनुष्य)

और (३) दिव्यादिव्य (अवतार)। स्वभावानुसार इसके चार भेद किए गए है—(१) धीरोदात्त, (२) धीरललित (३) धीरशांत और (४) धीरोद्धत। संक्षेप में, सुशील और सर्वसद्गुणसंपन्न नायक को धीरोदात्त कहते है। विलासी और विनोदशील व्यक्ति का नाम धीरललित है। धीरशांत सीधे-साधे सभ्य मनुष्य को कहते हैं। अभिमानी और आत्मश्लाघारत नायक को धीरोद्धत कहते है। व्यवहारानुसार भेद शृंगार में ही होते है। उनका नाम दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ है। इसी के अंतर्गत नायक के सखाओ (विदूषक, विट चेट और पीठमर्द) और नायिकाओ (स्वकीया, परकीया और सामान्या) का भी वर्णन किया गया है।

(४) रस

विशेष भाव मे लीन होकर आस्वाद लेना रस है। रस के चार अंग है—(१) स्थायी भाव, (२) विभाव, (३) अनुभाव और (४) संचारी भाव। रस नौ माने गए हैं—शृंगार, हास्य, करुण, वीर, वीभत्स, रौद्र, भयानक, शांत और अद्भुत। इनका वर्णन आगे होगा।

नाटक के तत्त्व
वस्तु
नेता
रस
(श्रृंगार आदि)
कुल
स्वभाव
व्यवहार
दिव्य
अदिव्य
दिव्यादिव्य
उदात्त
ललित
उद्धत
शांत
अनुकूल
दक्षिण
धृष्ट
शठ
(स्वरूप)
(आधार)
(नाट्य)
(विन्यास)
आधिकारिक
प्रासंगिक
प्रख्यात
उत्पाद्य
मिश्र
सर्वश्राव्य
नियतश्राव्य
अश्राव्य
दृश्य
सूच्य
जनांतिक
अपवारित
विष्कंभ
प्रवेशक
चूलिका
अंकास्य
अंकावतार
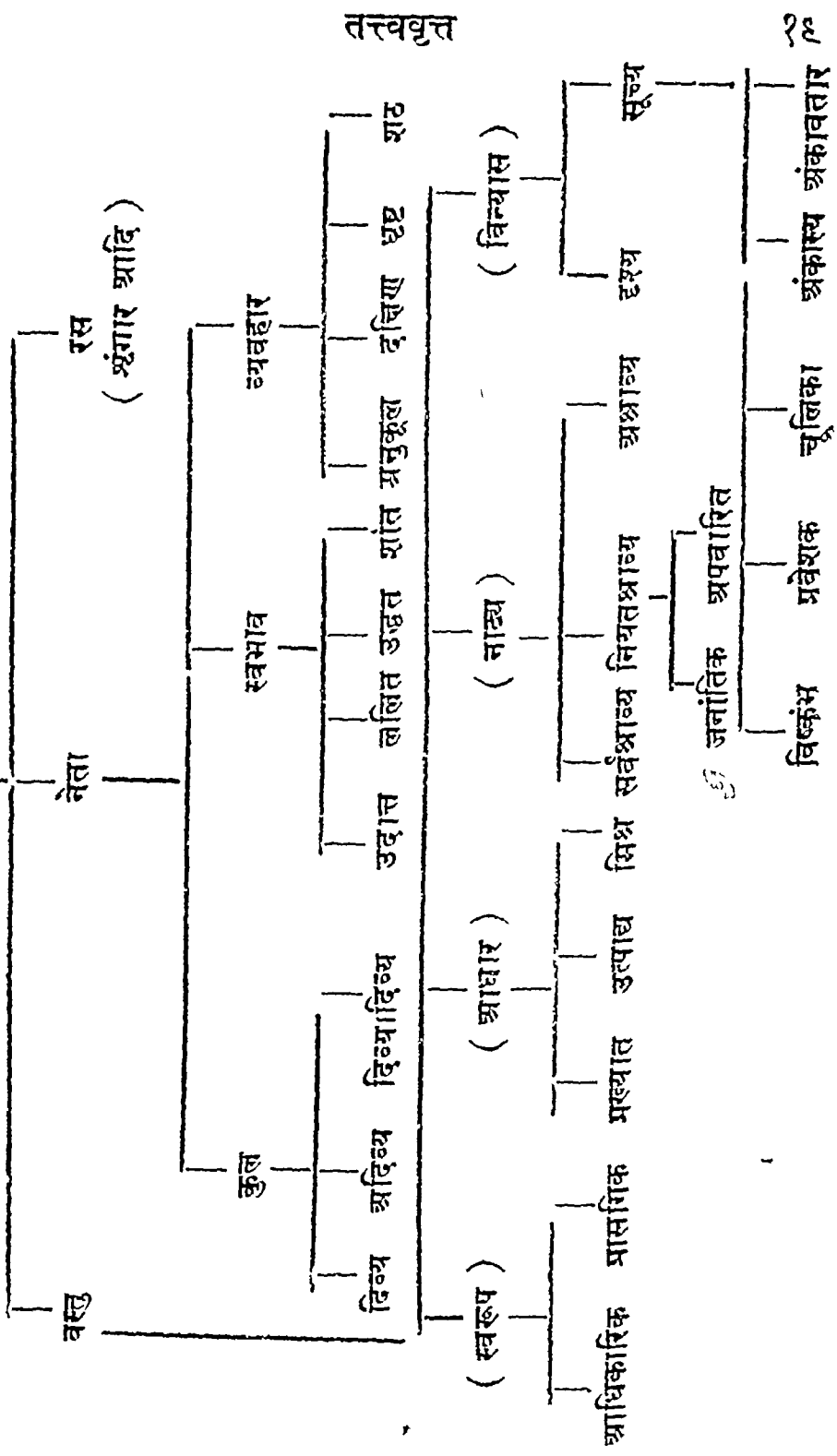
(५) रूपक के भेद

रूपक के मुख्य भेद नाटक मे वस्तु प्रख्यात होनी चाहिए। नायक धीरोदात्त हो और शृंगार एवम् वीर में से कोई एक रस मुख्य हो। नाटक में ५ से लेकर १० तक अंक हो सकते हैं। दस अंक के नाटक को महानाटक कहते है। नाटक की रचना गो की पूँछ के अग्रभाग की भाँति होनी चाहिए। आरंभ में एकाध व्यापक बात को लेकर कथा का विकास करना चाहिए और अंत में सबका समन्वय कर देना चाहिए।

प्रकरण की कथा कविकल्पित होती है। नायक धीरशांत मंत्री, ब्राह्मण या वैश्य होता है। नायिक कुलस्त्री या गणिका होती है। रस आदि नाटक की ही तरह होते है।

भाण की कथा उत्पाद्य होती है। इसमे एक अंक और एक ही पात्र रहता है, जो विट होता है। यह बड़ा चतुर होता है। यह अपनी या दूसरे की धूर्तता का वर्णन करता है। रस इसमें वीर या शृंगार होता है।

प्रहसन मे पाखंडी, तपस्वी या ब्राह्मण नायक होता है। इसकी कथा उत्पाद्य होती है। रस हास्य होता है। यह भाण से मिलता है।

डिम में वस्तु प्रसिद्ध रहती है—पौराणिक या ऐतिहासिक कथा। इसमे देव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूतप्रेतादि १६ उद्धत नायक होते हैं। इसमे हास्य और शृंगार रस नहीं होता। रौद्र रस मुख्य होता है।

व्यायोग मे वस्तु प्रसिद्ध होती है। नायक उद्धत होता है। रसादि डिम की तरह होते हैं।

समवकार में कथा प्रख्यात होती है। नायक देव, असुर आदि १२ होते हैं। रस वीर होता है।

बीथी में कोई उत्तम अथवा मध्यम पुरुष नायक होता है। पात्र एक ही दो रहते हैं। श्रृंगार रस की प्रधानता होती है।

अंक में कथा प्रख्यात होती है। नायक साधारण मनुष्य होते हैं। रस करुण रहता है।

ईहामृग की वस्तु मिश्र होती है। मनुष्य और दिव्य नायक-प्रतिनायक होते हैं, जो धीरोद्धत हों।

रूपकों की भाँति उपरूपक भी होते हैं, जिनके निम्नलिखित १८ प्रकार है—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्यरासक, प्रेखण, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश, भाणिका।

तृतीय प्रकाश

शब्दशक्ति

रमणीयता की दृष्टि से काव्य के जो भेद किए गए हैं उनमें व्यंग्यार्थ और वाच्यार्थ की चरचा आई है। व्यंग्य का स्वरूप समझने के लिए शब्दशक्ति का परिचय होना आवश्यक है। काव्य में जो शब्द प्रयुक्त होते हैं उनका अर्थ जानने के लिए ये शक्तियाँ मानी गई है। शब्द तीन प्रकार के होते हैं—वाचक, लक्षक और व्यंजक। इनसे तीन प्रकार के अर्थ निकलते हैं, जिन्हें क्रमशः वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ कहते हैं। इन अर्थों का ज्ञान करानेवाली तीन शक्तियाँ होती है, जिनका नाम क्रमशः अभिधा, लक्षणा और व्यंजना है।

वाचक शब्द चार प्रकार के होते हैं--(१) जातिवाचक, (२) गुणवाचक, (३) द्रव्यवाचक (यदृच्छा) और (४) क्रियावाचक। जातिवाचक शब्द से पदार्थ का सामान्य ज्ञान होता है; जैसे—मनुष्य, गौ, वृक्ष आदि। गुणवाचक शब्द से किसी जाति की विशेषता ज्ञात होती है; जैसे—साँवला (मनुष्य), धवरी (गाय), सूखा (वृक्ष) आदि। द्रव्यवाचक शब्द से

केवल एक व्यक्ति का बोध होता है; जैसे—रामचंद्र, कामधेनु, कल्पतरु आदि। क्रियावाचक शब्द से वस्तु के साध्य धर्म* का ज्ञान होता है, जैसे—चलना, दौड़ना, उगना आदि।

(१) अभिधा

पूर्वसंचित ज्ञान अथवा व्याकरण, शब्दकोश आदि के आधार पर ऊपर कहे हुए शब्द के सुनते ही जिस अर्थ का सबसे पहले बोध होता है उसे 'वाच्यार्थ' कहते हैं। इस अर्थ को बतलानेवाला शब्द 'वाचक' कहलाता है और जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ ज्ञात होता है उसे 'अभिधा' कहते हैं।

अभिधा शक्ति के द्वारा अनेकार्थवाची शब्दों के एक अर्थ का निर्णय किया जाता है। ऐसे अर्थ का निर्णय करने के बारह ढंग कहे गए हैं—संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, अर्थबल, प्रकरण, सामर्थ्य, औचित्य, देशबल, कालबल अन्यसंनिधि और लिंग। कुछ लोग स्वर और अभिनय को भी अर्थनिर्णय में संमिलित करते है। स्वर का संबंध वेद से है और अभिनय का रंगमंच से।

(१) संयोग—जहाँ अनेकार्थवाची शब्द के एक अर्थ का निर्णय किसी अभिन्न वस्तु के कारण किया जाय, जैसे—

---

* एक क्रिया को सिद्ध करने के लिए कई छोटे-मोटे कार्य आगे-पीछे करने पड़ते है। इनके पूरे उतरने पर ही क्रिया की सिद्धि आश्रित रहती है। ये कार्य देखने में अनेक होने पर भी एक ही प्रधान क्रिया के साधक होते है। अतएव इन सबसे सिद्ध होनेवाली क्रिया को 'वस्तु का साध्य धर्म' कहते हैं। जैसे 'पकाना' क्रिया के लिए जलाना, बेलना, सेकना आदि कई कार्य करने पड़ते हैं। यहाँ 'पकाना' साध्य धर्म है।

'संख-चक्रयुत हरि लसै ।'

'हरि' शब्द के 'विष्णु, इंद्र, सर्प, सिंह' आदि कई अर्थ होते हैं, पर 'शंख और चक्र' के संयोग से यहाँ पर 'हरि' शब्द का अर्थ 'विष्णु' ही होगा, क्योंकि 'शंख-चक्र' उन्हीं के आयुध है।

(२) वियोग—जहाँ अनेकार्थवाचक शब्द के एक अर्थ का निश्चय किसी अभिन्न वस्तु के वियोग से किया जाय, जैसे—

'सोहत नाग न मद बिना ।'

'नाग' शब्द अनेकार्थवाचक है। इसका अर्थ 'हाथी' भी होता है और 'सर्प' भी। पर यहाँ 'मद' के वियोग से 'नाग' का अर्थ 'हाथी' ही होगा, क्योकि मद हाथी में ही पाया जाता है, सर्प में नही।

(३) साहचर्य—जहाॅ पर किसी सहचर के रहने से एक अर्थ का निर्णय किया जाय, जैसे—

'राम कृष्ण ब्रजभूषन[1] जानौ ।'

'राम' शब्द का अर्थ 'परशुराम' 'रामचंद्र' और 'बलराम' होता है। पर यहाॅ इसका अर्थ 'बलराम' ही होगा। क्योंकि श्रीकृष्ण बलराम के ही सहचर थे।

सूचना—संयोग और साहचर्य मे समानता ज्ञात होती है। संस्कृत के आचार्य तो केवल समासभेद से ही संयोग और साहचर्य मे अतर मानते है। पर वस्तुतः दोनों शब्दो के अर्थ पर विचार करने से ज्ञात होता है कि संयोग में वे ही वस्तुऍ आती है जो अभिन्न संबंध रखती है, पर साहचर्य में अभिन्न संबध अपेक्षित नहीं है।

---

१ ब्रज में श्रेष्ठ।

(४) विरोध—जहाँ किसी प्रसिद्ध विरोध के कारण एक अर्थ का निर्णय हो, जैसे—

'राम बाहु अर्जुन के छेद्यौ।'

'राम' और 'अर्जुन' दोनों शब्द अनेकार्थवाची हैं। 'राम' शब्द 'परशुराम, रामचंद्र और बलराम' का बोधक है। 'अर्जुन' शब्द 'सहस्रार्जुन, अर्जुन पांडव और वृक्ष विशेष' का बोधक है। यहाँ पर 'परशुराम' और 'सहस्रार्जुन' (कार्तवीर्य) के प्रसिद्ध विरोध के कारण दोनों शब्दों का अर्थ परशुराम और कार्तवीर्य ही होगा।

(५) अर्थबल—जहाँ क्रिया के अर्थबल से एक अर्थ का निश्चय हो, जैसे—

'भव-खेद-छेदन के लिए क्यों स्थाणु को भजते नहीं।'

'स्थाणु' सूखे वृक्ष (ठूँठ) को कहते हैं और 'शंकर' का एक नाम भी 'स्थाणु' है। यहाँ 'भव (संसार) के खेद (दुःख) को छेदने' (दूर करने) के अर्थबल से 'स्थाणु' का अर्थ 'महादेव' ही होगा।

(६) प्रकरण—जहाँ किसी प्रसंग के कारण एक अर्थ का निर्णय हो, जैसे—

'दल को साजत है उत कोऊ।'

'दल' का अर्थ 'सेना' और 'पत्र' होता है। यदि युद्ध के प्रसंग मे यह वाक्य कहा जाय तो 'दल' का अर्थ 'सेना' होगा और यदि किसी बारी, माली आदि के लिए उक्त वाक्य प्रयुक्त किया जाय तो 'दल' का अर्थ 'पत्ता' होगा। 'रामचरितमानस' में तुलसीदास लिखते हैं—

सुधा-वृष्टि भइ दुहुँ दल ऊपर।
जिए भालु-कपि नहि रजनीचर[1] ॥

युद्ध का प्रसंग होने से 'दल' का अर्थ यहाँ पर 'सेना' ही होगा।

(७) सामर्थ्य—जहाँ किसी पदार्थ के सामर्थ्य से एक अर्थ का निर्णय हो, जैसे

'मधु से मतवाले हो रहे है मनुष्य।'

'मधु' का अर्थ 'वसंत' 'शहद' और 'शराब' है। पर मनुष्यों को मतवाला करने का सामर्थ्य 'शराब' में ही है। इससे यहाँ पर 'मधु' शब्द का अर्थ 'शराब' ही होगा। यदि 'मधुमत्त कोकिल' कहें तो 'मधु' का अर्थ 'वसंत' होगा।

(८) औचित्य—जहाँ किसी योग्यता के कारण एक अर्थ का निश्चय किया जाय, जैसे—

'रे मन सब सों निरस रहु सरस राम सो होहि।'

'नीरस होने' का अर्थ 'रसहीन होना' और 'उदासीन होना' है। 'सरस होने' का अर्थ 'रसयुक्त होना' और 'प्रेम बढ़ाना' दोनों है। यहाँ सबसे (संसार से) नीरस होने में 'उदासीन होना' और राम से सरस होने में 'प्रेम बढ़ाना' ही उचित अर्थ है।

(९) देश-बल—जहाँ किसी विशेष स्थान के कारण अनेकार्थी शब्दों के एक अर्थ का निश्चय किया जाय, जैसे—

---

१ निशाचर।

'मरु मै जीवन दूरि है।'

'जीवन' का अर्थ 'जल' और जिंदगी' है। यहाँ मरुस्थल के कारण 'जीवन' का अर्थ 'जल' ही होगा।

(१०) कालबल—जहाँ समय (प्रातः, संध्या, रात्रि आदि) के वल से एक अर्थ निश्चित हो, जैसे—

'कुवलय निसि फूल्यो अली।'

यहाँ 'कुवलय' शब्द अनेकार्थवाची है। इसका अर्थ 'कमल' और 'कुई' दोनों है। 'निसि फूल्यो' कहने से यहाँ 'कुई' अर्थ ही होगा।

(११) अन्यसंनिधि—जहाँ किसी के निकट रहने से एक अर्थ की सिद्धि हो, जैसे—

'दान लसत है नाग-सिर।'

यहाँ पर 'दान' और 'नाग' शब्द के दो-दो अर्थ है। 'दान' का अर्थ 'दक्षिणा' और 'गजमद' है। 'नाग' का अर्थ 'हाथी' और 'सर्प' है। पर 'दान' के सामीप्य से 'नाग' का अर्थ 'हाथी' और 'नाग' के सामीप्य से 'दान' का अर्थ 'गजमद' ही होगा।

(१२) लिग—जहाँ संयोग के सिवा किसी अन्य संबंध से एक अर्थ जाना जाय, जैसे—

'कुपित मकरध्वज हुआ मर्याद सब जाती रही।'

'मकरध्वज' का अर्थ 'कामदेव' और 'समुद्र' है। पर जड़ समुद्र कोप नहीं कर सकता। इससे 'मकरध्वज' का अर्थ 'कामदेव' ही होगा।

(२) लक्षणा

यदि शब्द के मुख्यार्थ अर्थात् अभिधा द्वारा प्राप्त वाच्यार्थ को न ग्रहण करके उसी से संबद्ध अर्थ का ग्रहण किया जाता है तो उस अर्थ को 'लक्ष्यार्थ' कहते है। जिस शब्द से इस अर्थ का बोध होता है उसे लक्षक कहते है और इस अर्थ को बतलानेवाली शब्दशक्ति का नाम लक्षणा है। मुख्यार्थ को छोड़कर अन्यार्थ के ग्रहण करने का कारण कोई चली आती हुई रूढ़ि (परंपरा) होती है अथवा कोई विशेष प्रयोजन होता है। इसलिए लक्षणा के दो भेद होते हैं—(१) रूढ़ि लक्षणा और (२) प्रयोजनवती लक्षणा।

(१) रूढ़ि लक्षणा—जहाँ प्रचलित परंपरा के कारण शब्द के मुख्य अर्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ का बोध हो वहाँ रुढ़ि लक्षणा होती है।

उदाहरण— (दोहा) √

फली सकल मनकामना लूट्यौ अगनित चैन।
आजु अँचै हरिरूप ससि भए प्रफुल्लित नैन॥

मनकामना कोई वृक्ष नहीं है कि फले, चैन (आनंद) कोई धन नहीं है कि लूटा जा सके, हरिरूप (श्रीकृष्ण का सौंदर्य) कोई पेय पदार्थ नहीं है कि आचमन किया जाय और नेत्र कोई पुष्प नहीं है कि फूले। पर ऐसा कहने की परंपरा हो गई है। अतः यहाँ 'फली' का अर्थ 'पूर्ण हुई', 'लूट्यौ' का अर्थ 'पाया', 'अँचै' का अर्थ 'देखकर' और 'प्रफुल्लित भए' का अर्थ 'सुखी हुए' होगा। यहाँ पर उक्त शब्दों के मुख्यार्थ में जनसमाज की रूढ़ि के कारण रुकावट पड़ी है, इससे यह रूढ़ि लक्षणा है।

(२) प्रयोजनवती लक्षणा--जहाँ किसी प्रयोजन के कारण शब्दों के मुख्यार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ का बोध हो वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है।

उदाहरण--(दोहा)

कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा बिपति-विदारनहार॥

यहाँ 'जदुपति' (श्रीकृष्ण) को 'संपति' कहा गया है। 'संपत्ति' का मुख्यार्थ है 'धन-दौलत'। किंतु यहाँ पर संपत्ति का अर्थ 'पालक या सुखदायी' आदि है। यह अन्यार्थ कवि की 'भक्ति' सूचित करने के प्रयोजन से है। अतः यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा है।

प्रयोजनवती लक्षणा के भी दो भेद होते हैं--(१) गौणी और (२) शुद्धा।

(१) गौणी--जहाँ सादृश्य अर्थात् समान गुण या धर्म के कारण लक्ष्यार्थ का बोध हो, वहाँ गौणी लक्षणा होती है।

उदाहरण--(द्रुतविलंबित)

मुरलिका कर-पंकज में लसी
जब अचानक थी बजती कभी।
तब अनूप-पियूष-प्रवाह में
जन-समागम था अवगाहता॥

यहाँ पर 'कर-पंकज' में गौणी लक्षणा है। 'कर' (हाथ) 'पंकज' (कमल) कैसे हो सकता है? 'कर' को 'पंकज' कहने मे मुख्यार्थ का बाध (रुकावट) होता है। कमल की कोमलता आदि समान गुणों से लक्ष्यार्थ का बोध होता है। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि 'हाथ कमल के समान कोमल' है।

(२) शुद्धा--जहाँ सादृश्य-संबंध के अतिरिक्त किसी अन्य संबंध से लक्ष्यार्थ का बोध हो वहाँ शुद्धा लक्षणा होती है।

उदाहरण—(हरिगीतिका)

सब अंग दूषित हो चुके हैं, अब समाज-सरीर के।
संसार में कहला रहे है, हम फकीर लकीर के।
क्या वाप-दादों के समय की रीतियाँ हम तोड़ दें ?
वे रुग्ण हों तो क्यों न हम भी स्वस्थ रहना छोड़ दें !

यहाँ पर 'समाज-शरीर' में शुद्धा लक्षणा है। समाज और शरीर में सादृश्य-संबंध नहीं है, बल्कि तात्कर्म्य (एक सा काम करने का) संबंध है। यहाँ भी मुख्यार्थ की रुकावट है क्योंकि समाज वस्तुतः शरीर नहीं है। शरीर के जितने कार्य है (अनेक अंग, खाना आदि) वे समाज में भी पाए जाते हैं। इसी प्रकार जहाँ लक्ष्यार्थ के ग्रहण में सामीप्य-संबंध, अंगांगी का संबंध हो वहाँ शुद्धा लक्षणा ही होगी।

शुद्धा लक्षणा के भी दो भेद है--(१) लक्षण लक्षणा और (२) उपादान लक्षणा।

(१) लक्षण लक्षणा—जहाँ प्रयोजन-प्राप्त अर्थ की सिद्धि के लिए मुख्य अर्थ को एकदम छोड़कर अन्य अर्थ का ग्रहण किया जाय, वहाँ लक्षण लक्षणा होती है।

उदाहरण—(दोहा)

वर्णाश्रम निज निज धरम निरत वेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहि भवरोग न सोग॥

वेद वस्तुतः पथ (मार्ग) नहीं है। वह कोई सड़क नहीं है जो मार्ग हो। इसलिए 'पथ' का अर्थ है 'रीति'। लोग वेद में लिखी रीति को मानते है। यहाँ पर 'पथ' शब्द ने अपना अर्थ एकदम छोड़कर दूसरा अर्थ ग्रहण किया है।

(२) उपदान लक्षणा—जहाँ प्रयोजनीय अर्थ की सिद्धि के लिए मुख्यार्थ को न छोड़ते हुए अन्यार्थ का ग्रहण कर लिया जाय वहाँ उपादान लक्षणा होती है।

उदाहरण—(दोहा)

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिं निंदहिं सुरसरि-वारि॥

'सनेह' कोई शरीरधारी नहीं है कि उसे चारों (दो बाह्य और दो आभ्यंतर) नेत्रों से हीन कहा जाय। अतः यहाँ 'सनेह' का अर्थ 'स्नेह करनेवाला व्यक्ति' है। 'स्नेही' में 'स्नेह' के अर्थ का उपादान (ग्रहण) भी है। इसलिए स्नेह में उपादान लक्षणा है। 'बैर' में भी यही लक्षणा है।

(३) व्यंजना

वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों के अतिरिक्त जिस किसी विलक्षण अर्थ का बोध होता है उसे 'व्यंग्यार्थ' कहते है। जिस शब्द से ऐसे अर्थ का बोध होता है उसे 'व्यंजक' कहते है। जिस शब्द-शक्ति से उक्त अर्थ का बोध होता है उसे 'व्यजंना' कहते है।

यह पहले कहा जा चुका है कि जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से अधिक चमत्कारक हो वहाँ ध्वनि होती है।

ध्वनि के दो भेद किए गए है—(१) अविवक्षितवाच्य ध्वनि और (२) विवक्षितवाच्य ध्वनि।

(१) अविवक्षितवाच्य ध्वनि—जहाँ वाच्यार्थ का उपयोग बिना किए ध्वनि निकले, वहाँ 'अविवक्षितवाच्य ध्वनि' होती है।

'अविवक्षित' शब्द का अर्थ है, जहाँ 'विवक्षा' (अपेक्षा-

आवश्यकता) न हो। जहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा नहीं होती, उसका उपयोग नहीं किया जाता, वहाँ यह ध्वनि होती है।

उदाहरण—(द्रुतविलम्बित)

कलुषनाशिनि दुष्टनिकंदिनी
जगत की जननी जगदंबिके।
जननि के जिय की सिगरी व्यथा
जननि ही जिय है कुछ जानता॥

यशोदा श्रीकृष्ण के चले जाने पर देवी से प्रार्थना कर रही हैं। यहाँ पर चौथे चरण में जो 'जननी' शब्द प्रयुक्त हुआ है, उसका तात्पर्य है—'पुत्र-वियोग की पीड़ा को जाननेवाली'। यहाँ 'जननी' शब्द के वाच्यार्थ की विवक्षा नहीं है।

(२) विवक्षितवाच्य ध्वनि—जहाँ वाच्यार्थ का उपयोग करते हुए ध्वनि निकलती हो, वहाँ विवक्षितवाच्य ध्वनि होती है।

उदाहरण—(दोहा)

तु ही साँच द्विजराज है तेरी कला प्रमान।
तौ पै सिव किरपा करी जानत सकल जहान॥

यहाँ पर कोई चंद्रमा को संबोधित करके कह रहा है—'हे चंद्र, तू ही सच्चा द्विजराज है, तेरी ही कला सार्थक है। सारा संसार ज ाता है कि शिवजी ने तेरे ऊपर कृपा की है। किंतु द्विजराज, कला और शिव शब्दों के श्लिष्ट होने से एक दूसरा अर्थ यह भी निकलता है कि शिवाजी ने भूषण (द्विजराज-ब्राह्मण) की कविता (कला) पर प्रसन्न होकर उन्हें दान दिया (कृपा की)। यहाँ श्लिष्ट शब्दों के वाच्यार्थ से ही दो अर्थ हुए हैं।

अविवक्षितवाच्य ध्वनि के भी दो भेद होते हैं—
(१) अर्थांतरसंक्रमित और (२) अत्यंततिरस्कृत।

(१) अर्थांतरसंक्रमित—जहाँ पर शब्द का अर्थ प्रसंगानुसार मुख्यार्थ को छोड़कर दूसरे अर्थ में चला जाता है वहाँ 'अर्थांतरसंक्रमितवाच्य ध्वनि' होती है।

'अर्थांतरसंक्रमित' का अर्थ है दूसरे अर्थ मे जाना। इस ध्वनि मे वाच्यार्थ को छोड़कर शब्द किसी दूसरे अर्थ का बोध कराता है।

उदाहरण—(दोहा)

हंस-बंस[1] दसरथ जनक राम-लखन से भाइ।
जननी तू जननी भई विधि सन[2] बसाइ[3]॥

यहाँ पर दूसरे 'जननी' शब्द मे कैकेयी की कठोरता व्यंग्य है। यह 'जननी' शब्द दूसरे अर्थ में संक्रमण कर रहा है।

जहाँ पर कहा जाता है—'कोयल कोयल ही है', 'कौआ-कौआ ही है' वहाँ यही ध्वनि होती है।

(२) अत्यंततिरस्कृत—जहाँ वाच्यार्थ की एकदम उपेक्षा हो अर्थात् विधि-वाक्य निषेध के लिए निषेध-वाक्य विधि के लिए प्रयुक्त हुए हों वहाँ 'अत्यंततिरस्कृतवाच्य ध्वनि' होती है।

'अत्यंततिरस्कृत' का अर्थ है वाच्यार्थ की एकदम उपेक्षा अर्थात् उसके विपरीत अर्थ का प्रकट करना।

उदाहरण—(दोहा)

सत्य कहसि दसकंठ सब मोहिं न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमरे कटक[4] अस तुम सन लरत जो सोह[5]॥

---

१ सूर्यवंश। २ ब्रह्मा से। ३ क्या वश है ४ सेना। ५ शोभित हो।

यहाँ पर अंगद के 'सत्य कहसि' का अर्थ है, 'झूठ कहते हो'। 'मुझे कुछ क्रोध नहीं है' का तात्पर्य है 'मुझे बहुत क्रोध आ रहा है।' लोग बोलचाल में भी कहा करते हैं—'आप तो बड़े महाशय हैं, आपका क्या कहना !' यहाँ 'महाशय' का अर्थ है 'दुराशय, खोटे'।

विवक्षितवाच्य ध्वनि के भी दो भेद होते हैं—(१) असंलक्ष्यक्रम और (२) संलक्ष्यक्रम।

(१) असंलक्ष्यक्रम—जहाँ वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ तक पहुँचने का क्रम लक्षित न हो वहाँ 'असंलक्ष्यक्रमवाच्य ध्वनि' होती है।

'असंलक्ष्यक्रम' पद का अर्थ है—क्रम का लक्षित न होना। इस ध्वनि मे यह नहीं लक्षित होता कि वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ तक पहुँचने का क्रम क्या है ? रस, भाव आदि इसी ध्वनि के अंतर्गत आते हैं। इसका वर्णन आगे विस्तार से किया गया है, यहाँ केवल एक उदाहरण दिया जाता है।

उदाहरण—(मंदाक्रांता)

आना प्यारे महरसुत का देखने के लिए ही
कोसों जाती प्रतिदिन चली ग्वाल की मंडली थी।
ऊँचे-ऊँचे तरु पर चढ़े गोप-छोटे अनेकों
घंटों बैठे तृषित दृग से पंथ को देखते थे॥

मथुरा गए हुए श्रीकृष्ण के लौटने की आशा मे प्रतीक्षा करनेवाले ग्वालों का वर्णन है। यहाँ ग्वालों की जिस 'आशा' की व्यंजना हो रही है उसका क्रम लक्षित नहीं है। पद्य के पढ़ते ही पाठक भाव तक पहुँच जाता है।

(२) संलक्ष्यक्रम—जहाँ वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ तक पहुँचने का क्रम लक्षित हो वहाँ 'संलक्ष्यक्रमव्राच्य ध्वनि' होती है।

उदाहरण—(दोहा)

तनु बिचित्र, कायर बचन, अहि अहार, मन घोर।
'तुलसी' हरि भए पच्छधर, तातें कह सब मोर॥

मोर का वर्णन है। मोर का शरीर विचित्र होता है, वह कायरों के से वचन बोलता है। सर्प खाता है, इससे उसका मन भी कठोर हैं। पर 'हरि' (श्रीकृष्ण) उसके 'पक्षों' (पंखों) को धारण करते (उसका पक्ष लेते) है इससे लोग उसे 'मोर' कहते हैं (अर्थात् वह 'मेरा' है)। यहाँ पर इस कथन से तात्पर्य यह है कि भगवान् जिसका पक्ष लेते हैं उसको सब चाहते है। इससे भगवान् की महिमा व्यंजित होती है। इसका क्रम लक्षित है।

चतुर्थ प्रकाश

रस-विवेचन

(१) रस

किसी भाव की अनुभूति दो प्रकार की होती है; एक साक्षात् और दूसरी आरोपित। भाव की साक्षात् अनुभूति में हृदय उसमें रमता नही, पर आरोपित अनुभूति मे हृदय भाव मे रमता है। इसी आरोपित अनुभूति का नाम रस है। यद्यपि यह आरोपित अनुभूति भी साक्षात् अनुभूति से मिलती-जुलती ही होती है, पर होती है परिष्कृत रूप मे।

ऊपर कहा जा चुका है कि रस असंलक्ष्यक्रम ध्वनि के अंतर्गत आता है। रस की व्यंजना मे दो पक्ष होते हैं—(१) विभाव-पक्ष और (२) भाव-पक्ष। विभाव-पक्ष मन मे आए हुए उन रूपो को कहते हैं जिनके प्रति हमारा कोई भाव होता है अथवा जिनके द्वारा उद्बुद्ध भाव उद्दीप्त होता है। भाव-पक्ष में भावों के अतिरिक्त वे चेष्टाएँ भी आती है जिनके द्वारा भाव-व्यंजना जानी जाती है। भावो मे भी कुछ भाव स्थायी

होते है और कुछ अस्थायी। इस प्रकार रस-व्यंजना में भाव-चक्र के चार अंग हो जाते हैं, जिनके नाम क्रमशः विभाव, अनुभाव, स्थायी भाव और संचारी भाव हैं। इनमें स्थायी भाव ही मूलभाव है जो अन्यों के द्वारा परिपक्व होकर रस-रूप में परिणत हो जाता है। इसीलिए रसका लक्षण यह किया गया है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।*

यहाँ पर एक प्रश्न और उठ सकता है कि रस की अनुभूति होती किसको है? ऊपर हम दो प्रकार की अनुभूतियों का वर्णन कर आए हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि रसात्मक अनुभूति पाठक अथवा दर्शक को ही हो सकती है। कुछ लोगों ने अभिनय करनेवाले नटों मे भी रस की स्थिति मानी है; पर इससे हमारे कथन में विरोध नहीं पड़ता। साक्षात् अनुभूति किस प्रकार रसात्मक अनुभूति में परिणत हो जाती है इसके लिए शास्त्रकारों को एक व्यापार मानना पड़ा है, जिसका नाम साधारणीकरण है। राम आदि की साक्षात् अनुभूति दर्शक को साधारणीकरण व्यापार द्वारा रसात्मक अनुभूति के रूप में होती है। राम को वह साधारण पुरुष के रूप मे स्वयम् गृहीत कर लेता है और उनके भावों को अपने भाव जानकर रसात्मक अनुभूति मे लीन हो जाता है। पर काव्य के लक्षण-ग्रंथों में उक्त रसात्मक अनुभूति का निरूपण ज्यों का त्यों नहीं किया जा सकता, इसलिए रस-व्यंजना के निरूपण के लिए काव्यगत साक्षात् अनुभूति को ही आधार बनाना पड़ता है। आगे चल-

---

* विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः—नाट्यशास्त्र।

कर जो वर्णन होगा वह इसी साक्षात् अनुभूति को ही लेकर, इसलिए भ्रम में नही पड़ना चाहिए।

रस नव हैं—(१) शृंगार, (२) हास्य, (३) अद्भुत, (४) वीर, (५) रौद्र, (६) भयानक, (७) करुण, (८) बीभत्स और (९) शांत। इनमें शृंगार, वीर और शांत तीन प्रधान रस माने गए हैं और शेष में से हास्य एवम् अद्भुत शृंगार के, रौद्र एवम् भयानक वीर के तथा बीभत्स एवम् करुण शांत के सहायक कहे गए है।

रस के चार अंग होते हैं—(१) स्थायी भाव, (२) विभाव, (३) अनुभाव और (४) संचारी भाव।

विभाव, अनुभाव एवम् संचारी भावो के द्वारा स्थायी भाव जब पूर्ण परिपक्वावस्था को प्राप्त होता है तभी उसकी संज्ञा रस होती है।* विभाव कारण होते हैं और अनुभाव उसके कार्य।

(२) स्थायी भाव

जिस भाव को विरोधी अथवा अविरोधी भाव अपने में न तो छिपा सकते हैं और न दबा सकते है और जो रस में बराबर स्थिर रहता है उस आस्वाद के मूल भाव को 'स्थायी भाव' कहते ।

'स्थायी' शब्द का अर्थ है 'स्थिर रहनेवाला'। यह भाव आदि से लेकर अंत तक रस में वर्तमान रहता है, इसी से इसे स्थायी कहते हैं। यह नौ प्रकार का माना गया है—(१) रति,

---

* विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम ॥—साहित्यदर्पण।

(२) हास, (३) आश्चर्य, (४) उत्साह, (५) क्रोध, (६) भय, (७) शोक, (८) जुगुप्सा, (९) निर्वेद या शम।

(१) रति—पुरुष का स्त्री पर और स्त्री का पुरुष पर अपूर्व प्रेम उत्पन्न होना 'रति' है।

'रति' शब्द का अर्थ है 'प्रीति'। यहाँ पुरुष और स्त्री की परस्पर प्रीति की 'रति' संज्ञा है। गुरु, देव, पुत्रादि में जो प्रीति होती है उसे पुराने शास्त्रकार केवल 'भाव' कहते हैं; स्थायी भाव नहीं, जो परिपक्व होकर 'रस' हो सके।

उदाहरण—(अर्धाली)

असं कहि फिरि चितए तेहि ओरा।
सियमुख ससि, भए नयन चकोरा॥

यहाँ रामजी का सीता की ओर साभिलाष देखना रति स्थायी भाव है। केवल दृष्टिपात होने से यह 'भाव' ही है, 'रस' नहीं।

(२) हास—विचित्र वचनों और रूप की रचना से हृदय में जो एक प्रकार का आनंद होता है और उससे जो परिमित हँसी आती है उसे हास कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

मोहन मालिनि-रूप रचि, लै कर चंपक-हार।
ओठन-भीतर ही तनिक, लखि मुसकानी दार[1]॥

यहाँ पर गोपिका की किंचित् मुसकान हास (स्थायी) भाव है।

(३) शोक—इष्ट के नाश से हृदय में जो व्याकुलता उत्पन्न होती है उसे 'शोक' कहते हैं।

प्रिय के वियोग से जो दुःख होता है वह स्थायी भाव नहीं होता, क्योंकि प्रिय में प्रेम की स्थिति रहती है। इससे वहाँ 'रति'

१ स्त्री, गोपी।

भाव स्थायी होता है। जो 'शोक' होता है वह संचारी भाव रहता है, न कि स्थायी।

उदाहरण (सवैया)

मोहि न सोच इतौ तन-प्रान को जायँ रहैं कि लहै लघुताई
एहू न सोच घनी 'पदमाकर' साहिबी जो पै सुकंठ[1] ही पाई।
सोच यहै इक, बाल-बधू बिन देहिगो अंगद कों जुवराई।
यों बच वालिबधू के सुने करुनाकर कों करुना कछु आई॥

यहाँ राम के हृदय मे कुछ करुणा होना कहा गया है, यही शोक (स्थायी) भाव है।

(४) क्रोध—अपमानादि से हृदय में हर्ष के प्रतिकूल जो मनोविकार उत्पन्न होता है उसे 'क्रोध कहते है।

इस अपमान मे घोर अपराधों की गणना करनी चाहिए; जैसे - वड़े लोगों अथवा प्रिय बंधुओ के वध से शत्रु द्वारा किया गया अपमान। साधारण अपराध के कारण जो कड़े वचन कहे जाते है वे अमर्ष संचारी भाव के चिह्न है, वहाँ क्रोध स्थायी नही होता।

उदाहरण—(चौपाई)

गौर सरीर भूति[2] भलि भ्राजा[3]। भाल बिसाल त्रिपुंड विराजा।
सीस जटा ससि बदन सोहावा। रिसबस कछुक अरुन होइआवा॥

यहाँ परशुराम के नेत्रो मे शिवधनुप-भंग से किंचित् ललाई हो आना क्रोध (स्थायी) भाव है।

(५) उत्साह—शूरता, दान या दया से उत्पन्न उत्तरोत्तर वढ़ते हुए चित्त के चाव का नाम 'उत्साह' है।

उदाहरण—(चौपाई)

सुनहु भानुकुल-पंकज-भानू[4]। कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू।

---

१ सुग्रीव। २ भस्म। ३ शोभित थी। ४ सूर्यवंशरूप कमल के सूर्य (राम)।

जौं तुम्हार अनुसासन[1] पावउँ। कंदुक-इव[2] ब्रह्मांड उठावउँ।
काँचे घट जिमि डारउँ फोरी। सकउँ मेरु मूलक[3] इव तोरी।
तव प्रताप-महिमा भगवाना। का बापुरो[4] पिनाक[5] पुराना॥

यहाँ लक्ष्मण के इस कथन में 'उत्साह' (स्थायी) भाव है। 'जौं तुम्हार अनुसासन पावउँ' और 'तव प्रताप-महिमा भगवाना' के कारण यह भाव ही है, पूर्ण 'रसत्व' को नहीं प्राप्त हुआ है।

(६) भय—अपराध, विकृत शब्द, चेष्टा वा विकृत जीवादि के दर्शन से उत्पन्न व्याकुलता का नाम 'भय' है।

उदाहरण—(दोहा)

दावानल बिकराल बन, आतुर लखि ब्रज लोग।
थरथरात कछु कँपि उठे, पल अधीर उर जोग॥

यहाँ दावानल की विकरालता से ब्रजवासियों का किंचित् कँप उठना, अधीर हो जाना, भय (स्थायी) भाव है।

(७) जुगुप्सा—किसी दोषयुक्त वस्तु के देखने, सुनने, स्मरण अथवा स्पर्श से चित्त में जो किंचित् घृणा का भाव उत्पन्न होता है उसे 'जुगुप्सा' कहते है।

'जुगुप्सा' का अर्थ है 'ग्लानि'। किसी घृणित पदार्थ के कारण हृदय मे उसके प्रति जो अश्रद्धा उत्पन्न होती है और उससे जो इंद्रियो में संकोच होता है उसे जुगुप्सा कहते है।

उदाहरण—(दोहा)

लखि बिरूप सूरपनखै, रुधिर-चरवि चुचुआत।
सिय-हिय मै घिन की लता, भई सु द्वै-द्वै पात॥

सूर्पणखा का घृणित शरीर देखकर सीता के हृदय में

---

१ आज्ञा। २ गेंद की तरह। ३ मूली। ४ बेचारा। ५ शिव का धनुष।

अश्रद्धा उत्पन्न होना जुगुप्सा है। 'द्वै द्व पात होना' कहने से घृणा अंकुरित मात्र हुई है। इससे यह भाव ही है।

(८) आश्चर्य—समझ में न आनेवाले पदार्थ के देखने, सुनने, स्पर्श अथवा स्मरण से चित्त मे जो किंचित् विस्मय होता है उसे आश्चर्य कहते है।

उदाहरण—(दोहा)

सुर-नर सब सचकित रहे, पारथ को रन देखि।
पै न गिन्यौ, यदुनंद अति, करन-पराक्रम पेखि॥

यहाँ 'सुर-नर' सबका चकित हो जाना आश्चर्य (स्थायी) भाव है। 'पै न गिन्यौ यदुनंद अति' से यह भाव ही है, पूर्ण रस नहीं।

(९) निर्वेद या शम—विशेष ज्ञान के उत्पन्न हो जाने से सांसारिक विषयो से वैराग्य हो जाने को निर्वेद या शम कहते है।

'निर्वेद' शब्द का अर्थ है 'विशेष ज्ञान'। संसार की वस्तुओ की अनित्यता देखकर हृदय में उन वस्तुओं के प्रति जो निंदा-बुद्धि उत्पन्न होती है उसे निर्वेद कहते है। 'शम' का अर्थ 'शांति' है। सांसारिक अशांति से खिन्न होकर जब मन परमार्थ की ओर झुककर शांति-प्राप्ति का इच्छुक हो तो 'शम' होता है।

उदाहरण—(सवैया)

काम से रूप[1] प्रताप दिनेस से, सोम[2] से सील, गनेस से माने[3]।
हरिचंद से साँचे, बड़े, बिधि[4] से, मघवा[5] से महीप बिषै सुख-साने।
सुक[6] से मुनि, सारद से बकता, छिरजीवन लोमस[7] ते अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी' जु पै राजिवलोचन[8] राम न जाने॥

'सांसारिक विभूति की चरम सीमा का अधिकारी होकर भी

१ सौंदर्य। २ चंद्रमा। ३ मान्य। ४ ब्रह्मा। ५ इंद्र। ६ शुकदेव। ७ चिरजीवी लोमश ऋषि। ८ कमलनेत्र।

राम-भजन न करने से मनुष्य कुछ नहीं है' इस उपदेश में निर्वेद (स्थायी) भाव मात्र है।

(३) संचारी भाव

जो भाव रस के उपकारक होकर पानी के बुलबुलों और तरंगों की भाँति उठते और विलीन होते रहते है उन्हें संचारी या व्यभिचारी भाव कहते हैं।

'संचारी' शब्द का अर्थ है 'फैलनेवाला'। ये भाव स्थायी भावों के सहायक होते है, और उसको परिपक्व करके रस की अवस्था तक पहुँचाते है। किसी जलाशय में जैसे बुलबुले उठते और लुप्त हो जाते है अथवा लहरे उठती और नष्ट होती रहती है वैसे ही ये भाव भी उठते है और रस की थोड़ी सहायता करके लुप्त हो जाते हैं। स्थायी भावो की भाँति ये स्थिर नहीं रहते, रसों में संचरण-मात्र करते है। इसी से इनका नाम संचारी भाव है। इनकी संख्या बहुत हो सकती है पर आचार्यो ने केवल तैंतीस संचारियों का वर्णन किया है। वे ये हैं—(१) निर्वेद, (२) ग्लानि, (३) शंका, (४) असूया, (५) श्रम, (६) मद, (७) धृति, (८) आलस्य, (९) विषाद, (१०) मति, (११) चिंता, (१२) मोह, (१३) स्वप्न, (१४) विबोध, (१५) स्मृति, (१६) अमर्ष, (१७) गर्व, (१८) उत्सुकता, (१९) अवहित्था, (२०) दीनता, (२१) हर्ष (२२) व्रीड़ा, (२३) उग्रता, (२४) निद्रा, (२५) व्याधि, (२६) मरण, (२७) अपस्मार, (२८) आवेग, (२९) त्रास, (३०) उन्माद, (३१) जड़ता, (३२) चपलता और (३३) वितर्क।

सूचना—इन भावो को यदि ध्यान से देखा जाय तो पता चलेगा कि आचार्यों ने केवल मनोवेगो को ही संचारियों के अंतर्गत नहीं रखा है।

इसमें कुछ तो शरीर के धर्म हैं, कुछ बुद्धि की वृत्तियाँ है और कुछ शुद्ध भाव (हृदय की वृत्तियाँ) है। जैसे—मरण, आलस्य, निद्रा, अपस्मार, व्याधि आदि शरीर के धर्म है, मति, वितर्क आदि बुद्धि की वृत्तियाँ है और ग्लानि आदि भाव हैं। इसलिए यह जान पड़ता है कि संचारियों में गणना करते समय वे सभी भाव, वृत्ति और धर्म ग्रहण कर लिए गए हैं जो किसी प्रकार भी स्थायी भाव की सहायता करते हैं और उसको परिपक्व करने में कारण हो सकते हैं।

(१) निर्वेद—जब आपत्ति, ईर्षा, ज्ञान आदि के कारण अपने आपको धिक्कारा जाता है तो 'निर्वेद' संचारी भाव होता है। तत्त्वज्ञान के कारण जो निर्वेद होता है वह सांसारिक सभी विषयों के प्रति उदासीनता उत्पन्न कर देता है और साथ ही वह स्थायी होता है और यह अस्थायी।

उदाहरण—(दोहा)

भयौ न कोऊ होइगो, मो समान मतिमंद।
तजे न अब लौं बिषय-बिष, भजे न दसरथ-नंद॥

ज्ञान के कारण अपने को 'मतिमंद' आदि कहना निर्वेद संचारी है।

(२) ग्लानि—आधि (मानसिक दुःख) और व्याधि (शारीरिक क्लेश) के कारण अंगों का शिथिल होना और कार्य में उत्साह न दिखाना 'ग्लानि' है।

उदाहरण— (मंदाक्रांता)

आवेगों[1] से विपुलविकला[2] शीर्णकाया[3] कृशांगी[4]।
चिंतादग्धा व्यथितहृदया शुष्कओष्ठा[5] अधीरा॥

---

१ आकुलता। २ अत्यंत व्याकुल। ३ जर्जर शरीरवाली। ४ दुबले पतले शरीरवाली। ५ सूखे ओठोंवाली।

आसीना[1] थी निकट पति के अंबुनेत्रा[2] यशोदा।
छिन्ना दीना विनतवदना मोहमग्ना[3] मलीना॥

यहाँ श्रीकृष्ण के चले जाने से यशोदा की दीन दशा में ग्लानि संचारी है।

(३) शंका —विषम अनिष्ट अथवा इष्ट-हानि के विचार को 'शंका' संचारी कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

दूरहि ते भूधर-सरिस, मार्‌यो बीर सुबाहु।
हत्यो ताड़का जेहि, करै सो नृपसुत उरदाहु॥

यहाँ राम के पराक्रम का स्मरण कर अनिष्ट के विषय में चिंतित होना 'शंका' संचारी है।

(४) असूया—दूसरे का उत्कर्ष न सहकर उसकी निंदा करना 'असूया' संचारी भाव है।

उदाहरण—(दोहा)

जैसे को तैसो मिलै, तबहीं जुरत सनेह।
ज्यों त्रिभंग[4] तन स्याम को, कुटिल कूबरी देह॥

श्रीकृष्ण का कूबरी के साथ प्रेम न सहकर गोपियों का उसकी निंदा करना असूया है।

(५) श्रम—मार्ग के चलने, व्यायाम करने आदि से जहाँ संतोषसहित अनिच्छा अर्थात् थकावट हो वहाँ 'श्रम' होता है।

---

१ बैठी हुई। २ नेत्रों में जल (अश्रु) भरे हुई। ३ मुख नीचा किए हुई। ४ तीन स्थानों (गर्दन, कमर और पैर) से टेढ़ा।

उदाहरण—(सवैया)

पुर तें निकसीं रघुबीर-वधू[1] धरि धीर दए मग मैं डग[2] द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल[3] की पुट सूखि गए मधुराधर[4] वै।
फिरि बूझति है 'चलनो अब केतिक[5], पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै[6] ?'
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥

यहाँ पर मार्ग चलने से सीता का थक जाना श्रम संचारी है।

सूचना—'ग्लानि' में शरीर की निर्बलता के कारण शिथिलता होती है और 'श्रम' में शरीर के सबल होने पर भी परिश्रम से शरीर में शैथिल्य आता है।

(६) मद—मदिरा-सेवन आदि से जो क्षोभ[7] उत्पन्न होता है उसे 'मद' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

धन-मद यौवन-मद महा, प्रभुता को मद पाय।
तापर मद को मद जिन्हैं, को तेहि सकै सिखाय॥

यहाँ कई प्रकार के मदो (नशों) के कारण किसी की शिक्षा न मानना 'मद' संचारी है।

(७) धृति—विपत्ति मे अविचलित बुद्धि का नाम धृति है।

---

१ सीता। २ मार्ग में दो कदम रखे (थोड़ी दूर चली)। ३ ललाट पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। ४ कोमल अधर-पुट। ५ कितनी दूर। ६ कहाँ पर। ७ व्याकुलता (अंग-स्खलन और वचना का अनुचित व्यवहार करना)।

उदाहरण—(कबित्त)

चले चंद्बान[1] घनबान[2] औ कुहूकबान[3],
चली हैं कमानैं[4] धूम आसमान छ्वै रह्यो।
चलीं जमडाढैं[5], बाढ़वारैं[6] तलवारैं जहाँ,
लोह-आँच[7] जेठ को तरनि[8] मानों व्वै रह्यो[9]।
ऐसे समै[10] फौजैं बिचलाइ[11] छत्रसाल सिंह,
अरि के चलाए पायँ[12] बीर रस च्वै रह्यौ।
हय[13] चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचली मैं अचल हाड़ा ह्वै रह्यो॥

यहाँ हय आदि के विचलित हो जाने पर हाड़ा छत्रसाल पर जो विपत्ति आई उसमें भी रणभूमि में अटल रहना धृति है।

(८) आलस्य—जागरण, श्रम, गर्भ, व्याधि आदि के कारण सामर्थ्य होने पर भी कार्य करने में उत्साहहीन होना 'आलस्य' है।

उदाहरण—(दोहा)

भूपन तन न सँवारई, नहि सखीन सों हेत।
गरभ-भार सों बैठि चुप, सो जँभुआई लेत॥

यहाँ गर्भ के भार से उत्साहहीनता दिखाई गई है।

(९) विषाद—किसी कार्य की सिद्धि के लिए उपाय के अभाव से पुरुषार्थहीनता का होना 'विषाद' है।

---

१ जिन बाणो मे अर्धचंद्राकार गाँसी लगी रहती है। २ जो बाण धुएँ से अँधेरा कर देते हैं। ३ ये बाण उजाला और घोर ध्वनि करते हैं। ४ तोपे। ५ एक प्रकार की टेढ़ी तलवार। ६ तेज धारवाली। ७ हथियारो की रगड की आँच। ८ सूर्य। ९ उदित हो रहा है। १० समय। ११ विचलित करके। १२ पैर उखाड दिए। १३ घोड़ा।

उदाहरण—(दोहा)

अब न धीर धारत बनत, सुरति[1] बिसारी कंत।
पिक[2] पापी कूकन लग्यो, बगरो बधिक बसंत॥

पति से मिलने के उपायों के अभाव मे वियोगिनी का दुःखी होना विषाद है।

(१०) मति—भ्रम का कारण रहने पर भी शास्त्र आदि के विचार से यथार्थ ज्ञान बने रहने को 'मति' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

भयो जु मेरो शुद्ध मन, अभिलाषी या माहि।
व्याहन छत्री-जोग यह, संसय नेकहु नाहिं॥
होत कछू संदेह जब, सज्जन के हिय आय।
अंतःकरन-प्रवृत्ति ही, देति ताहि निबटाय॥

यह उक्ति दुष्यंत की है। शकुंतला को कण्व के आश्रम मे देखकर और उसमें अनुरक्त होकर वह कह रहा है। यहाँ भ्रम का कारण रहते भी उसमे यथार्थ ज्ञान बना है।

(११) चिंता—किसी अहित की अप्राप्ति से उत्पन्न ध्यान का नाम 'चिंता' है।

उदाहरण—(कवित्त)

भोर ही सुखात ह्वैहै, कंदमूल खात ह्वैहै,
रूप कुँभिलात ह्वैहै मुख-जलजात को।
प्यादे पग जात ह्वैहै मग मुरझात ह्वैहै,
थकि जैहै घाम लागे स्याम कृस गात को।
'पंडित प्रवीन' कहै धर्म के धुरीन ऐसे,
मन मै न माख्यौ पीन राख्यो प्रन तात को।

---

१ स्मरण। २ कोकिल।

मात कहै कोमल कुमार सुकुमार मेरे,
छौना कहूँ सोवत बिछौना करि पात को ॥

कौसल्या का रामचंद्र की असुविधा के लिए उद्विग्न होना चिंता है।

(१२) मोह—भय, वियोग आदि से भ्रम उत्पन्न होकर चित्त में व्याकुलता का उत्पन्न होना और उससे वस्तु का यथार्थ ज्ञान न रह जाना 'मोह' है।

उदाहरण—(मंदाक्रांत)

दौड़ा ग्वाला ब्रजनृपति[1] के सामने एक आया।
बोला गायें[2] सकल वन को आपकी हैं न जातीं।
दाँतों से हैं न तृण गहतीं, हैं न बच्चे पिलाती।
हा हा! मेरी सुरभि सबको आज क्या हो गया है॥

गायों का श्रीकृष्ण-वियोग से तृण न चरना, बच्चों को दूध न पिलाना आदि मोह है।

(१३) स्वप्न—सोते हुए असत्य बातों को सत्य समझना 'स्वप्न' है।

उदाहरण—(चौपाई)

त्रिजटा नाम राछसी एका। रामचरन-रत निपुन-बिबेका।
सबहि बुलाइ सुनाएसि सपना। सीतहिं सेइ करहु हित अपना।
सपने बानर लंका जारी। जातुधान-सेना सब मारी।
खर-आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।
इहि विधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।
यह सपना मै कहहुँ बिचारी। होइहि सत्य गए दिन चारी।

१ नंद। २ गाय।

त्रिजटा का स्वप्न के मिथ्या-चरित्रों को सत्य मानना स्वप्न है।

(१४) विबोध—निद्रा के पश्चात् अथवा अविद्या दूर होने पर चैतन्य-लाभ करना 'विबोध' है।

उदाहरण—(दोहा)

उठे लखन निसि विगत सुनि, अरुनसिखा[1] धुनि कान।
गुरु तें पहिले जगतपति, जागे राम सुजान॥

यहाँ लक्ष्मण और राम का निद्रा के पश्चात् जागना विबोध है।

(१५) स्मृति—पहले के देखे-सुने हुए पदार्थों का पुनः ज्ञान हो आना 'स्मृति' है।

उदाहरण—(ककुभ)

कुंज, तुम्हारे कुसुमालय मे प्राणनाथ आकर बहुधा।
पान कराते थे सब व्रज को वेणु बजाकर मधुर सुधा।
तुम्हें विदित है, सुनकर वह रव ज्यों शिखिनी[2] घनरव[3] सुनकर।
कौन उपस्थित हो जाती थी उनके चरणो मे सत्वर[4]॥

यहाँ राधिका का श्रीकृष्ण को याद करना स्मृति है।

(१६) अमर्ष—अन्य द्वारा किए गए निंदा, आक्षेप, अनादर-युक्त अभिमान को न सहकर उसको नष्ट करने की इच्छा से युक्त जो अभिमान उत्पन्न होता है उसे 'अमर्ष' कहते है।

उदाहरण—(दोहा)

रे नृपबालक, कालबस, बोलत तोहिं न सँभार।
धनुही सम त्रिपुरारिधनु, विदित सकल संसार॥

यहाँ शिवधनु-भंग के अपमान से युक्त लक्ष्मण का अभिमान न सहकर उनका कड़े शब्द कहना अमर्ष है।

---

१ मुर्गा। २ मोरनी। ३ बादल की ध्वनि। ४ शीघ्र।

(१७) गर्व—रूप, धन, बल, विद्यादि के कारण सबकी अपेक्षा अपने को अधिक समझना अथवा सबको अपने से घट-कर मानना 'गर्व' है।

उदाहरण—(दोहा)

सूर[1] कवन रावन सरिस, स्व-कर काटि निज सीस।
हुने[2] अनल[3] महँ बार बहु हरषि, साखि[4] गौरीस[5]॥

इस दोहे में अपने पराक्रम के कारण रावण का यह कहना कि 'मेरे सदृश वीर कौन है?' गर्व संचारी है।

(१८) उत्सुकता— किसी कार्य में विलंब को न सहकर उसकी प्राप्ति के लिए संलग्न हो जाने को 'उत्सुकता' कहते है।

उदाहरण (द्रुतविलंबित)

दिन समस्त समाकुल[6] से रहे, सकल मानव गोकुल ग्राम के।
अब दिनांत विलोकत ही बढ़ी, व्रजविभूषण-दर्शनलालसा।
सुन पड़ा स्वर ज्यों कल[7] वेणु का, सकल ग्राम समुत्सुक हो उठा।
हृदय-यंत्र निनादित हो गया, तुरत ही अनियंत्रित[8]-भाव से।
वयवती युवती बहु बालिका, सकल बालक वृद्ध वयस्क भी।
विवश से निकले निज गेह से, स्वदृग का दुख मोचन के लिए॥

जंगल से आते हुए श्रीकृष्ण को देखने के लिए गोकुलवासियों की तत्परता उत्सुकता संचारी है।

(१९) अवहित्था—लज्जा आदि भावों को चतुराई से छिपाने का नाम 'अवहित्था' है। इस शब्द का अर्थ है 'आकार-गोपन' अर्थात् अपने स्वरूप को छिपाना।

---

१ वीर। २ आहुति दी। ३ अग्नि। ४ साक्षी। ५ महादेव। ६ व्याकुल। ७ सुंदर। ७ बेरोकटोक।

उदाहरण—(दोहा)

देखन-मिस मृग विहँग तरु, फिरइ बहोरि-बहोरि।
निरखि-निरखि रघुबीर-छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि॥

सीताजी राम को देखने के लिए मृग, पक्षी, वृक्ष आदि का बहाना निकालकर अपने भाव को छिपा रही हैं।

(२०) दीनता—दुःखादि से चित्त का नम्र होना और इस कारण अपने अपकर्ष का कहना 'दीनता' है।

उदाहरण—(कवित्त)

व्याधहू[1] ते बिहद[2] असाधु हौं अजामिल[3] ते,
ग्राह[4] तें गुनाही[5] कहौ तिन मैं गनाओगे।
स्यौरी[6] हौं न सूद्र[7] हौं न केवट कहूँ को त्यों न,
गौतम-तिया[8] हौं जापै पग धरि आओगे।
राम सौं कहत 'पदमाकर' पुकारि तुम,
मेरे महापापन को पारहू न पाओगे।
सीता-सी सती को तज्यो झूठोई कलंक सुनि,
साँचोई कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे।

इस कवित्त मे पापों की अधिकता और कलंक की बात कहकर भक्त अपना दैन्य-भाव प्रदर्शित कर रहा है।

(२१) हर्ष—इष्ट पदार्थ की प्राप्ति से उत्पन्न चित्त की प्रसन्नता को 'हर्ष' कहते हैं।

---

१ व्याधा (वाल्मीकि)। २ बेहद (अधिक)। ३ एक ब्राह्मण जो बडा पापी था पर मरते समय अपने पुत्र 'नारायण' को नाम लेकर पुकारने से मुक्त हो गया। ४ मगर। ५ दोषी। ६ शबरी। ७ शंबूक। ८ अहल्या।

उदाहरण—(दोहा)

कनक-थार[1] भरि मंगलन्हि, कर[2]-कमलन लिय मातु।
चलीं मुदित परिछन[3] करन, पुलक पल्लवित गातु[4] ॥

राम के विवाहित होकर आने से कौसल्या के हृदय में जो प्रसन्नता वर्णित की गई है वह 'हर्ष' संचारी है।

(२२) व्रीड़ा—गुरुओं की मर्यादा, अपनी स्तुति, प्रतिज्ञाभंग, पराभव आदि से संकुचित होना व्रीड़ा है। 'व्रीड़ा' का अर्थ है 'लज्जा'।

उदाहरण—(चौपाई)

बहुरि[5] बदन-बिधु[6] अंचल ढाँकी। पिय-तन चितै भौंह करि बाँकी[7]।
खंजन-मंजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिनहि सिय सैननि[8]॥

यहाँ ग्रामवासिनी स्त्रियों से सीता द्वारा संकेत से राम को अपना पति बताने में व्रीड़ा संचारी है।

(२३) उग्रता—निंदा, अपमान आदि से निर्दयता की इच्छा का उत्पन्न होना 'उग्रता' संचारी है।

उदाहरण—(गीता)

जो खेलहू मैं कहुँ सहेली सरस करि उपहास।
नव सिरस-सुम[9]-सुकुमार यहि के दंड पूरि हुलास।
अरसाय तउ ये लटपटानी मुख गयो पियराय।
रे नीच, तिहि तैं चहत मारन खड्ग अपनो धाय।
बस याहि सों जमदंड के समतौल[10] मो भुजदंड।
अब ही परै तुव मुंड पै सब भाँति सों परचंड॥

---

१ सोने की थाली। २ हाथ। ३ विवाह की एक रस्म। ४ गात्र (शरीर)। ५ फिर। ६ चंद्रमुख। ७ टेढ़ी। ८ इशारे से। ९ पुष्प। १० समान।

'मालतीमाधव' नाटक में मालती की बलि करनेवाले अघोर-घंट के प्रति माधव की यह उक्ति है। उक्त कापालिक को मारने के लिए सन्नद्ध होने मे उग्रता संचारी है।

सूचना—असर्प में उग्रता ज्ञात नहीं होती और क्रोध स्थायी भाव होता है अत. उग्रता दोनो से भिन्न है।

(२४) निद्रा—परिश्रम आदि के कारण बाह्य विषयो से निवृत्त होकर चित्त का निमीलन 'निद्रा' है।

उदाहरण—(चौपाई)

मातु-पिता परिजन पुरवासी। सखा सुसील दास अरु दासी।
जोगवहिं जिनहिं प्रान की नाई। महि सोवत तेइ राम गोसाई॥

यहाँ वन मे राम का शयन-वर्णन निद्रा संचारी है।

(२५) व्याधि—वियोगादि के कारण ज्वरादि का उत्पन्न होना 'व्याधि' है।

उदाहरण—(कवित्त)

दूर ही ते देखत विथा मैं वा बियोगिन की,
आई भलैं भाजि ह्याँ इलाज[1] मढ़ि आवैगी।
कहै 'पद्माकर' सुनो हो घनस्याम जाहि,
चेतत कहूँ जो एक आह कढ़ि आवैगी।
सर-सरितान को न सूखत लगैगी देर,
एती कछू जुलुमनि[2] ज्वाला वढ़ि आवैगी।
ताके तन-ताप[3] की कहौ मैं कहा वात,
मेरे गातहि छुऔ तौ तुम्हैं ताप चढ़ि आवैगी॥

यहाँ वियोग के काण नायिका के रुग्ण होने मे व्याधि संचारी है।

---

१ दवा। २ जुल्म करनेवाली (भीषण)। ३ ज्वर।

(२६) मरण—शरीर से प्राण-वायु का निकल जाना 'मरण' है।

उदाहरण—(दोहा)

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर-बिरह, राउ गएउ सुरधाम॥

राम के वियोग में दशरथ का शरीर-त्याग मरण है।

सूचना—(१) कुछ आचार्य 'मरण' को अमंगल मानकर केवल रोग के कारण होनेवाली मूर्च्छा अथवा मरने की पूर्वावस्था को मरण संचारी मानते हैं।

(२) मरण संचारी में सतियों का चितारोहण और वीरों का स्वर्गारोहण ही प्रायः वर्णित किया जाता है। अन्य स्थानों में और मुख्यतः शृंगार में इसका व्यवहार नहीं होता।

(२७) अपस्मार—अत्यंत दुःख, मोहादि से चक्कर खाकर गिर पड़ना, मुख से फेन निकलने लगना, श्वास का तेजी से चलने लगना 'अपस्मार' संचारी है। 'अपस्मार' का अर्थ है 'मृगी-रोग'। मानसिक दुःख की बाढ़ से मृगी-रोग के रोगी की भाँति हो जाना ही अपस्मार संचारी है।

उदाहरण—(दोहा—चौपाई)

देखी व्याधि असाधि[1] नृप, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ॥
व्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि[2] कल्पतरु मनहुँ निपाता।
कंठ सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीन[3] दीन बिनु पानी।

अत्यंत दुःख से राजा दशरथ का गिर पड़ना, अंग शिथिल हो जाना अपस्मार है।

१ असाध्य। २ हथिनी। ३ पढ़िना मछली।

सूचना—यह संचारी बीभत्स और भयानक रसों का है। शृंगार आदि में इस प्रकार के वर्णन व्याधि ही माने जायँगे।

(२८) आवेग—अचानक इष्ट अथवा अनिष्ट की प्राप्ति होने से चित्त में जो घबराहट होती है उसे 'आवेग' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

बाँधे बननिधि, नीरनिधि, जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपती, उदधि पयोधि नदीस॥

यहाँ सेतुबंध का समाचार सुनकर अनिष्ट की प्राप्ति के कारण रावण का दसो मुखों से भिन्न-भिन्न नाम लेकर एक साथ 'समुद्र बाँध लिया' कहना आवेग संचारी है।

(२९) त्रास—जहाँ अचानक अहित की प्राप्ति से चित्त व्यग्र हो उठे वहाँ 'त्रास' संचारी होता है।

उदाहरण—(दोहा)

देस-देस के पुरुष सब, चलत रावरी बात।
यों काँपत ज्यों बात[1] ते, रूख-रूख के पात॥

यहाँ किसी राजा की चरचा से उसके शत्रुओं का अहित-प्राप्ति से व्यग्र होकर काँप उठना त्रास संचारी है।

(३०) उन्माद—विरह, शोक, भय आदि से चित्त का अविचारित आचरण उन्माद है।

उदाहरण—(चौपाई)

हा गुनखानि जानकी सीता। रूप सील व्रत नेम पुनीता।
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूँछत चले लता-तरु-पाँती॥

इस चौपाई में रामचंद्र का सीता के वियोग से जड़ लता

१ वायु।

और वृक्षों से सीता का पता पूछना चित्त का वैचित्य है। अतः उन्माद संचारी है।

(३१) जड़ता—इष्ट अथवा अनिष्ट के देखने सुनने से चित्तवृत्ति का विवेकशून्य होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाना 'जड़ता' है।

उदाहरण—(चौपाई)

जाइ समीप राम-छबि देखी। रहि जनु कुँवरि चित्र-अवरेखी[1]॥

यहाँ इष्ट राम के देखने से सीताजी का चित्रवत् हो जाना जड़ता है।

सूचना—निद्रा, अपस्मार और मूर्छा में भी शरीर की गति रुक जाती है। पर उनमें ज्ञान नहीं रहता और जडता में ज्ञान रहता है।

(३२) चपलता—प्रेम अथवा विरोध आदि कारणों से चित्त में अस्थिरता होना 'चपलता' संचारी है।

उदाहरण—(चौपाई)

देखन नगर भूपसुत आए। समाचार पुरबासिन पाए।
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥

रामचंद्र को देखने के लिए प्रेमवश पुरवासियों का सब कार्य छोड़कर दौड़ पड़ना चपलता संचारी है।

(३३) वितर्क—शंका निवारण के लिए चित्त में विचार का उत्पन्न होना 'वितर्क' है।

उदाहरण—(अर्धाली)

लंका निसिचर-निकर-निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥

---

१ चित्र में लिखी हुई।

विभीषण का रामायुधांकित घर देखकर लंका में सज्जनों के निवास के विषय मे हनूमानजी का विचार करने लगना वितर्क संचारी है।

सूचना—रसतरंगिणीकार भानुभट्ट ने 'छल' नामक एक और संचारी माना है।

(४) अनुभाव

जिन क्रियाओ अथवा चेष्टाओ से किसी के हृदय में स्थित भाव का अनुभव (ज्ञान) हो उन्हें 'अनुभाव' कहते है!

'अनुभाव' शब्द का अर्थ है 'अनुभव करानेवाला'। जो चेष्टाएँ भाव का वोध कराती है उन्हें अनुभाव कहते है।

कुछ आचार्य अनुभाव का अर्थ 'भाव के पीछे उत्पन्न होने वाला' मानते है।

इसके तीन भेद माने गए हैं—(१) सात्त्विक, (२) कायिक और (३) मानसिक।

(१) सात्त्विक

शरीर के स्वाभाविक अंगविकार को सात्त्विक भाव कहते है।

जिस अंतःकरण की वृत्ति से रस का प्रकाश होता है उसे 'सत्त्व' कहते है। उसी सत्त्व से जो विकार उत्पन्न होते है, उनका नाम सात्त्विक भाव है।

इसके आठ प्रकार है—(१) स्तंभ, (२) स्वेद, (३) रोमांच, (४) स्वरभंग, (५) कंप, (६) वैवर्ण्य, (७) अश्रु और (८ प्रलय।

(१) स्तंभ—भय, लज्जा, आनंद आदि से शरीर के अंगों का संचालन रुक जना 'स्तंभ' है।

उदाहरण—(चौपाई)

चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई।
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेमबिबस पहिराइ न जाई॥

यहाँ प्रेमानंद से जयमाल न पहना सकना स्तंभ है।

(२) स्वेद—हर्ष, क्रोध आदि से शरीर के रोमकूपों से जलबिंदु का निकल आना 'स्वेद' है।

उदाहरण—(हरिगीतिका)

संग्राम-भूमि बिराज रघुपति अतुलबल कोसलधनी।
श्रमबिंदु मुखराजीव[1] लोचन अरुन[2] तन सोनित कनी[3]।
भुज जुगल फेरत सर-सरासन भालु-कपि चहुँ दिसि बने।
कह 'दास तुलसी' कहि न सक छबि सेप जेहि आनन[4] घने॥

यहाँ राक्षसों पर क्रोध करने के कारण रामचंद्र के मुख पर पसीने की बूँदे हो आई हैं।

(३) रोमांच—हर्ष, शीत, भय आदि से शरीर के रोओं का खड़ा हो जाना 'रोमांच' है।

उदाहरण—(दोहा)

मंगल समय सनेहबस, सोच परिहरिय तात।
आयसु देइअ हरषि हिय कहि पुलके प्रभु-गात॥

यहाँ दशरथजी के भविष्य की चिंता से राम के शरीर का पुलकायमान होना रोमांच है।

(४) स्वरभंग—मद, भय, क्रोध, आनंद आदि के कारण स्वाभाविक ध्वनि का बदल जाना 'स्वरभंग' है।

---

१ लाल कमल। २ लाल। ३ खून की बूँदें। ४ मुख।

उदाहरण—(कवित्त)

बिरहबिथा की कथा अकथ अथाह महा,
　　कहत बनै न जो प्रबीन सुकबीनि सौं।
कहै 'रतनाकर' बुझावन लगे ज्यौं कान्ह,
　　ऊधौ कौं कहन-हेत ब्रज-जुवतीनि सौं।
गहवरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं,
　　प्रेम परयौ चपल चुचाइ पुतरीनि सौं।
नैंकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं,
　　रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं॥

श्रीकृष्ण का विरह की कथा कहते समय उसे न कह सकना, हिचकी आने लगना आदि स्वरभंग है।

(५) कंप—शीत, क्रोध, भय, आनंद आदि के कारण यकायक प्रत्येक अंग का हिल उठना 'कंप' है।

उदाहरण—(द्रुतविलंबित)

चकित भीत अचेतन सी बनी। कँप उठी सिगरी जन-मंडली।
कुटिलता करके सुधि कंस की। प्रबल और हुई उर-वेदना॥

यहाँ कंस के भय के कारण गोकुलवासियों का कंप वर्णित है।

(६) वैवर्ण्य—मोह, क्रोध, भय आदि से शरीर की कांति का बदल जाना 'वैवर्ण्य' है।

उदाहरण—(द्रुतविलंबित)

नव उमंगमयी सब बालिका। मलिन और सशंकित हो गईं।
अति प्रफुल्लित बालक-वृंद का। वदन-मंडल भी कुँम्हला गया॥

यहाँ भय के कारण बालिकाओं एवम् बालकों के मुख का रंग फक्क हो जाना वैवर्ण्य है।

(७) अश्रु—हर्ष, क्रोध, शोक आदि से नेत्रों द्वारा जल टपकने को 'अश्रु' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

एहि बिधि कहि-कहि बचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहि मारग अगम, सुठि[1] सुकुमार सरीर॥

यहाँ रामचंद्र की भावी असुविधा से जो शोक उत्पन्न हुआ है उससे नेत्रों में जल भर आना अश्रु सात्त्विक भाव है।

(८) प्रलय—किसी पदार्थ में तल्लीन होने से चेष्टा-निरोध होना 'प्रलय' है।

उदाहरण—(दोहा)

केहरि-कटि, पटपीतधर, सुषमा-सील-निधान।
देखि भानुकुलभूषनहिं, बिसरा सबहि अपान॥

राम का रूप देखने मे तल्लीन हो जाने से अपनत्व को भूल जाना प्रलय है।

सूचना—इन आठ सात्त्विक भावों के अतिरिक्त कुछ लोग जृंभा (जँभुआई) को भी सात्त्विक भाव मानते हैं।

(२) कायिक

शरीर के अंगों द्वारा जो कृत्रिम चेष्टाएँ की जाती हैं उन्हें 'कायिक' अनुभाव कहते है।

उदाहरण—(बरवै)

बेद[2] नाम लै अँगुरिन खंडि अकास[3]।
भेज्यो सूपनखाहिं लखन के पास॥

यहाँ रामजी का लक्ष्मण को सूपनखा के नाक-कान काट लेने का संकेत कृत्रिम चेष्टा द्वारा करना कायिक अनुभाव है।

---

१ अत्यंत। २ श्रुति (कान)। ३ नाक (नासिका)।

(३) मानसिक

मन के द्वारा होनेवाले प्रमोद आदि अनुभाव 'मानसिक' है।

उदाहरण—(दोहा)

सब सिसु एहि मिस प्रेमबस, परसि मनोहर गात।
तन पुलकित अति हरष हिय, देखि-देखि दोउ भ्रात॥

यहाँ नगर की शोभा दिखाने के बहाने रामचंद्र के शरीर का स्पर्श करके हर्षित होने मे मानसिक अनुभाव है।

सूचना—आचार्यों ने अनुभावो के ही अतर्गत शृंगार रस में बारह 'हाव' माने हैं। पर ये 'अनुभाव' न होकर वस्तुत: आलंबन की चेष्टा होने के कारण उद्दीपन है। इनके नाम हैं—(१) लीला, (२) विलास, (३) विच्छित्ति, (४) विभ्रम, (५) किलकिंचित्, (६) ललित, (७) मोट्टायित, (८) बिब्बोक, (९) विहृत, (१०) कुट्टमित, (११) हेला और (१२) बोधक।

(५) विभाव

जो विशेष रूप से रस को प्रकट करते है उन्हें विभाव कहते है।

इसके दो अंग है--(१) आलंबन और (२) उद्दीपन।

(१) आलंबन

जिनका आधार लेकर मनोविकार उत्पन्न होते हैं उन्हें 'आलंबन' कहते हैं।

प्रत्येक रस के आलंबन भिन्न-भिन्न होते हैं इनका उल्लेख प्रत्येक रस के निरूपण के साथ किया जायगा।

(२) उद्दीपन

रस को उत्तेजित करनेवाले विभावों को 'उद्दीपन' कहते हैं।

इनके द्वारा आलंबन द्वारा उत्पन्न मनोविकार बढ़ता है।

प्रत्येक रस के उद्दीपन-विभाव भी भिन्न-भिन्न हैं। इनका उल्लेख प्रत्येक रस के निरूपण के साथ किया जायगा। स्मरण रखना चाहिए कि बाहरी उद्दीपन (उपवन, चंद्र, वसंत आदि) शृंगार मे ही होते है, अन्य रसो मे नहीं।

(६) रस-निरूपण

रस नौ है—(१) शृंगार, (२) हास्य (३) अद्भुत (४) वीर, (५) रौद्र, (६) करुण, (७) बीभत्स (८) भयानक और (९) शांत।

(१) शृंगार

स्थायी भाव—इस रस का स्थायी भाव 'रति' है।

संचारी भाव—कुछ लोग शृंगार में सभी संचारियों के संनिविष्ट हो सकने का समर्थन करते है किंतु अधिकांश लोग उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर शेष २९ संचारी ही इस रस के अनुकूल मानते हैं।

अनुभाव—प्रेमपूर्वक एक-दूसरे को देखना, कटाक्ष करना आदि इसके अनुभाव हैं।

आलंबन—नायक और नायिका। इन नायकों एवम् नायिकाओं के बहुत से भेद भी किए गए है।

उद्दीपन—वन, उपवन, चंद्र, चाँदनी, पुष्प, शीतल-मंद समीर, वसंत आदि ऋतु, सखा, सखी दूती आदि।

इस रस के दो भेद है-(१) संयोग और (२) विप्रलंभ।

(१) संयोग शृंगार-दर्शन, स्पर्श, बातचीत आदि से नायक-नायिका बाह्य इन्द्रियों द्वारा जो परस्पर आनंद लूटते हैं उसे संयोग शृंगार कहते है।

उदाहरण—(कवित्त)

दोऊ जने दोऊ को अनूप रूप निरखत,
पावत कहूँ न छबिसागर को छोर है।
'चिंतामनि' केलि की कलानि के विलासनि सो,
दोऊ जने दोउन के चित्तनि के चोर हैं।
दोऊ जने मंद मुसुकानि सुधा बरसत,
दोऊ जने छके मोद-मद दुहूँ ओर हैं।
सीताजू के नैन रामचंद्र के चकोर भए,
रामनैन सीतामुख-चंद्र के चकोर हैं।

(२) विप्रलंभ—विप्रलंभ का अर्थ है वियोग। नायक-नायिका में उत्कट प्रेम उत्पन्न हो जाने पर भी उनका समागम न हो सकना विप्रलंभ शृंगार है।

इसके तीन प्रकार कहे गए हैं—(१) पूर्वानुराग (संयोग होने के पूर्व जो अनुराग होता है)। (२) मान (संयोग के पश्चात् रूठने से जो वियोग होता है) और (३) प्रवास (संयोग के पश्चात् देशांतर-गमन से जो वियोग होता है)।

इन्हीं के अंतर्गत दस विरह दशाएँ भी कही गई है जिनके नाम ये हैं—(१) अभिलाष, (२) चिंता, (३) स्मरण, (४) गुणकथन, (५) उद्वेग, (६) प्रलाप, (७) उन्माद, (८) व्याधि, (९) जड़ता और (१०) मरण।

इनमें से चिता, स्मरण, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण वे ही हैं जिनका वर्णन संचारियों में हो चुका है। ये ही जब विप्रलंभ शृंगार में वियोगी की अवस्था विशेष का बोध कराने के लिए आते है तो 'दशा' कहे जाते है। शेष चार में से प्रिय के मिलने की लालसा करना 'अभिलाष' है। उसके गुणो का कीर्तन

'गुणकथन' है। प्राणों का अनादर और सुखद वस्तुओं को दुखदायी समझना 'उद्वेग' है। निरर्थक बातें बकना 'प्रलाप' है।

उदाहरण—(सवैया)

सुभ सीतल मंद सुगंध समीर कछू छलछंद से छ्वै गए हैं।
'पदमाकर' चाँदनी चंदहू के कछु औरहि डौरन व्वै गए हैं।
मनमोहन सों बिछुरे इतही बनिकै न अबै दिन द्वै गए है।
सखि वे हम वे तुम वेई बने पै कछू के कछू मन ह्वै गए है॥

श्रीकृष्ण एवम् राधिका आलंबन विभाव है। शीतल, मंद, सुगंध समीर, चाँदनी, चंद और वन उद्दीपन हैं। मन का कुछ का कुछ हो जाना अनुभाव है। स्मृति आदि संचारी है। 'रति' स्थायी है।

(२) हास्य

स्थायी भाव—हास।

आलंबन—विकृत वचन अथवा विकृत वेशवाला व्यक्ति।

उद्दीपन—अनुपयुक्त वचन और वेश आदि।

अनुभाव—मुख का फैलना, आँखों का मिचना आदि।

संचारी भाव—चपलता, उत्सुकता, निद्रा, आलस्य, अवहित्था आदि।

उदाहरण—(कवित्त)

हँसि-हँसि भजैं देखि दूलह दिगंबर[1] को,
पाहुनी[2] जे आवैं हिमाचल[3] के उछाह[4] मैं।

---

१ नग्न महादेव। २ अतिथि। ३ पार्वती के पिता। ४ उत्सव।

कहै 'पद्माकर' सु काहू सों कहै को कहा.
जोई जहाँ देखै सो हँसोई तहाँ राह[1] मैं।
मगन भएई[2] हँसैं नगन महेस ठाढ़े,
और हँसे वेऊ हँसि-हँसिकै उमाह[3] मैं।
सीस पर गंगा हँसै भुजनि भुजंगा[4] हँसै,
हास ही को दंगा[5] भयो नंगा के बिबाह मैं॥

यहाँ पर महादेव को नग्न देखकर लोगों का हँसना हास स्थायी भाव है। महादेवजी आलंबन-विभाव है। उनका नंगा रूप, विचित्र स्वरूप आदि उद्दीपन-विभाव हैं। लोगो का हँस-हँसकर भागना, लोट-पोट हो जाना आदि अनुभाव है। हर्ष, महादेव का स्वरूप देखने के लिए लोगो के दौड़ पड़ने में चपलता, उत्सुकता आदि संचारी भाव हैं। अतः यहाँ पूर्ण हास्य रस है।

(३) करुण

स्थायी भाव—शोक।

आलंबन—मृत बंधु-बांधव अथवा शोचनीय दशा को प्राप्त व्यक्ति।

उद्दीपन—मृतक का दाह, उसकी या उससे संबंध रखनेवाली वस्तुओं का देखना, उसका गुण-श्रवण आदि।

अनुभाव—भाग्य की निंदा, पृथ्वी पर गिर पड़ना, रोना, उच्छ्वास लेना आदि।

---

१ रास्ता। २ आनंदित होकर। ३ उत्साह, चाव। ४ बाँहों पर सर्प हँसते है। ५ उपद्रव।

संचारी भाव--निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिंता आदि।

उदाहरण—(सवैया)

मात को मोह, न द्रोह बिमात[1] को, सोच न तात[2] के गात दहे[3] को।
प्रान को छोभ[4] न, बंधु-बिछोभ[5] न राज को लोभ, न मोद रहे को।
एते पै नेक न मानत 'श्रीपति' एते मैं सीय-बियोग सहे को।
तारन भूमि मैं राम कह्यौ, मोहि सोच बिभीपन भूप कहे को॥

लक्ष्मण को शक्ति लग जाने पर रामचंद्र विलाप कर रहे हैं। लक्ष्मण के लिए विलाप करने से शोक स्थायी भाव है। लक्ष्मण आलंबन-विभाव हैं। लक्ष्मण का चेतना-शून्य शरीर, उनकी वीरता, गुण आदि उद्दीपन-विभाव हैं; क्योंकि रामचंद्र कहते हैं कि मैंने बिभीषण को 'भूप' कह दिया है। लक्ष्मण के न रहने पर रावण को मारकर इसे सिंहासनारूढ़ करा सकने से मैं अकेला असमर्थ हूँ। रामचंद्र का विलाप करना अनुभाव है। ऐसे शोक में भी विभीषण को राज्यारूढ़ कराने का ध्यान बना रहने से मति, धृति; और इनके अतिरिक्त वितर्क, स्मृति, विषाद आदि संचारी भाव है।

(४) रौद्र

क्रोध से इंद्रियों की प्रबलता को 'रौद्र' रस कहते है।

स्थायी भाव—क्रोध।

आलंबन—अपराध करनेवाला व्यक्ति, शत्रु आदि।

---

१ (विमाता) सौतेली माता। २ पिता (दशरथ)। ३ शरीर के जलने का, उनके स्वर्गवासी हो जाने का। ४ दुःख, खेद। ५ भाई का वियोग।

उद्दीपन--शत्रु के किए अपराध, उसकी उमंग आदि।

अनुभाव--आँखों की ललाई, त्यौरी चढ़ना, ओठ चबाना आदि।

संचारी भाव--मद, उग्रता, अमर्ष, स्मृति आदि।

उदाहरण--(सवैया)

बोरौं सबै रघुबंस कुठार का धार मैं बारन[1] बाजि[2] सरत्थहि[3]।
बान की वायु उड़ाय कै लच्छन[4] लच्छ[5] करौं अरिहा[6] समरत्थहि।
रामहिं बाम[7]-समेत पठै बन, सोक के भार[8] मैं भूजौं भरत्थहि[9]।
जौ धनु हाथ लियो रघुनाथ[10] तौ आजु अनाथ करौं दसरत्थहि॥

शिवधनुष-भंग सुनकर परशुराम राम के ऊपर क्रुद्ध हो रहे हैं। उनका क्रोध स्थायी भाव है। राम आलंबन-विभाव है। परशुराम के गुरु शिव का धनुप तोड़कर उनके गुरु का अपमान करना और इतने पर भी शान के साथ राजपुत्री को ब्याह कर ले जाना आदि उद्दीपन विभाव हैं। परशुराम का 'रघुवंश का नाश कर डालूँगा' आदि कहना अनुभाव है। परशुराम के उक्त कथन में गर्व, अमर्ष, उग्रता आदि संचारी भाव है। अतः पूर्ण रौद्र रस है।

(५) वीर

स्थायी भाव--उत्साह।

आलंबन--जिस पर अधिकार प्राप्त करना है, रिपु का उत्कर्ष।

उद्दीपन--मारू आदि का बजना, रण-कोलाहल आदि।

---

१ हाथी। २ घोडा। ३ रथ-समेत। ४ लक्ष्मण। ५ (लक्ष्य) निशाना। ६ शत्रुघ्न। ७ स्त्री (सीता)। ८ भाड, भरसाँई। ९ भरत। १० यदि मुझसे लडने के लिए राम हाथ में धनुष ले।

अनुभाव—सेना आदि का चलना, हथियारों का चलाना, अंग-स्फुरण, नेत्रों में ललाई, रोमांच आदि।

संचारी भाव—हर्ष, धृति, गर्व, असूया आदि।

उदाहरण—(कवित्त)

डहडहे डंकन के सबद[1] निसंक होत,
बहबही[2] सत्रुन की सेना जोर सरकी[3]।
'हरिकेस' सुभट-घटान[4] की उमॅग उत,
चंपति को नंद[5] कोप्यो उमंग समर[6] की।
हाथिन की मंड[7] मारू-राग की उमंड[8] त्यों-त्यों,
लाली झलकति मुख-छत्रसाल-बर की।
फरकि-फरकि उठैं बाहैं अस्त्र वाहिबे कौं[9],
करकि-करकि उठैं करी बखतर[10] की॥

यहाँ पर शत्रु की सेना को देखकर छत्रसाल के उमगने में उत्साह स्थायी भाव है। शत्रु आलंबन है। डंकों का शब्द, सेना का चलना, वीरों का तैयार होना, हाथियों का मड़राना, मारू का बजना आदि उद्दीपन-विभाव हैं। युद्ध के लिए उमगना, मुख में ललाई छा जाना, हथियार चलाने के लिए भुजाओं का फड़कना, हर्ष से शरीर के फूल उठने से कवच के बंधनों का टूट जाना आदि अनुभाव हैं। अमर्ष, उत्सुकता, हर्ष, उग्रता आदि संचारी भाव हैं।

---

१ डंकों की घोर ध्वनि। २ भागनेवाली। ३ चली। ४ वीरों का समूह। ५ रैयाराव चंपति के पुत्र (छत्रसाल)। ६ युद्ध। ७ मडराना। ८ मारू-राग की ध्वनि का फैलना। ९ हथियार चलाने के लिए। १० जिरह-बख्तर के बंधन टूट जाते हैं।

(६) भयानक

स्थायी भाव—भय।

आलंबन—बाघ, चोर, शून्य-स्थान, वन, बलवान का अपराध, भयंकर दर्शन आदि।

उद्दीपन—इनकी भयंकर चेष्टाएँ।

संचारी भाव—जुगुप्सा।

उदाहरण—(कवित्त)

रानी अकुलानी सब डाढ़त[1] परानी जाहि[2]
सकैं न बिलोकि वेष केसरी-किसोर[3] को।
मीजि-मींजि हाथ धुनि माथ दसमाथ[4]-तिय,
'तुलसी' तिलौ न भयो बाहिर अगार[5] को।
सब असबाब डारौ[6] मैं न काढ़ो[7] तैं न काढ़ो,
जिय की परी सँभारै सहन-भँडार[8] को।
खीझति मँदोवै[9] सविषाद देखि मेघनाद,
बयो लुनियत[10] सब याही डाढ़ीजार[11] को॥

लंका-दहन के समय का यह दृश्य है। लंका के जलने पर मंदोदरी आदि के घबराने से भय स्थायी भाव है। हनूमान आलंबन-विभाव है। हनूमान का विकराल वेश,घर, असबाब आदि का जलना उद्दीपन-विभाव है। घबराकर भागना, हाथ

---

१ जलते ही। २ भागी जाती हैं। ३ हनूमान। ४ रावण। ५ घर से तिल-भर सामान भी बाहर न हो सका। ६ पडा हुआ है। ७ निकाला। ८ खजाना। ९ मंदोदरी। १० इसी का बोया काट रही हूँ, इसी के कर्मों का फल है कि लंका जली। ११ दहिजार अर्थात् दुष्ट (बेशऊर)।

मींजना, माथा पीटना, जलते हुए असबाब को देखकर एक दूसरे से उसको बाहर न करने के लिए झगड़ना, खीझना आदि अनुभाव है। विषाद, चिंता, स्मृति, त्रास आदि संचारी भाव है। अतः पूर्ण भयानक रस है।

(७) बीभत्स

स्थायी भाव--जुगुप्सा।

आलंबन—दुर्गंधिमय मांस, रक्त, अस्थि आदि।

उद्दीपन—रक्त-मांस का सड़ना, उनमें कीड़े पड़ना, पक्षियों या पशुओं का इन्हें नोचना-खसोटना आदि।

अनुभाव—मुँह बनाना, थूकना, नाक मूँदना, रोमांच, आँख मींचना आदि।

संचारी भाव—मोह, असूया, अपस्मार, आवेग, व्याधि, मरण आदि।

उदाहरण—(छप्पय)

सिर पै बैठो काग[1], आँखि दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहि स्यार, अतिहि आनँद उर धारत।
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि-खोदि कै माँस उचारत।
स्वान[2] आँगुरिन काटि-काटि कै खान बिचारत।
बहु चील नोचि लै जात तुच[3], मोद[4]-मढ्यो सबको हियो।
जनु ब्रह्म-भोज जिजमान कोउ, आजु भिखारिन कहँ दियो॥

राजा हरिश्चंद्र श्मशान में पशु-पक्षियों की यह लीला देख रहे हैं। इसके देखने से उनके मन में जो घृणा का भाव उठ रहा है वही स्थायी है। मुर्दों की हड्डी, मांस, त्वचा आदि आलंबन है। कौवों का आँख निकालना, स्यार का जीभ खींचना,

१ कौवा। २ कुत्ता। ३ (त्वचा) चमड़ा। ४ प्रसन्नता।

गिद्ध का मांस नोचना आदि उद्दीपन-विभाव है। इन्हें देखकर राजा का इनका वर्णन करने लगना अनुभाव है। मोह, स्मृति आदि संचारी भाव है। अतः पूर्ण वीभत्स रस है।

(८) अद्भुत

स्थायी भाव--आश्चर्य या विस्मय।

आलंबन--अलौकिक अथवा आश्चर्योत्पादक वस्तु या कार्य।

उद्दीपन—उसकी विचित्रता या उसके गुणों की महिमा।

अनुभाव—रोमांच, कंप, गद्गद् वाणी, स्वेद, संभ्रम आदि।

संचारी भाव—वितर्क,भ्रांति, हर्ष, मोह आदि।

उदाहरण—(कवित्त)

गोपी-ग्वाल-माली[1] जुरे आपुस मै कहै आली
कोऊ जसुदा[2] के अवतर्यौ इंद्रजाली[3] है।
कहै 'पद्माकर' करै को यौ उताली[4] जापै,
रहन न पावै कहूँ एकौ फन खाली है।
देखैं देवताली[5], भई विधि[6] के खुस्याली[7], कूदि
किलकति काली हेरि हँसत कपाली[8] है।
जनम को चाली[9] एरी अद्भुत है ख्याली[10] आजु,
काली[11] की फनाली[12] पै नचत वनमाली[13] है॥

कालियनाग को नाथकर निकलने पर व्रजवासी इस प्रकार परस्पर कह रहे है। वे कृष्ण का यह कृत्य देखकर जो चकित हो

१ समूह। २ यशोदा। ३ जादूगर उत्पन्न हुआ। ४ उतावली। ५ देवताओ का समूह। ६ ब्रह्मा। ७ प्रसन्नता। ८ महादेव। ९ चालबाज। १० खेलवाड़ी। ११ कालियनाग। १२ फनो का समूह। १३ कृष्ण।

गए हैं, उससे आश्चर्य स्थायी भाव है। श्रीकृष्ण का कालियनाग को नाथकर यमुना से निकालना आलंबन है। कृष्ण का कालियनाग के फन पर उछल-उछलकर नाचना आदि उद्दीपन-विभाव हैं। गोपी-ग्वाल का दौड़-दौड़कर एकत्र होना, इस कृत्य के संबंध में अनेक प्रकार की बातें करना, देवताओं आदि का प्रसन्न होना अनुभाव है। कृष्ण की जन्म-भर की चालों के स्मरण से स्मृति, देखने के लिए दौड़ने से उत्सुकता, हर्ष, वितर्क आदि संचारी भाव है। अतः पूर्ण अद्भुत रस है।

(९) शांत

स्थायी भाव—निर्वेद अथवा शम।

आलंबन—संसार की अनित्यता का ज्ञान, परमात्मचिंतन आदि।

उद्दीपन—सत्संग, पुण्याश्रम, तीर्थस्थान, एकांत एवम् रमणीय वन, योग-क्रिया आदि।

अनुभाव—रोमांच आदि।

संचारी भाव—धृति, मति, निर्वेद, हर्ष, स्मृति आदि।

उदाहरण—(दोहा)

बन बितान रबि-ससि दिया, फल भो सलिल-प्रबाह॥
अवनि सेज पंखा पवन, अब न कछू परवाह॥

संसार की अनित्यता का ज्ञान आलंबन है। वन उद्दीपन है। 'अब हम निश्चिंत हैं' आदि कहना अनुभाव है। मति, धृति, हर्ष आदि संचारी भाव हैं।

सूचना—ऊपर कहा जा चुका है कि नाटक में केवल ८ ('शांत' को छोड़कर शेष आठ) ही रस माने जाते हैं। पर काव्य में उक्त नव रसों के

अतिरिक्त कुछ लोग और कई रस मानते हैं; जैसे-वत्सल, भक्ति, सख्य, दास्य, प्रेय और आनंद। पर प्राचीन आचार्यों ने वात्सल्य, भक्ति आदि को केवल भाव ही माना है। फिर भी स्फुट चमत्कार होने के कारण कई आचार्यों ने 'वत्सल' को रस मान लिया है। यहाँ पर वत्सल का भी निरूपण कर दिया जाता है।

(१०) वत्सल

स्थायी भाव—वात्सल्य।

आलंबन—पुत्रादि।

उद्दीपन—आलंबन की चेष्टाएँ आदि।

अनुभाव—स्नेहपूर्वक देखना, आलिंगन, चुंबन आदि।

संचारी भाव—हर्ष, गर्व आदि।

उदाहरण—(पद)

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निँदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न वेगि-सी आवै तोको कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत है कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि-रहि करि-करि सैन बतावै।
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुरलभ सो नँदभामिनि पावै।

श्रीकृष्ण पर यशोदा का वात्सल्य स्थायी भाव है। पलक मूँदना, अधर फड़काना आदि उद्दीपन है। हलराना, दुलराना, मल्हाना, सोता जानकर चुप हो रहना आदि अनुभाव है। हर्ष संचारी है।

पंचम प्रकाश

अलंकार

काव्य की शोभा करनेवाले धर्मों को अलंकार कहते हैं।*

'अलंकार' शब्द का अर्थ है 'गहना'। जिस प्रकार किसी व्यक्ति को गहना पहना देने से वह और सुंदर ज्ञात होने लगता है उसी प्रकार अलंकारों से विभूषित काव्य भी अधिक सुंदर ज्ञात होने लगता है।

'अलंकार' वस्तुतः बोलने अथवा लिखने की एक शैली है। बोलचाल में किसी बात को श्रोता या पाठक के मन में भली भाँति बैठा देने के लिए यह आवश्यकता होती है कि बात कुछ बनाकर कही जाय। इस प्रकार बात के सजाने में जो चमत्कार आ जाता है उसे रीति-ग्रंथों में 'अलंकार' के नाम से पुकारते हैं। यह चमत्कार बहुत स्पष्ट होना चाहिए, वाच्य होना चाहिए, जिससे पाठक

* काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते—काव्यादर्श।

या श्रोता उसे शीघ्रता से समझ लें। यदि इसमे गूढ़ता रहेगी तो यह एक दूसरी ही वस्तु हो जायगा, जिसे साहित्यशास्त्र मे 'व्यंग्य' कहते है।

सीधी-सादी बात कहने से वह सुनने में भी उतनी अच्छी नहीं जान पड़ती। इस कारण समाज मे, और विशेष करके काव्य-क्षेत्र में, उसे कुछ सजाकर ही कहना पड़ता है। उदाहरणार्थ यदि कहना हो कि 'राम का मुख सुंदर है' तो इसके स्थान पर 'राम मुख चंद्रमा सा सुंदर है' कहने से वाक्य रोचक प्रतीत होता है।

वाक्य मे 'शब्द' और उसका 'अर्थ' ही मुख्य होता है। इस विचार से अलंकारो के दो विभाग है—(१) शब्दालंकार और (२) अर्थालंकार।

(१) शब्दालंकार

जहाँ शब्दो के कारण चमत्कार हो वहाँ शब्दालंकार होता है।

शब्दालंकारो में केवल शब्दगत चमत्कार होता है, अर्थगत नही। इसलिए जिन शब्दो के कारण कथन मे चमत्कार होता है उनके स्थान पर वैसे ही अर्थ के दूसरे शब्द रख देने से वह चमत्कार नष्ट हो जाता है। अतः शब्दालंकारो के चमत्कारोत्पादक शब्द पर्यायवाची शब्दो से बदले नही जा सकते। यही कारण है कि इन्हें 'शब्दालंकार' कहते है, क्योकि ऐसे अलंकार केवल शब्दों पर ही आश्रित है, उनके अर्थ पर नही।

यहाँ पर केवल चार मुख्य शब्दालंकारों का वर्णन किया जाता है—(१) अनुप्रास, (२) यमक, (३) वक्रोक्ति और (४) श्लेप।

(१) अनुप्रास

जहाँ अक्षरों की समानता दिखाई जाय, उनके स्वर मिले या न मिले, वहाँ अनुप्रासालंकार होता है।

'अनुप्रास' शब्द का अर्थ है—'अनु' अर्थात् 'बारंबार' और 'प्रास' अर्थात् 'रखना'। जहाँ बार-बार वही वर्ण रखा जाय, वहाँ अनुप्रासालंकार होता है। 'क' से लेकर 'ह' तक व्यंजन और अ से लेकर 'औ' तक स्वर कहलाते हैं। इन सबको अक्षर या वर्ण कहते हैं। ऊपर लक्षण में जो 'स्वर' शब्द लिखा गया है उसका तात्पर्य व्यंजनों मे लगनेवाली 'मात्राओं' से है। जैसे—'का' मे 'ा' (आकार) 'कि' में 'ि' (इकार) और 'कु' में ' ु ' (उकार) की मात्राएँ है।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

वंदउँ गुरु-पद-पदुम[१] परागा[२]।
सुरुचि[३] सुबास[४] सरस[५] अनुरागा[६]॥

यहाँ 'पद', 'पदुम' और 'परागा' शब्दो के आदि में 'प' अक्षर की समानता है और 'सुरुचि' 'सुबास' एवम् 'सरस' शब्दों के आदि में 'स' अक्षर की समानता है। 'पद पदुम परागा' में 'प' का स्वर (मात्रा) तीनों स्थानों मे एक है, पर सुरुचि, सुवास, सरस में दो शब्दो में तो 'सु' है पर तीसरे मे 'स'। इसलिए स्वर नहीं मिलता। फिर भी यहाँ अनुप्रासालंकार माना जायगा।

अनुप्रासालंकार के तीन भेद किए गए हैं—(१) छेकानुप्रास, (२) वृत्त्यनुप्रास और (३) लाटानुप्रास।

(१) छेकानुप्रास—जहाँ एक वर्ण की अथवा अनेक वर्णों की समानता केवल एक बार हो, वहाँ छेकानुप्रास होता है।

'छेक' शब्द का अर्थ है 'चतुर'। इस अनुप्रास का प्रयोग चतुर लोग अपनी चातुरी दिखाने के लिए करते थे, इसी से इसका नाम 'छेकानुप्रास' है।

उदाहरण—(दोहा)

बगरे बीथिन मैं भ्रमर, भरे अजब अनुराग।
कुसुमित कुंजन मैं फिरत, फूल्यो स्याम सभाग॥

यहाँ 'बगरे बीथिन' में 'ब' की, 'भ्रमर भरे' में 'भ' की, 'अजब अनुराग' मे 'अ' की, 'कुसुमित कुंजन' में 'क' की, 'फिरत फूल्यो' मे 'फ' की और 'स्याम सभाग' मे 'स' की—केवल एक अक्षर की आवृत्ति है। दो अक्षरों की आवृत्ति जैसे 'हीरा हार' मे 'ह र' की होती है।

सूचना—अनुप्रास केवल शब्दों के आदि में आए हुए अक्षरों से ही नहीं होता, अंत में आए हुए अक्षरों से भी होता है। ऊपर दिए उदाहरण में 'भ्रमर भरे' में 'र' का भी अनुप्रास है। पर स्मरण रखना चाहिए कि अनुप्रास एक सिलसिले से हो, तभी चमत्कार माना जायगा। यदि शब्दो के आदि-अक्षर मिलते हैं, तो आद्यक्षर ही मिलें और अत के अक्षर मिलते हैं, तो वे ही क्रम से मिलें। किसी शब्द के आदि में जो अक्षर है वही अक्षर यदि दूसरे शब्द के अंत में हो तो अनुप्रास न होगा। यथा—'रस-सर' मे 'र' या 'स' किसी अक्षर का अनुप्रास नही माना जायगा, पर यदि 'रस-रास' होगा तो 'र' और 'स' का अनुप्रास होगा।

(२) वृत्ति-अनुप्रास—जहाँ एक या अनेक वर्णों की समानता कई बार हो वहाँ वृत्ति-अनुप्रास होता है।

इसका नाम 'वृत्ति-अनुप्रास' इसलिए है कि इसमे अक्षर वीर

आदि रसों का विचार करके उनकी वृत्ति के अनुकूल रखे जाते है। जैसे—वीर रस के लिए कुछ कठोर अक्षरों से बने शब्दों को आवश्यकता होती है और शृंगार या शांत रस के लिए कोमल अक्षरों से बने शब्दो की। इसलिए इस अनुप्रास के तीन विभाग किए गए है।

रस के अनुकूल कुछ बँधे हुए वर्णों का व्यवहार करने को 'वृत्ति' कहते है। प्रधान रसों—शृंगार, वीर और शांत के अनुकूल यह तीन भागो में बाँटी गई है।

(१) उपनागरिका वृत्ति—यह वृत्ति शृंगार, हास्य और करुण रस मे प्रयुक्त होती है। इस वृत्ति मे टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ) को छोड़कर शेष मधुर वर्ण और सानुनासिक वर्ण प्रयुक्त होते है।

(२) परुषा वृत्ति—यह वीर, रौद्र और भयानक रसो में उपयोगी होती है। इसमें टवर्ग द्वित्व वर्ण (क्क, च्च, ट्ट, त्त, प्प आदि, रेफ और श, ष आदि कठोर वर्ण, लंबे-लंबे समास और संयुक्त वर्ण (क्ख, च्छ, ड्ड, त्थ आदि) अधिक रखे जाते है।

(३) कोमला वृत्ति—यह शांत, अद्भुत और बीभत्स रसों मे काम आती है। इसमें य, र, ल, व, स, ह, आदि कोमल अक्षर, छोटे-छोटे समास अथवा बिना समास के शब्द काम में लाए जाते है।

(१) उपनागरिका वृत्ति

उदाहरण—(कवित्त)

चामर-सी चंदन-सी चंदिका-सी चंद-ऐसी,
चाँदनी चमेली चारु चाँदी-सी सुघर[1] है।

---

१ सुंदर।

कुंद-सी कुमुद-सी कपूर-सी कपास-ऐसी
कल्पतरु कुसुम-सी कीरति-सी बर है।
'पूरन' प्रकास-ऐसी कास-ऐसी हास-ऐसी,
सुख के सुपास-ऐसी सुषमा की घर है।
पाप को जहर-ऐसी कलि को कहर[1]-ऐसी,
सुधा की छहर[2]-ऐसी गंगा की लहर है॥

इसमें च, क, प आदि मधुर अक्षरों और यत्र-तत्र सानु-नासिक व्यंजनों (चं, कुं आदि) का प्रयोग हुआ है।

(२) परुषा वृत्ति

उदाहरण—(छप्पय)

डिगति उर्वि[3] अति गुर्वि[4], सर्व पब्बै[5] समुद्र सर।
ब्याल वधिर तेहि काल, विकल दिग्पाल चराचर।
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर[6]।
सुरविमान हिसभानु[7], भानु संघटित परस्पर।
चौंके विरंचि संकर-सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि, जबहि राम सिवधनु, दल्यौ॥

इसमें संयुक्त वर्ण (व्य,क्ख) द्वित्व वर्ण (ब्ब, ग्ग) रेफ (र्वि) तथा कर्कश वर्ण प्रयुक्त हुए है।

(३) कोमला वृत्ति

उदाहरण—(कवित्त)

ख्याल ही की खोल[8] मैं अखिल ख्याल खेलि-खेलि,
गाफिल ह्वै भूल्यौ दुख-दोष की खुस्याली तैं।
लाख-लाख भाँति अभिलाष लखे लाख अरु
अलख[9] लख्यौ न लखी लालन[10] की लाली तैं।

---

१ आफत ढहानेवाली। २ फैलाव। ३ पृथ्वी। ४ भारी, वजनी। ५ पर्वत। ६ मुँह के बल। ७ चद्र। ८ चोगा। ९ ईश्वर। १० रत्न।

हरि-हर 'देव' प्रभु सों न पल पाली प्रीति,
दै-दै करताली न रिझायौ बनमाली तैं।
झूठी झिलमिल की झलक ही मैं भूलौ,
जल मल की पखाल[1] खल खाली खाल पाली तैं॥

इसमे ख, ल, प आदि की आवृत्ति और छोटे समास है।

(३) लाटानुप्रास—जहाँ शब्दों या वाक्यो की आवृत्ति हो और उनका अर्थ भी वही रहे, केवल अन्वय करने से तात्पर्य बदल जाय, वहाँ लाटानुप्रास होता है।

छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास वस्तुतः वर्णों के अनुप्रास है और लाटानुप्रास शब्दो का अनुप्रास है। इसका ऐसा नाम पड़ने का कारण यह है कि इसे 'लाट' (गुजरात) देश के लोगो ने निकाला है।

उदाहरण—(दोहा)

रामभजन जो करत नहिं, भव-बंधन-भय ताहि।
रामभजन जो करत, नहि भव-बंधन-भय ताहि॥

यहाँ दोनो पंक्तियों मे शब्द एक ही है और उनका अर्थ भी एक ही है; किंतु अन्वय होने पर दोनो के तात्पर्य भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। पूर्वार्द्ध का तात्पर्य है—जो राम का भजन नही करता है उसे संसार के बंधन का भय है और उत्तरार्द्ध का तात्पर्य है कि जो राम का भजन करता है उसे संसार का भय नहीं है।

ऊपर वाक्य (कई शब्दों) की आवृत्ति का उदाहरण दिया गया है अब एक शब्द की आवृत्ति का उदाहरण दिया जाता है—

१ मशक।

नंद-चख[1]-चंद चंद-बंस नभ-[2]चंद,
व्रजचंद-मुख-चंद पै अनेक चंद वारौं[3] मैं।

यहाँ 'चंद' शब्द की आवृत्ति है। सभी स्थानों में इसका एक ही अर्थ है, पर भिन्न-भिन्न शब्दों के साथ अन्वय होने से तात्पर्य बदल-बदल गया है।

(२) यमक

जहाँ निरर्थक अथवा सार्थक स्वर-व्यंजनो के समूह की आवृत्ति हो वहाँ यमकालंकार होता है।

'यमक' शब्द का अर्थ है 'दो'। इसीलिए इस अलंकार में एक ही आकारवाले शब्दो का बारंबार प्रयोग होता है।

उदाहरण—(दोहा)

सोभा सोभित आँगन रु, हय हींसत[4] हयसार।
बारन बारन गुंजरत, बिन दीने संसार॥

इसमें पहले 'बारन' का अर्थ 'दरवाजो पर' है और दूसरे 'वारन' का अर्थ 'हाथी'।

चतुर है चतुरानन[5]-सा वही
सुभग भाग्य-विभूषित भाल[6] है।
मन, जिसे मन मे पर-काव्य[7] की
रुचिरता[8] चिरताप-करी[9] न हो॥

यहाँ चतुर्थ चरण मे 'चिरता' का यमक है। इस 'चिरता' का दोनों स्थानो पर कोई अर्थ नहीं होता, इससे यह निरर्थक

१ आँख। २ आकाश। ३ न्यौछावर करता हूँ। ४ हिनहिनाते हैं। ५ ब्रह्मा। ६ ललाट। ७ दूसरे की कविता। ८ सुदरता। ९ बहुत दिनो तक संताप करनेवाली।

यमक का उदाहरण है। पहला उदाहरण सार्थक यमक का है, क्योंकि वहाँ दोनों शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं।

सूचना—लोगों ने यमक के बहुत-से भेद कर डाले हैं; पर वे सब इन्हीं सार्थक और निरर्थक के हेर-फेर से बनते हैं। उनका विस्तार यहाँ अनावश्यक है। कभी-कभी पूरे पूरे वाक्यों का भी यमक होता है। इसके अतिरिक्त छंदों के चरण के अंत और आदि में एक यमक होता है, जो प्राचीन कवियों में बहुत प्रचलित था। इसका नाम 'मुक्त-पद-ग्राह्य' या 'सिंहावलोकन' है। 'मुक्त-पद-ग्राह्य' नाम इसलिए है कि पिछले चरण के अंत में जो 'पद' (शब्द) छोड़ा जाता है अगले चरण के आदि में वह ग्रहण कर लिया जाता है। 'सिंहावलोकन' इसलिए कहते हैं कि सिंह जैसे दाहिने-बाएँ देखता चलता है उसी प्रकार यह यमक भी दाहिने-बाएँ पड़ता है।

(१) वाक्यावृत्ति

उदाहरण—(कवित्त)

ऊँचे घोर मंदर[१] के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर[२] के अंदर रहाती हैं।
कंद-मूल भोग करैं[३] कंद-मूल[४] भोग करैं,
तीन बेर[५] खातीं ते वै तीन बेर[६] खाती हैं।
भूषन सिथिल अंग[७] भूखन सिथिल अंग[८],
बिजन डोलातीं[९] ते वै बिजन डोलाती[१०] हैं।

---

१ ऊचे और विशाल मदिर (राजमहल)। २ ऊँचे और भयावने पर्वत। ३ बढ़िया मिठाई खाती थीं। ४ कदा और जड़ें। ५ तीन बार (मर्तबा)। ६ तीन बेर (फल)। ७ आभूषणों (के बोझ) से जिनके अंग शिथिल (सुस्त) रहते थे। ८ भूखों से शरीर शिथिल है। ६ पंखा झलती थीं। १० बिना मनुष्य के (अकेली) घूमती हैं।

'भूषन' भनत सिवराज बीर तेरे त्रास[1],
नगन जड़ातीं[2] ते वै नगन जड़ाती[3] है ॥

(२) सिंहावलोकन

उदाहरण—(सवैया)

लाल है भाल सिंदूर-भरो मुख-सिंधुर[4] चारु[5] औ बाँह बिसाल[6] है।
साल[7] है सत्रुन को कवि देव' सुसोभित सोमकला[8] धरे भाल है[9]।
भाल है दीपत सूरज कोटि-सो काटत कोटि कुसंकट-जाल[10] है।
जाल[11] है बुद्धि-विवेकन को यह पारबती को लड़ायतो[12]
लाल[13] है ॥

इस सवैये के प्रथम चरण के अंत मे 'बिसाल है' है और उसके साथ जो 'साल है' वही अगले चरण के आदि मे ग्रहण किया गया है। दोनों में अर्थ अलग-अलग हो गया है। इसी प्रकार शेष चरणों में भी समझ लेना चाहिए।

सूचना—'लाटानुप्रास' मे जिन शब्दों की आवृत्ति होती है उनका अर्थ एक ही होता है, पर 'यमक' में अर्थ भिन्न-भिन्न होता है।

(३) वक्रोक्ति

जहाँ श्लेष[14] अथवा काकु[15] से कहनेवाले के कथन का सुननेवाला दूसरा ही अर्थ करे वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।

'वक्रोक्ति' शब्द का अर्थ है—उक्ति (कथन) को वक्र (टेढ़ा) करना (वक्र + उक्ति)। इस अलंकार मे श्रोता

---

१ डर। २ (गहनों में) नग जडवाती थीं। ३ नंगी जाड़ा खाती है। ४ हाथी के मुख ऐसा मुख। ५ सुंदर। ६ लम्बी। ७ शल्य (दुःखद)। ८ चद्रमा की कला (द्वितीया का चंद्रमा)। ९ शोभा पाता है। १० जंजाल, झगड़ा-बखेडा। ११ समूह। १२ प्यारा। १३ पुत्र। १४ दो अर्थवाले शब्दो के द्वारा। १५ कंठ ध्वनि को बदलकर।

वक्ता के कथन को टेढ़-मेढ़ा करके उसका एक दूसरा ही अर्थ ठहराता है।

इसके दो भेद होते हैं—(१) श्लेष-वक्रोक्ति और (२) काकु-वक्रोक्ति।

(१) श्लेष-वक्रोक्ति

जहाँ कहनेवाले ने जो बात जिस अभिप्राय से कही हो सुननेवाला श्लेष से उसका दूसरा अर्थ करे वहाँ श्लेष-वक्रोक्ति होती है।

इसके भी दो भेद किए गए हैं—(१) भंगपद और (२) अभंगपद।

(१) भंगपद—इसमें वक्ता के कहे हुए शब्दों के टुकड़े करके अन्यार्थ किया जाता है। इसी से इसे 'भंगपद' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

मान तजो गहि सुमति बर, पुनि-पुनि होति न देह।
मानत जोगी जोग को, हम नहिं करत सनेह॥

कोई अपने मित्र से कहता है—'हे बर (श्रेष्ठ), सुमति गहि (सुंदर बुद्धि धारण करके) मान तजो (रूठना छोड़ दो)।' इन्हीं शब्दों को सुननेवाला मित्र—'मानत जोगहि सुमति-बर (सुंदर मतिवाले लोग योग को मानते हैं)'—भंगपद करके उत्तर देता है कि योगी लोग योग को मानते हैं; हम योग (प्रेम) नहीं करेंगे (रूठे ही रहेंगे)।

(२) अभंगपद—इसमें कहे हुए शब्दों का खंड नहीं होता। पूरे पद का दूसरा अर्थ कल्पित किया जाता है।

उदाहरण—(कवित्त)

साहितनै[1] तेरे बैर बैरिन को कौतुक[2] सो,
बूझत फिरत कहौ काहे रहे तचि हौ[3]।
सरजा[4] के डर हम आए इतै भाजि[5] तौऽब,
सिंह सों डराय याहू ठौर ते उकचिहौ[6]।
'भूषन' भनत वै कहै कि हम सिव कहैं,
तुम चतुराई सों कहत बात रचि हौ।
सिव जापै रूठैं तौ निपट कठिनाई,
तुम बैर त्रिपुरारि[7] के त्रिलोक मैं न बचिहौ॥

इस कवित्त में शिवाजी के बैरी सरजा (शरजाह, एक उपाधि) और शिव (शिवाजी) से डरने की बात कहते है जिसका अर्थ सुननेवाला सिंह और महादेव करके उन्हें उत्तर देता है।

(२) काकु-वक्रोक्ति

जहाँ वक्ता के कहे हुए वाक्य का श्रोता कंठध्वनि-विकार से भिन्न अर्थ कर दे वहाँ काकु-वक्रोक्ति होती है। 'काकु' शब्द का अर्थ 'कंठ की ध्वनि का विकार' है।

उदाहरण—(सोरठा)

क्यों ह्वै रह्यो निरास[8], कहि-कहि 'नहिं हरिहैं बिपति।'
राखिय दृढ़ विस्वास, हरि[9] ह्वै नहिं हरिहैं बिपति?

कोई विपत्ति का मारा कहता है कि भगवान् 'नहिं हरिहैं बिपत्ति' (दुःख को नहीं दूर करेंगे)। दूसरा व्यक्ति इन्हीं शब्दों

१ शाहजी के पुत्र, शिवाजी। २ तमाशा। ३ दुःखी हो रहे हो। ४ शरजाह (एक उपाधि) और शरजः (सिंह)। ५ भागकर। ६ उखड़ जाओगे, भागोगे। ७ महादेव। ८ हताश। ९ भगवान्।

का केवल कंठध्वनि से दूसरा अर्थ कर देता है—'नहिं हरिहैं बिपति ?' (क्या विपत्ति नहीं हरण करेंगे ? अर्थात् अवश्य हरण करेंगे)।

सूचना—अपनी उक्ति के वक्र करने में काकु-वक्रोक्ति नहीं होगी। दूसरे द्वारा उसका भिन्नार्थ किया जाना आवश्यक है। अपनी उक्ति के वक्र करने में 'व्यंग्य' होता है, जो अलंकार से भिन्न है।

(४) श्लेष

जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिनके एक से अधिक अर्थ होते हों वहाँ श्लेषालंकार होता है।

'श्लेष' शब्द का अर्थ है 'चिपका हुआ'। इस अलंकार में जिन शब्दों का प्रयोग होता है उनमें कई अर्थ चिपके रहते हैं।

श्लेष में भी अभंगपद और भंगपद के विचार से दो प्रकार होते हैं।

(१) अभंगपद

उदाहरण—(अर्धाली)

रावन-सिर-सरोज-बनचारी[1]।

चलि रघुबीर-सिलीमुख-धारी[2]॥

यहाँ पर 'शिलीमुख' के दो अर्थ हैं—(१) बाण और (२) भौंरा। क्योंकि 'रावण के सिर-रूपी कमल-वन में शिलीमुख की सेना प्रवेश कर रही है' में केवल बाण अर्थ से खूबी नहीं आती, इसी से दो अर्थवाला 'शिलीमुख' शब्द रखा गया है।

---

१ सिर रूपी कमल-वन में घूमनेवाली। २ सेना।

(२) भंगपद

उदाहरण—(अर्धाली)

बहुरि सक्र[1]सम बिनवउँ तेही।
संतत[2] सुरानीक हित जेही ॥

यहाँ 'सुरानीक' पद के दो अर्थ हैं—(१) सुर + अनीक = सेना अर्थात् देवताओं की सेना और (२) सुरा = शराब + नीक = बढ़िया अर्थात् शराब अच्छी लगती है। पहला अर्थ इंद्र के पक्ष में लगता है, क्योंकि उसे देवों की सेना प्रिय है और दूसरा अर्थ दुष्टों पर घटता है, जो शराब पीते हैं।

अर्थालंकार

जहाँ अर्थ मे चमत्कार पाया जाय वहाँ अर्थालंकार होता है।

अर्थालंकार में अर्थ के कारण चमत्कार होता है। जिन शब्दों के अर्थ से कोई चमत्कार उत्पन्न हो रहा है उन्हें पर्यायवाची शब्दो से भी बदल सकते है और ऐसा करने पर भी वह चमत्कार बना रहेगा।

यद्यपि जिस क्रम से अर्थालंकारों का वर्णन प्राचीन ग्रंथो मे होता आया है उसमें मिलते-जुलते अलंकार आस-पास ही मिलते हैं, पर वस्तुतः अलंकारों का वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकरण करके निरूपण करने का उद्योग कम हुआ है। अर्थालंकारों का वर्गीकरण जिस प्रकार किया जा सकता है वह संस्कृत के 'अलंकार-सर्वस्व के' आधार पर नीचे वृक्षरूप में दिया जाता है।

---

१ इंद्र। २ सदा।
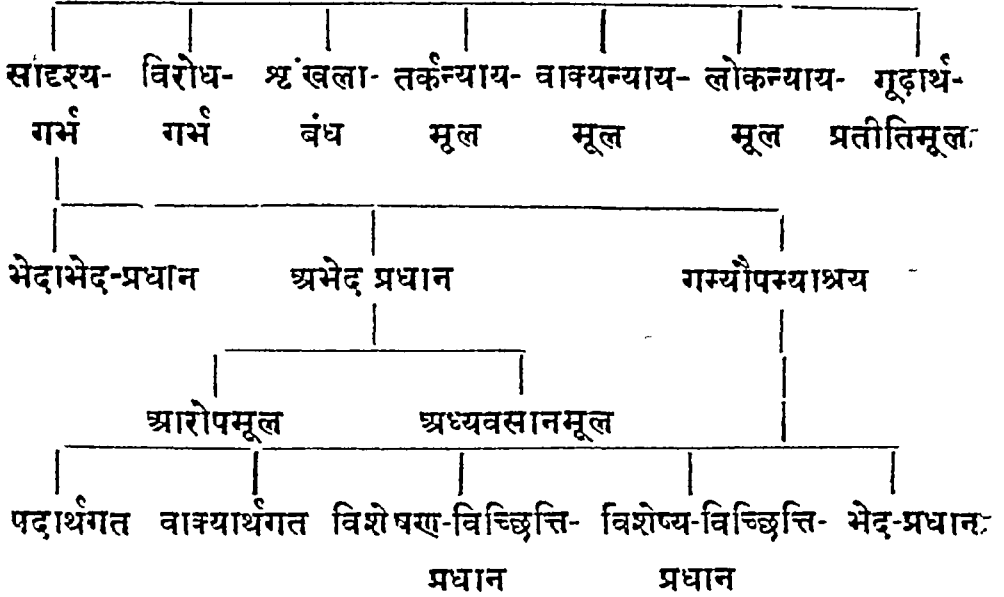
किस भेद के अंतर्गत कौन-कौन अलंकार रखे जा सकते हैं यह भी नीचे दिया जाता है—

भेदाभेद-प्रधान—उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, स्मरण।

आरोपमूल—रूपक, परिणाम, संदेह, भ्रांतिमान, उल्लेख, अपह्नुति।

अध्यवसानमूल—उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति।

पदार्थगत—तुल्योगिता, दीपक।

वाक्यार्थगत—प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत, निदर्शना।

विशेषण-विच्छित्ति-प्रधान—समासोक्ति, परिकर।

विशेष्य-विच्छि०—श्लेष।

भेद-प्रधान—व्यतिरेक, सहोक्ति।

विरोध०—विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, असंगति, विषम, अधिक।

शृंखला०—एकावली, मालादीपक।

तर्कन्यायमूल—काव्यलिंग।

वाक्यन्यायमूल—यथासंख्य, परिवृत्ति, परिसंख्या, समुच्चय।

लोकन्यायमूल—प्रतीप, मीलित, तद्गुण, अतद्गुण।

गूढ़ार्थप्रतीति०—सूक्ष्म, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, उदात्त।

अर्थालंकारो की संख्या सौ से भी ऊपर है, पर उनमे से केवल मुख्य-मुख्य अलंकारो का वर्णन किया जाता है।

(१) उपमा

जहाँ किसी प्रकार की सधर्मता के कारण एक वस्तु दूसरी वस्तु के समान कही जाय वहाँ उपमालंकार होता है।

'उपमा' शब्द का अर्थ है—'उप' अर्थात् समीप और 'मा' अर्थात् निर्णय करना (तौलना)। इस अलंकार में दो पदार्थ एक स्थान में रखकर जाँचे जाते हैं और समानता के कारण एक से कहे जाते हैं। इसी से इसे 'उपमा' कहते हैं।

उपमा में चार अंग होते हैं—(१) उपमेय, (२) उपमान, (३) साधारण धर्म और (४) वाचक।

उपमेय—जिस वस्तु का वर्णन किया जाता है उसे उपमेय कहते हैं।

उपमान—किसी वस्तु के लिए जिस वस्तु की समता दी जाती है उसे उपमान कहते हैं।

साधारण धर्म—जिस विशेषता के कारण उपमेय और उपमान में समता दिखाई जाती है, उसे साधारण-धर्म कहते हैं।

वाचक—जिस शब्द के द्वारा उपमेय और उपमान की समानता सूचित होती है वह वाचक कहलाता है। जैसे—सा, इव, तुल्य, लौं, सदृश, सम, ज्यों, जैसे, जिमि, समान, इमि आदि।

उदाहरण—(द्रुतविलंबित)

अतसि-पुष्प-अलंकृतकारिणी
सुछवि नीलसरोरुहवर्द्धिनी।
नवल सुंदर श्याम-शरीर की
सजल नीरद-सी कल कांति थी॥

यहाँ 'श्याम-शरीर' उपमेय, 'सजल नीरद' उपमान, 'कल कांति' साधारण धर्म और 'सी' वाचक है।

उपमा के दो भेद होते है—(१) पूर्णोपमा और (२) (२) लुप्तोपमा।

(१) पूर्णोपमा

जहाँ उपमा के चारों अंग (उपमेय, उपमान, साधारण धर्म, वाचक) प्रकट रूप में वर्तमान हों वहाँ पूर्णोपमा होती है।

उदाहरण—(कवित्त)

फूलि उठे कमल-से अमल[1] हितू[2] के नैन,
कहै 'रघुनाथ' भरे चैन-रस सियरे[3]।
दौरि आए भौंर-से करत गुनी गुन-गान,
सिद्ध-से सुजान सुख-सागर सो नियरे[4]।
सुरभी[5]-सी खुलन सुकबि की सुमति लागी,
चिरिया-सी जागी चिंता जनक के जियरे[6]।

---

१ निर्मल। २ हितुआ (मित्र)। ३ शीतल। ४ निकट। ५ गाय। ६ हृदय में।

धनुष पै ठाढ़े राम रबि-से लसत आज,
भोर[1] के-से नखत[2] नरिंद[3] परे पियरे[4] ॥

इस कबित्त के प्रथम चरण मे 'नयन' उपमेय, 'कमल' उपमान, 'अमल' साधारण धर्म और 'से' वाचक है। शेष चरणो में भी पूर्णोपमाएँ है, उन्हें स्वयम् समझ लेना चाहिए।

(२) लुप्तोपमा

जहाँ उपमा के चारों अंगों (उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक) में से किसी एक, दो अथवा तीन का लोप हो, वहाँ लुप्तोपमा होती है।

प्रस्तार करने से लुप्तोपमा के १४ भेद हो सकते हैं। किंतु उनमें से उपमेयोपमानलुप्ता, धर्मोपमेयोपमानलुप्ता और वाचकोपमेयोपमान लुप्ता में कोई चमत्कार नहीं हो सकता ; क्योकि केवल धर्म या वाचक से अथवा इन दोनों के रहने से उपमा का निर्वाह ठीक-ठीक नही हो सकता। इसी प्रकार 'उपमेय' का लोप होना सभी स्थानों में संभव नहीं इसलिए उपमेयलुप्ता, धर्मोपमेयलुप्ता और धर्मवाचकोपमानलुप्ता भी नहीं बन सकतीं। इसी से लुप्तोपमा के आठ ही भेद माने गए है। ❀

(१) वाचकलुप्ता - जहाँ उपमेय, उपमान और धर्म हों, वाचक का कथन न हो।

---

१ प्रभात। २ नक्षत्र (तारे)। ३ राजा। ४ पीले।

❀ वर्ण्योपमानधर्माणा उपमावाचकस्य च।
एकद्वित्र्यनुपादानैर्भिन्ना लुप्तोपमाष्टधा ॥—चंद्रालोक।

उदाहरण—(पद)

दूलह राम सीय दुलही री।
घन-दामिनि[1] बर बरन हरन-मन सुंदरता नखसिख निबही, री ॥

यहाँ राम और सीता उपमेय, 'घन' और 'दामिनि' उपमान तथा 'बर-बरन' धर्म है, वाचक नहीं है।

(२) धर्मलुप्ता—जहाँ उपमेय, उपमान और वाचक हों, धर्म का कथन न हो।

उदाहरण—(पद)

पथिक पयादे जात पंकज-से पाय हैं।
मारग कठिन कुस-कंटक निकाय[2] हैं॥

पैर उपमेय, 'पंकज' उपमान और 'से' वाचक तो है, पर 'कोमल' धर्म का कथन नहीं है।

(३) उपमानलुप्ता—जहाँ उपमेय, वाचक, धर्म का कथन हो, उपमान न हो।

उदाहरण—(दोहा)

छिन इत छिन उत तकि रहत, अध-ऊरध ठहरैं न।
डरे हरिन के-से चपल, कहा करें ये नैन॥

इसमें नेत्र उपमेय, 'से' वाचक और 'चपल' धर्म है, उपमान नहीं है। 'हरिन' को उपमान नही समझना चाहिए। क्योंकि 'हरिण के नेत्र' उपमान होते हैं, 'हरिण' नहीं। यहाँ 'हरिन' शब्द उपमा का सूचक है।

(४) धर्म-वाचकलुप्ता—जहाँ उपमेय और उपमान हों, पर धर्म और वाचक का कथन न हो।

---

१ बिजली। २ समूह।

उदाहरण—(अर्धाली)

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी । सब सुतबधू देवसरि-बारी ॥

यहाँ सुतबधू (पतोहुएँ) उपमेय और देवसरि-बारी (गंगा-जल) उपमान है, पर धर्म और वाचक का लोप है ।

(५) धर्मोपमानलुप्ता—जहाँ उपमेय और वाचक हों, पर धर्म और उपमान न कहे जायँ ।

उदाहरण—(कबित्त)

भले भूप कहत भले भदेस[1] भूपनि सो
लोक लखि बोलिए, पुनीत रीतिमारषी[2] ।
जगदंबा जानकी, जगतपितु रामभद्र
जानि, जिय जोओ, ज्यौं न लागै मुँह कारखी ।
देखे हैं अनेक ब्याह, सुने है पुरान-बेद,
बूझे हैं सुजान-साधु नर-नारि पारखी ।
ऐसे सम समधी, समाज ना बिराजमान,
राम-से न बर, दुलही न सीय सारखी[3] ॥

इस कबित्त में राम उपमेय और 'से' वाचक, 'सीय' उपमेय और 'सारखी' वाचक है । उपमान और धर्म का कथन नहीं है ।

(६) वाचकोपमानलुप्ता—जहाँ उपमेय और धर्म तो हों, पर उपमान और वाचक का लोप हो ।

उदाहरण—(दोहा)

अरुन-सेत दाखो दसन, मधुर कोकिला तान ।
चंचल मृग दृग, नासिका सुक-सुढरनि अनुमान ॥

यहाँ 'दसन' उपमेय और 'अरुन-सेत' धर्म है । उपमान

---

१ बुरे । २ आर्षी रीति, ऋषियों की रीति । ३ सदृश ।

और वाचक नहीं है। 'दारयो' (दाड़िम) उपमा का सूचक है क्योंकि दाँत के उपमान अनार के दाने होते हैं। इसी प्रकार और भी समझ ले।

(७) वाचकोपमेयलुप्ता - जहाँ उपमान और धर्म तो हों, पर पमेय और वाचक न हों।

उदाहरण—(दोहार्ध)

चढ़ो कदम[1] पै कालिया, विषधर देखो आय।

यहाँ 'काला नाग' उपमान और 'विष धारण करना' धर्म है। 'श्रीकृष्ण' उपमेय और 'सरिस' आदि वाचक नहीं हैं।

(८) धर्म-वाचकोपमानलुप्ता—जहाँ केवल उपमेय हो; उपमान, धर्म और वाचक का लोप हो।

कुंजर[2]-मनि-कंठा-कलित, उरन्ह तुलसिका-माल।
बृषभ-कंध, केहरि[3]-ठवनि, बलनिधि बाहु बिसाल॥

यहाँ 'बृषभ-कंध' में वृषभ को केवल उपमासूचक ही समझना चाहिए, उपमान नहीं। क्योंकि उपमान वृषभ का स्कंध होता है।

सूचना—कुछ आचार्य उपमेय का लोप कहीं भी संभव नहीं मानते। इस प्रकार वे केवल सात लुप्तोपमाएँ ही मानते हैं।

उपमा के उक्त दो भेदों के अतिरिक्त इसका वर्णन और कई प्रकार से हो सकता है जिनमें से केवल दो—(१) मालोपमा और (२) रशनोपमा नीचे दी जाती हैं।

---

१ कदंब का वृक्ष। २ हाथी। ३ सिंह।

(१) मालोपमा

जहाँ एक उपमेय के बहुत से उपमान कहे जायँ वहाँ मालोपमा होती है।

वह दो प्रकार की होती है—(१) भिन्नधर्मा और (२) अभिन्नधर्मा।

(१) भिन्नधर्मा—जहाँ अनेक उपमानो के पृथक्-पृथक् धर्मों से उपमा दी जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

हरन मोह-तम दिनकर-कर[1] से। सेवक-सालि[2]-पाल जलधर से।
अभिमतदानि देवतरु[3]-वर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर[4] से॥

इस चौपाई मे राम के गुणों की उपमा भिन्न-भिन्न धर्मों के कारण सूर्य, बादल आदि से दी गई है।

(२) अभिन्नधर्मा—जहाँ सभी उपमानो का एक ही धर्म कहा जाय।

उदाहरण—(कवित्त)

जेठ-भानु-कर[5] से, कपिल-कोप-लर[6] से हैं,
माल-दावानल से, त्यों गजब गहर[7] से।
काल बिकरारे से कुमार-दामिनी से देव,
दारुनकला से, प्रलैसिंधु की लहर से।
'लछिराम' जालिम जँजीरे जमजाल से ये,
कालदंड ख्याल से, कमालिया कहर[8] से।
कालिका-कृपान, मुंडमाली के त्रिसूल से है,
रामचंद्र-बान फनमाली[9] के जहर से॥

---

१ सूर्य की किरणें। २ अन्न। ३ कल्पवृक्ष। ४ विष्णु और महादेव। ५ किरण। ६ समूह। ६ विचित्र गूढ़ता। ८ भीषण सकट। ९ शेष।

यहाँ रामचंद्र के बाणों की उपमा एक ही धर्म के कारण सूर्य की किरणों आदि कई उपमानो से दी गई है।

(२) रशनोपमा

जहाँ पहले कहा हुआ उपमेय आगे चलकर दूसरे उपमेय का उपमान बनता जाय। इस प्रकार उपमेयों और उपमानों की एक जंजीर बन जाय, वहाँ 'रशनोपमा' होती है।

'रशना' शब्द का अर्थ है 'करधनी'। जिस प्रकार 'करधनी' की कड़ियाँ एक-दूसरी से गुथी रहती हैं अर्थात् पहली कड़ी को दूसरी कड़ी पकड़ती है एवम् दूसरी को तीसरी—इस रीति से एक जंजीर बन जाती है, उसी प्रकार इस अलंकार मे उपमेय को उपमान बनाते जाने से भी एक सिकड़ी-सी बन जाती है, इसी से इसे रशनोपमा कहते है।

उदाहरण—(दोहा)

सुगुन-ज्ञान सम उद्यमहु, उद्यम सम फल जान।
फल समान पुनि दान है, दान-सरिस सनमान॥

यहाँ ज्ञान के समान उद्यम उद्यम के समान फल, फल के समान दान और दान के समान संमान है—इस प्रकार पहले कहे हुए उद्यम आदि उपमेय आगे उपमान होते गए है।

सूचना—उपमा मे सादृश्य का ज्ञान कही हमें शब्दों के सुनते ही सीधे हो जाता है और कहीं-कहीं उसका ज्ञान अर्थ पर अवलंबित होता है। जैसे कहा जाय कि 'राम का मुख चंद्रमा के समान सुंदर है' तो यहाँ सादृश्य स्पष्ट लक्षित हो जाता है। पर यदि इस प्रकार कहें कि 'चंद्रमा राम के मुख का प्रतिद्वंद्वी या मित्र है' तो इसमें सादृश्य का ज्ञान अर्थ पर

अवलंबित है, लक्षणा द्वारा लक्षित होता है। इस प्रकार की उपमा को हिंदी मे ललितोपमा या लक्ष्योपमा कहते हैं। इसमें उपमेय का उपमान से बहस करना, उस पर हँसना, उसकी छवि अनुहरना, होड करना, उसका शत्रु, मित्र आदि होना कहा जाता है। जैसे—

उदाहरण—(सवैया)

उत स्यामघटा इत हैं अलकैं, बग-पाँति उतै इत मोती-लरी।
उत दामिनि दंत-चमंक इतै, उत चाप इतै भ्रुव बंक धरी।
उत चातक तो पिउ-पीउ रटै, बिसरै न इतै पिउ[1] एक घरी।
उत बूँद अखंड इतै अँसुवा, बरसा बिरहीन सो होड़ परी॥

(२) अनन्वय

जहाँ उपमेय और उपमान एक ही हो वहाँ अनन्वय अलंकार होता है।

'अनन्वय' शब्द का खंड है-अन् + अन्वय=संबंध अर्थात् दूसरे का संबंध न होना। इस अलंकार में उपमेय का दूसरे (उपमान) के साथ संबंध नहीं दिखलाया जाता। वह स्वयम् अपना उपमान बन जाता है। इसका कारण यह होता है कि उपमेय के समान उत्कृष्ट गुणोंवाला कोई उपमान नहीं मिलता जिसकी उपमा दी जा सके।

उदाहरण—(दोहा)

करम वचन मानस विमल, तुम समान तुम तात।
गुरु-समाज, लघुबंधु-गुन, कुसमय, किमि कहि जात॥

यहाँ रामजी भरत की प्रशंसा कर रहे हैं और कहते हैं कि 'तुम समान तुम', यही 'अनन्वय' है।

---

१ प्रिय।

(३) उपमेयोपमा

जहाँ उपमेय और उपमान परस्पर एक-दूसरे के उपमान और उपमेय हों वहाँ उपमेयोपमालंकर होता है।

इस अलंकार में उपमेय और उपमान का परस्पर मे उपमान और उपमेय होने का कारण यह है कि उपमेय के लिए केवल एक ही उपयुक्त उपमान मिलता है, दूसरा नहीं।

उदाहरण—(कवित्त)

भरत लखन सत्रुहन मोर-मंडली लौं,
मोर-बृंद-भाग भरतादि के समा सो है।
'लछिराम' झर मघा[1]-दान रघुबंसिन सो,
दान रघुबंसिन को झरनि मघा सो है।
मालाकार बीजुरी लौं मैथिली[2]-विलास बर
मैथिली-विलास बीजुरी की अरसा[3] सो है।
राम रघुबीर स्यामघन-परमा[4] सो भयो,
स्यामघन राम रघुबीर-परमा सो है॥

यहाँ चार चरणों मे चार उपमेयोपमाएँ हैं।

(४) प्रतीप

जहाँ उपमान को उपमेय बनाया जाय अथवा उपमेय से उपमान का निरादर आदि कराया जाय वहाँ प्रतीपालंकार होता है।

'प्रतीप' शब्द का अर्थ है 'विलोम' (उलटा)। इस अलं-

---

१ एक नक्षत्र (जिसमे पानी बहुत बरसता है)। २ सीता। ३ चमक। ४ शोभा।

कार में विलोमता का तात्पर्य है 'उपमान का तिरस्कार'। जहाँ उपमान का उपमेयवत् वर्णन किया जाता है वहाँ भी तात्पर्य उपमान के तिरस्कार से ही होता है। † इसके पाँच भेद हैं।

(१) प्रथम प्रतीप—जहाँ प्रसिद्ध उपमान को उपमेय कल्पित किया जाय।

उदाहरण—(कवित्त)

बान सो वजर[1] मघवान[2] को बखान्यौ जात,
धनु लौं कमान-काम रोप-रुचिराई मै।
सत्य सो विसद छीर-सागर मही मैं फैल्यौ,
साहस लौं केहरी विरद[3]-सुघराई मै।
'लछिराम' राम रावरे की सान-साहिबी सो,
मघवान मंडित प्रचंड बीरताई मै।
ओज सो अखंड भान[4] मान आसमान बीच,
दान सो विराजै सुरतरु[5] अमराई[6] मै॥

यहाँ प्रसिद्ध उपमान इंद्र को उपमेय बनाया गया है और रामचंद्र उपमेय को उपमान बनाकर उनकी कई वस्तुओं और विशेषताओं को भी, इंद्र की सादृश उपमान-वस्तुओं को उपमेय मानकर, उनका उपमान बना दिया गया है।

---

१ वज्र। २ इंद्र। ३ बाना। ४ सूर्य। ५ कल्पवृक्ष। ६ देवताओं का बाग।

* प्रतिकूलत्वं च तिरस्कारप्रयोजकत्वम्। एतस्य च सकलप्रतीपभेद-साधारणत्वम्।—अलंकारचंद्रिका।

† अनादरार्थमुपमेयभावः कल्प्यते।—काव्यप्रकाश।

उपमेयीकरणमेव अनादरहेतुः।—काव्यप्रदीप।

(२) द्वितीय प्रतीप--जहाँ कल्पित उपमेय द्वारा वर्णनीय (उपमेय) का निरादर किया जाय।

उदाहरण—(सवैया)

बारन[1]-बृंद सो स्याम-घटा, अरुझानी रहै सिखराली[2] पहार है।
त्यों 'लछिराम' प्रताप सो रावरे, सूरज बारहो को अवतार है।
औध सो श्रीरघुनाथ नरेस, बन्यो अमरावती[3] मंगलचार[4] है।
कीरति कैसे गरूर करै धग, या बिधि पावन गंग की धार है॥

यहाँ वारण (हाथी) उपमेय का कल्पित उपमेय स्याम-घटा से निरादर कराया गया है। इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिए।

(३) तृतीय प्रतीप--जहाँ उपमान का वर्णनीय के द्वारा निरादर किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

गरब करत कत चाँदनी, हीरक[5] छीर[6] समान।
फैली इती समाजगत, कीरति-सिवा खुमान[7]॥

यहाँ 'चाँदनी' उपमान का वर्णनीय (उपमेय) कीर्ति द्वारा निरादर कराया गया है।

(४) चतुर्थ प्रतीप—जहाँ उपमेय को उपमान द्वारा दी जाने-वाली समता अयोग्य ठहराई जाय।

---

१ हाथी। २ चोटियाँ। ३ इंद्र की नगरी। ४ मंगलमयी। ५ हीरा। ६ (क्षीर) दूध। ७ आयुष्मान्।

उदाहरण—(दोहा)

राम रावरे बदन[1] की सरवरि[2] करत मयंक[3]।
ते कविगन झूठे जगत, लखि मलीन सकलंक ॥

इस दोहे मे उपमान मयंक (चंद्रमा) के साथ उपमेय राम-मुख की समता ही अयोग्य बताई गई है।

(५) पंचम प्रतीप—'जब उपमान का कार्य कराने के लिए उपमेय (वर्णनीय) ही समर्थ है तब उपमान की क्या आवश्यकता' कहकर जहाँ उपमान की व्यर्थता बताई जाय।

उदाहरण—(दोहा)

प्रभा-करन तम-गुन-हरन, धरन सहस कर[4] राजु।
तव प्रताप ही जगत मैं, कहा भानु सों काजु ॥

यहाँ वर्णनीय प्रताप के, भानु (सूर्य) उपमान का कार्य कर लेने की क्षमता रखने के कारण, उस (सूर्य) की व्यर्थता दिखाई गई है।

(५) रूपक

जहाँ उपमेय को उपमान-रूप कहा जाय वहाँ रूपकालंकार होता है।

'रूपक' शब्द का अर्थ है—'रूप धारण करना'। इस अलंकार मे उपमेय उपमान का रूप धारण करता है।

इसके दो भेद होते हैं—(१) अभेद और (२) तद्रूप।

(१) अभेद

जहाँ बिना निषेध के उपमेय और उपमान अभेद-रूप से कहे जायँ।

---

१ मुख। २ समानता। ३ (मृगांक) चंद्रमा। ४ किरण और टैक्स।

'बिना निषेध' का तात्पर्य यह है कि आगे कहे जानेवाले 'अपन्हुति-अलंकार' से भिन्नता हो; क्योंकि वहाँ भी 'अभेदता' होती है, पर वह निषेधपूर्वक होती है।

उदाहरण—(दोहा)

प्रेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर-साधु-हित[1], कृपासिंधु रघुबीर॥

यहाँ पर प्रेम में अमृत का, विरह में मंदराचल का और भरत मे क्षीरसागर का अभेद आरोप किया गया है।

इसके तीन प्रकार है—(क) सम, (ख) अधिक और (ग) न्यून।

(क) सम अभेद—जहाँ किसी प्रकार की न्यूनाधिकता के बिना उपमान का सम-भाव से उपमेय में आरोप हो।

उदाहरण—(दोहा)

पतवारी-माला पकरि, और न कछू उपाव।
तरि संसार-पयोधि को, हरि-नामै करि नाव॥

यहाँ बिना किसी प्रकार की न्यूनाधिकता के पतवारी को माला, संसार को पयोधि और हरिनाम को नाव कहा गया है।

इसके भी तीन भेद होते है—(१) सावयव (सांग), (२) निरवयव (निरंग) और (३) परंपरित।

(१) सावयव—जहाँ अवयवो अर्थात् अंगो सहित उपमान का उपमेय मे आरोप किया जाय।

---

१ वास्ते, लिए।

इसके दो भेद हैं—(क) समस्त-वस्तु-विषयक और (ख) एकदेश-विवर्ति।

(क) समस्त-वस्तु-विषयक—जहाँ आरोप किए जानेवाले और जिनपर आरोप किया जाय उन सबका शब्दों में स्पष्ट रूप में कथन हो।

उदाहरण—(कवित्त)

चल-चित-पारद[१] की दंभ-कंचुली[२] कै दूरि,
ब्रज-मग-धूरि प्रेम-मूरि सुभ-सीली[३] लै।
कहै 'रतनाकर' सुजोगनि विधान भावि[४],
अमित प्रमान ज्ञान-गंधक गुनीली लै।
जारि घट[५] अंतर ही आह-धूम धारि सबै,
गोपी-विरहागिनि निरंतर जगीली लै।
आए लौटि ऊधव विभूति भव्य भायनि की,
कायनि की रुचिर रसायन रसीली लै॥

यहाँ उद्धव के ज्ञान का प्रेम में परिणत होना, पारे से रसायन बनने के रूपक से दिखाया गया है। ज्ञानी से प्रेमी बनने की अवस्थाओं का रसायन की क्रियाओं के साथ समन्वय प्रकट किया गया है और सब अंगों का यथावत् कथन है। इसलिए साग रूपक है।

(ख) एकदेश-विवर्ति—जहाँ आरोप्यमाण (जिसका आरोप किया जाय) कुछ तो शब्द द्वारा स्पष्ट कहे जाय और कुछ का ज्ञान अर्थ के बल से हो।

---

१ पारा। २ पारद के दोष। ३ उत्तम गुणवाली; आर्द्र। ४ करके। ५ हृदय रूपी घट (नकोरा आदि)।

उदाहरण—(दोहा)

नाम पहरुवा दिवस-निसि, ध्यान तुम्हार कपाट[1]।
लोचन निज-पद जंत्रिका, प्रान जाहिं केहि बाट[2]॥

यहाँ 'नाम' मे पहरुवा (द्वारपाल) का, ध्यान मे कपाट का और चरणों को नेत्रो से देखने मे जंत्रिका (ताला) का आरोप तो शब्दो द्वारा स्पष्ट किया गया है, किंतु प्रान मे बंदी का आरोप शब्दो द्वारा नहीं है, यह अर्थबल से जाना जाता है।

(२) निरवयव—जहाँ अवयवो (अंगो) अर्थात सामग्री के बिना केवल उपमान का उपमेय मे आरोप किया जाय।

उदाहरण—(मालिनी)

प्रिय पति, वह मेरा प्राण-प्यारा कहाँ है।
दुख-जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है।
लख मुख जिसका मै आज लौ जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नेत्र-तारा कहाँ है॥

यहाँ जलनिधि (समुद्र) का बिना किसी अंग के दुःख में आरोप किया गया है।

(३) परंपरित—जहाँ प्रधान रूपक का कारण एक दूसरा ही रूपक हो अर्थात् प्रधान रूपक के लिए पहले किसी अंतर्गत रूपक का निरूपण कर लिया जाय।

'परंपरित' शब्द का अर्थ है 'सिलसिलेवार'। इस रूपक मे पहले एक रूपक बनाया जाता है और उस रूपक के आधार पर एक दूसरे रूपक का वर्णन या निरूपण होता है, इसी से इसे 'परंपरित' रूपक कहते है।

---

१ किवाड। २ मार्ग।

उदाहरण—(दोहा)

महादानि जिनके हितू, जदुकुल-कैरव-चंद ।
ते दारिद-संताप तें, रहैं न किमि निरद्वंद[1]॥

यहाँ पर श्रीकृष्ण पर चंद्र उपमान का आरोप है। पर इस रूपक की सिद्धि के लिए पहले यदुवंश को 'कैरव' (कुमुद) कहा गया है। इसमें 'जदुकुल कैरव' रूपक पर मुख्य रूपक (श्रीकृष्ण रूपी चंद) आश्रित है।

इसके दो प्रकार है—(क) साधारण शब्दों द्वारा और (ख) श्लिष्ट शब्दो द्वारा ।

(क) साधारण शब्दो द्वारा

उदाहरण—(चौपाई)

सचिव सुभट भूपति-विचार के। कुंभज लोभ-उदधि अपार के।
काम-कोह-कलिमल-करि-गन के। केहरि-सावक जन-मन-बन के।

राम के गुण-ग्राम, विचार रूपी राजा के मंत्री, लोभ रूपी समुद्र के अगस्त्य और दास के मन रूपी वन मे बसनेवाले काम आदि हाथियो के लिये सिह-शावक कहे गए है ।

(ख) श्लिष्ट शब्दो द्वारा

उदाहरण—(कवित्त)

कुवलय जीतिबे कौं बीर बरिबंड राजैं,
करन[2] पै जाइबे कौं जाचक निहारे है।
सितासित[3] अरुनारे पानिप[4] के राखिबे कौं,
तीरथ के पति[5] है अलेख[6] लखि हारे हैं।

---

[1] निश्चित। [2] कान, राजा कर्ण। [3] उज्ज्वल और नीला। [4] शोभा; जल। [5] प्रयाग (त्रिवेणी)। [6] देवता।

बेधिबे कौ रस, मार डारिबे कौं महाबिष,
मीन कहिबे कौ 'दास' मानस[1]-बिहारे है।
देखत ही सुबरन[2] हीरा[3] हरिबे कौ,
पश्यतोहर[4] मनोहर ये लोचन तिहारे है॥

यहाँ 'कुबलय' के दो अर्थ है कमल और पृथ्वी-मंडल। इसलिए रूपक होगा कुबलय (कमल) रूपी कुबलय (पृथ्वी-मंडल) को जीतने के लिए नेत्र वीर बरिबंड है। इसी प्रकार अन्य चरणों मे भी श्लिष्ट परंपरिक रूपक है।

(ख) अधिक अभेद रूपक जहाँ उपमेय में उपमान का आरोप हो जाने पर उसमे कुछ अधिकता कही जाय।

उदाहरण—(सवैया)

जंग[5] मै अंग कठोर महा मद नीर झरै झरना सरसे है।
मूलनि रंग घने 'मतिराम' महीरुह[6] फूल-प्रभानि-कसे है।
सुदर सिंदुर-मंडित कुंभनि[7] गैरिक-शृंग उतंग लसे है।
भाऊ दिवान उदार अपार सजीव-पहार-करी[8] बकसे[9] है॥

इस सवैये मे हाथी पर पहाड़ का आरोप किया गया है और आरोप होने पर उसमे सजीवता अधिक हो गई है।

(ग) न्यून अभेद रूपक—जहाँ उपमेय पर उपमान का आरोप करने के पश्चात् उसमे कछ न्यूनता (कमी) कही जाय।

उदाहरण—(कवित्त)

साहि-तनै सिवराज 'भूषन' सुजस तव,
बिगिरि कलंक चंद उर आनयितु है।

---

१ मन और तालाब। २ सुदर रग; सोना। ३ हृदय, हीरा (रत्न)। ४ सुनार। ५ युद्ध। ६ वृक्ष। ७ हाथी का मस्तक। ८ हाथी। ९ दिए।

पंचानन[1] एक ही वदन गनि तोहि
गजानन[2] गज-वदन बिना बखानियतु है।
एक सीस ही सहस-सीस-कला[3] करिबे को
दुहीं दृग सो सहसदृग मानियतु है।
दुही कर[4] सो सहसकर[5] मानियतु तोहिं,
दुहीं बाहु सो सहसबाहु[6] जानियतु है ॥

इस कवित्त में यश आदि पर चंद आदि उपमानों का आरोप किया गया है। आरोप हो जाने पर 'कलंक न होना' आदि न्यूनताएँ बताई गई हैं।

(२) तद्रूप

जहाँ उपमेय को उपमान से भिन्न रखकर भी उसी का रूप और उसी का कार्य करनेवाला कहा जाय।

'तद्रूप' शब्द का अर्थ है 'उसका रूप'। इसमें उपमेय उपमान रूप कहा जाता है, दोनों की एकता नहीं हो जाती।

इसके भी तीन भेद होते हैं—(क) सम, (ख) अधिक और (ग) न्यून।

(क) सम तद्रूप

कहाँ हुती यह एक दिन, मीन अहै तुव नैन।
आँसुन बीच बसाय कै, किए ते साँचे वैन ॥

---

१ महादेव। २ गणेश। ३ शेषनाग का कार्य। ४ हाथ। ५ सूर्य। ६ सहस्रबाहु।

यहाँ भी नेत्र और मीन भिन्न रखे गए है, उनका एक मे आरोप नही है।

(ख) अधिक तद्रूप

उदाहरण—(दोहा)

सत को कामद, असत को भयप्रद, सब दिसि दौर।
'दास' जाँचिवे जोग यह, कल्पबृच्छ है और॥

इस दोहे मे किसी राजा उपमेय की और कल्पवृक्ष की तद्रूपता 'और' (अपर—अन्य) शब्द द्वारा दिखाई गई है। आरोप के पश्चात् 'सत् का दाता' और 'असत के लिए भय-दायक' कहकर अधिकता दिखाई गई है, क्योकि वास्तविक कल्प-वृक्ष भले-बुरे सभी मनोभिलापो का दायक है, पर यह बुरी बाछा सिद्ध नहीं करता।

(ग) हीन तद्रूप रूपक

उदाहरण—(बरवै)

दुइ भुज के हरि रघुबर सुंदर भेप।
एक जीभ के लछिमन दूसर सेष[1]॥

यहाँ रघुबर मे विष्णु का आरोप किए जाने पर उन्हें 'दो भुजावाले' कहकर न्यूनता दिखाई गई है, क्योकि विष्णु चतुर्भुज है। इसी प्रकार दूसरी पंक्ति मे भी समझ लेना चाहिए।

---

१ शेषनाग।

रूपक का चक्र

- रूपक
  - अभेद
    - सम
      - सावयव
        - समस्त-वस्तु-विषयक
        - एकदेश-विवर्ति
      - निरवयव
      - परंपरित
        - साधारण
        - श्लिष्ट
    - अधिक
    - न्यून
  - तद्रूप
    - सम
    - अधिक
    - न्यून
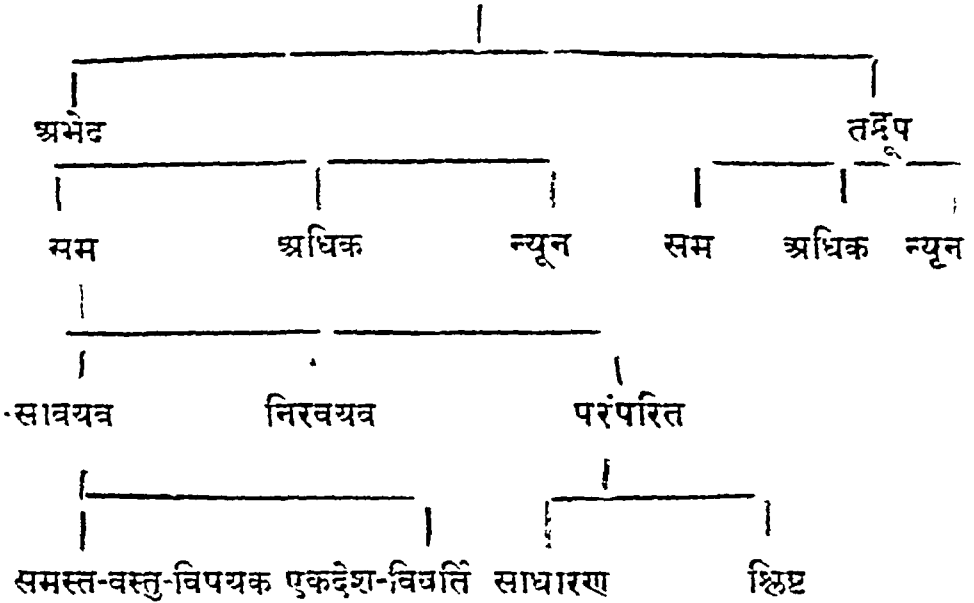
सूचना—उपमा (धर्म-वाचकलुप्तोपमा) और रूपक का अंतर जानने के लिए पहले यह देखना चाहिए कि समस्त-पद के रूप में कथित पद में उपमेय प्रधान है या उपमान। इस प्रधानता का ज्ञान वाक्य में कथित विशेषणों से, क्रिया आदि से होगा। विशेषणों का अन्वय जिसके साथ पूर्णतया हो वही प्रधान होगा। जहाँ उपमेय-पद प्रधान होता है वहाँ उपमा और जहाँ उपमान-पद प्रधान रहे वहाँ रूपक होगा। यदि दोनों की प्रधानता जान पड़े तो दोनों अलंकारों का 'संदेह-संकर' होगा। कुछ लोग मानते हैं कि उपमा में उपमान-पद पहले रखा जाता है (चंद्रमुख) और रूपक में उपमेय-पद (मुखचंद्र)। पर यह कोई तात्विक भेद नहीं है, और इसके विरुद्ध उदाहरण भी मिलते हैं।

(६) परिणाम

जहाँ उपमान उपमेय के साथ मिलकर कोई क्रिया करे वहाँ 'परिणामालंकार होता है।

'परिणाम' शब्द का अर्थ है 'स्वभाव का बदल जाना'। इस अलंकार में उपमान का स्वभाव (पूर्वस्थिति) बदल जाता है अर्थात् उपमान जो कार्य स्वयम् करने मे असमर्थ होता है उसे वह उपमेय के साहचर्य से कर सकने मे समर्थ हो जाता है।

उदाहरण—(वसंततिलका)

बाते बड़ी मधुर औ अति ही मनोज्ञा।
नाना मनोरम रहस्यमयी अनूठी।
जो है प्रसूत भवदीय मुखाब्ज द्वारा।
है वांछनीय वह, सर्व सुखेच्छुकों की॥

यहाँ अब्ज (कमल) उपमान मुख उपमेय के साथ बाते प्रसूत करने की क्रिया कर रहा है। मुख के साहचर्य के प्रथम वह इस कार्य के करने में असमर्थ था।

(७) उल्लेख

जहाँ एक व्यक्ति का अनेक प्रकार से वर्णन हो वहाँ उल्लेखालकार होता है।

'उल्लेख' शब्द का अर्थ है 'चित्रण करना, वर्णन करना।'

इसके दो प्रकार होते हैं—(१) प्रथम उल्लेख (एक व्यक्ति का वर्णन अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार से करें)। (२) द्वितीय उल्लेख (एक व्यक्ति का एक ही व्यक्ति अनेक प्रकार से वर्णन करे)।

(१) प्रथम उल्लेख—जहाँ एक व्यक्ति अनेक व्यक्तियों द्वारा अनेक प्रकार से लक्षित हो।

उदाहरण—(दोहा)

गोपीजन प्रियतम लख्यौ गुरुजन सिसु, सुर कंत।
जोगिन ब्रह्म हरिहि लख्यौ, भगत लख्यौ भगवंत॥

यहाँ एक श्रीकृष्ण को 'गोपी' आदि अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार से देख रहे है।

कभी कभी यह रूपक अलंकार से मिलकर भी होता है। जैसे;

उदाहरण—(सवैया)

एक कहै कलपद्रुम है इमि पूरत है सबकी चित-चाहै।
एक कहै अवतार मनोज[1] को यो तन मै अति सुंदरता है।
'भूषन' एक कहै महि-इंदु[2] यो राज विराजत बाढ़्यो महा है।
एक कहै नरसिंह[3] है संगर एक कहै नर-सिंह[4] सिवा है॥

इस सवैये मे एक ही व्यक्ति शिवाजी को—अनेक व्यक्ति, कल्पद्रुम आदि कहकर अनेक प्रकार से लक्षित करते है। यहाँ कल्पद्रुम का आरोप होने से रूपक का मिश्रण है।

सूचना—यदि रूपक का मालावत वर्णन किया जाय तो भी इससे भिन्न रहेगा, क्योंकि उसमें ज्ञाता एक रहता है और यहाँ अनेक।

(२) द्वितीय उल्लेख—जहाँ एक ही व्यक्ति एक ही व्यक्ति को अनेक प्रकार से लक्षित करे।

उदाहरण—(दोहा)

साधुन को सुखदानि है, दुर्जनगन दुखदानि।
वैरिन विक्रम हानिप्रद, राम तिहारे पानि।

यहाँ राम के हाथ (एक) का अनेक रूप मे कवि (एक) वर्णन कर रहा है।

---

१ कामदेव। २ चन्द्रमा। ३ नृसिंह। ४ मनुष्यों मे श्रेष्ठ।

यह भी रूपक से मिश्रित हो सकता है।

सूचना - रूपक में एक पदार्थ पर दूसरे का आरोप रहता है, पर उल्लेख में धर्म वास्तविक होते हैं।

(८) स्मरण

जहाँ पूर्व समय में देखी वस्तु (उपमेय) के समान दूसरी वस्तु (उपमान) के देखने से उसकी (उपमेय की) याद आ जाय वहाँ स्मरणालंकार होता है।

उदाहरण—(दोहा)

गुरु जगत को तू जलद, करत बड़ोई काम।
जोहत जाहि; न कौन के मन आवै घनस्याम॥

यहाँ जलद (उपमान) को देखकर घनश्याम (श्रीकृष्ण उपमेय) का स्मरण हो आने की बात कही गई है।

कभी-कभी वैधर्म्यवाले पदार्थ के देखने से भी स्मरण हो आता है—

उदाहरण—(कवित्त)

ज्यौं-ज्यौं इत देखियत मूरख बिमुख लोग,
त्यौं-त्यौं ब्रजबासी सुखरासी मन भावै है।
सारे जल छीलर[1] दुखारे[2] अंध-कूप देखि,
कालिंदी[3] के कूल-काज[4] मन ललचावै है।
जैसी अब बीतति सो कहतै बनै न बैन,
'नागर' ना चैन परै प्रान अकुलावै है।
थूहर[5] पलास देखि-देखि कै बबूर बुरे,
हाय हरे-हरे वे तमाल सुधि आवै है॥

---

१ गढ़ही। २ दुःखदायी। ३ यमुना। ४ तट के लिए। ५ सेंहुड़।

इस कवित्त मे मूर्ख और हरि-भक्ति-विमुख लोगों को देखकर सुखराशि व्रजवासियो का स्मरण हो आना वर्णित है।

(९) भ्रांतिमान्

जहाँ उपमान के समान उपमेय को देखने पर उपमान का निश्चयात्मक भ्रम हो जाय वहाँ भ्रांतिमान् अलंकार होता है।

उदाहरण—(दोहा)

कनक-कमल मुख-मंडलहि, नयन असित अरविंद।
पुंडरीक हासहि समुझि, आवत दौरि अलिंद॥

यहाँ भ्रमर मुख, नेत्र और हास को कमल समझ रहा है।

सूचना—यहाँ भ्रम वास्तविक होना चाहिए अर्थात् जिसे भ्रम हो वह निश्चित रूप से किसी वस्तु को दूसरी वस्तु समझ ले। इसके अतिरिक्त विरहियो, घायलो, पागलो आदि के भ्रम को भ्रांतिमान् नहीं कहेंगे। इसमे कवि-कल्पित चमत्कार होना चाहिए।

(१०) संदेह

जहाँ सत्यासत्य का ठीक निश्चय न होने के कारण उपमेय का उपमान के रूप मे वर्णन किया जाय।

उदाहरण—(कवित्त)

कैधो हिम-भूधर[1] की कलित कलंगी[2] तीन,
ताज[3]-मध्य कैधो ए तिलक असुरारी[4] को।
कैधो सत्व, रज, तम सोभित एकत्र कैधो,
विजय-निसान तीनि लोक भट-भारी को।
कैधो त्रयताप त्यौरी चढलि विलोकै बैठि,
भूमिसुर[5]-सज्जन-विबुध[6]-विघ्नकारी को।

---

१ हिमालय। २ किरीट। ३ मुकुट। ४ विष्णु। ५ ब्राह्मण। ६ देवता।

कैधों 'बद बैद्यनाथ' जल-थल-ब्योमचर,
आरतन-त्रान[1] कै त्रिसूल त्रिपुरारी को ॥

यहाँ शिव के त्रिशूल उपमेय का हिमालय की कलँगी आदि उपमानों के रूप में वर्णन किया गया है।

(११) अपहुति

जहाँ उपमेय का निषेध करके उपमान का आरोप किया जाय।

'अपहुति' शब्द का अर्थ 'छिपाना' है। इस अलंकार में उपमेय का निषेध करके उसे छिपाया जाता है।

इसके छह भेद होते हैं —(१) शुद्धापहुति, (२) हेत्वपहुति, (३) पर्यस्तापहुति, (४) भ्रांतापहुति, (५) छेकापहुति और (६) कैतवापहुति।

(१) शुद्धापहुति—जहाँ वास्तविक उपमेय का निषेध करके उपमान का स्थापना की जाय।

उदाहरण—(दोहा)

यह चपला चमकति नहीं, डारि धनुष अरु बान।
बिरहिन पर अति कोप करि, काढ़ी काम कृपान ॥

यहाँ 'चपला' उपमेय का निषेध कर 'काम-कृपान' उपमान की स्थापना की गई है।

(२) हेत्वपहुति—जहाँ उपमेय का निषेध करके उपमान को स्थापना करने में कारण भी बतलाया जाय।

---

१ दुखियों की रक्षा करनेवाला।

उदाहरण—(दोहा)

राति माँझ रबि होत नहि, ससि नहि तीव्र सु लाग।
उठी लखन अवलोकिये, बारिधि[1] सों बड़वाग॥

यहाँ पर शशि (चंद्रमा) मे वाड़वाग्नि की स्थापना करने का कारण रात में सूर्य का न होना और चंद्रमा का तीव्र न लगना बतलाया गया है।

(३) पर्यस्तापह्नुति—जहाँ किसी वस्तु (उपमान) के धर्म का निषेध दूसरी वस्तु (उपमेय) में उसकी स्थापना करने के लिए किया जाय।

'पर्यस्त' शब्द का अर्थ है 'फेंका हुआ'। इस अलंकार मे एक वस्तु का धर्म दूसरी वस्तु पर फेंका (स्थापित किया) जाता है। इसीलिए जिस वस्तु के धर्म का निषेध किया जाता है उसका प्रयोग प्रायः दो बार होता है।

उदाहरण—(दोहा)

है न चंद यह, चंद अलि, राधा-बदन बिचारि।
हरि-चकोर निसिद्यौसहूँ, जीवत जाहि निहारि।

यहाँ 'चंद्र' के धर्म का निषेध करके उसकी स्थापना राधा के मुख मे की गई है।

(४) भ्रांतापह्नुति—जहाँ किसी को किसी पदार्थ मे अन्य पदार्थ का भ्रम हो जाने पर उसका निवारण सत्य बात कह-कर किया जाय।

---

१ समुद्र।

उदाहरण—(दोहा)

बेसर[1] मोती-दुति-झलक, परी अधर पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय, क्यों पट पोछो जाय॥

बेसर के मोती की झलक को कोई चूना समझ रही है, उसकी भ्रांति का निवारण सत्य बात कहकर किया गया है।

(५) छेकापह्नुति—जहाँ किसी गुप्त बात को किसी प्रकार से सूचित करके फिर उसे छिपाया जाय।

'छेक' शब्द का अर्थ है 'चतुर'। इस अपह्नुति में कोई व्यक्ति अपनी गुप्त बात किसी से कहता है, पर उसका भेद कोई तीसरा व्यक्ति न समझ ले इसी से वह अपनी कही हुई बात को दूसरा ही अभिप्राय बतलाकर छिपाता है। इसे 'मुकरी' भी कहते हैं। 'मुकरी' का अर्थ है 'पलट जाना, बदल जाना'। जो बात पहले कही गई थी उसका निषेध करके दूसरे अभिप्राय का आरोप होने से इसे 'मुकरी' कहते है।

उदाहरण—(दोहा)

तिमिर-बंस-हर[2], अरुनकर[3], आयो सजनी भोर
'सिव सरजा[4]? चुप रहि सखी, सूरज[5] कुल-सिरमौर[6]॥

इस दोहे में 'तिमिर-बंस-हर', 'अरुनकर' और 'आयो भोर' कहने पर श्रोता ने 'शरजाह शिवाजी' कहा, पर वक्ता ने 'सूर्य' कहकर बात छिपा ली।

---

१ छोटी नथ। २ अंधकार का समूह हरण करनेवाला और तैमूर के वंशजों (मुगलों) को मारनेवाला। ३ लाल रंग की किरणोंवाला और (रक्त) लाल हाथोंवाला। ४ शरजाह। ५ सूर्य। ६ वंश मे श्रेष्ठ।

(६) कैतवापह्नुति—जहाँ पर उपमेय का निषेध कैतव, मिस, व्याज आदि शब्दों द्वारा किया जाय।

'कैतव' शब्द का अर्थ है 'छल', 'बहाना'। इस अपह्नुति में अन्य अपह्नुतियों की भाँति स्पष्ट 'न' से निषेध नहीं किया जाता, प्रत्युत 'कैतव' आदि शब्दों से इसका निषेध जरा घुमा-फिराकर किया जाता है और अर्थ के द्वारा अपह्नुति का बोध होता है, इसी से इसे 'आर्थी अपह्नुति' भी कहते है।

उदाहरण—(कवित्त)

बाँचैं वेद द्विज, नाचैं मेनका घृताची रंभा,
गावैं मंजुघोषा है मगन सुर-सातौ[1] तूल।
सीतल सुगंध मंद त्रिविधि समीर[2] डोलैं,
तरनि-तनैया[3] के उमड़ि चले दोऊ कूल।
कहै 'रघुनाथ' ब्रजनाथ को जनम जानि,
फूली बेलि[4] विटप[5] गगन घन रहे भूल।
साथ लै सुरनि सुनासीर[6] सो बिमान भारे,
कैतव सलिल वारै कलपलता के फूल॥

यहाँ पर इंद्र पानी बरसाने के कैतव (बहाने) से कल्पवृक्ष के पुष्प बरसा रहा है। यहाँ जल का निषेध और पुष्प का स्थापन है।

(१२) उत्प्रेक्षा

जहाँ उपमेय (प्रस्तुत) की उपमान (अप्रस्तुत) रूप में संभावना की जाय।

---

१ सप्त स्वर (स, रि, ग, म, प, ध, नि)। २ वायु। ३ यमुना। ४ लता। ५ वृक्ष। ६ इंद्र।

'उत्प्रेक्षा' शब्द का खंड है—उत्+प्र+ ईक्षा अर्थात् प्रधानता से बलपूर्वक देखना। इस अलंकार में उपमान से भिन्न जानते हुए भी बलपूर्वक प्रधानता से उपमेय में उपमान की संभावना की जाती है।

इस अलंकार के वाचक मनु, जनु, मानो, जानो, इव, खलु आदि हैं। इसके तीन भेद है—(१) वस्तु, (२) हेतु और (३) फल।

(१) वस्तूत्प्रेक्षा

जहाँ एक वस्तु (उपमान) की संभावना दूसरी वस्तु (उपमेय) के रूप में हो।

इसके दो भेद होते है—(१) उक्तविषया और (२) अनुक्तविषया।

(१) उक्तविषया—जहाँ उत्प्रेक्षा के विषय (आश्रय) का कथन करके तब उस पर उत्प्रेक्षा की जाय।

उदाहरण—(सवैया)

राम-सरासन[1] तें चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि[2] फूटी।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी।
स्रोनित-छींट-छटानि-जटे 'तुलसी' प्रभु सोहै, महाछबि छूटी।
मानों मरक्कत-सैल बिसाल मैं फैलि चलीं बर बीरवहूटी[3]॥

यहाँ उत्प्रेक्षा का विषय है—रक्त छींटों से युक्त राम का साँवला शरीर। उसपर नीलम के पर्वत पर बीरबहूटियों के चलने की संभावना की गई है।

---

१ धनुष। २ हाड़ावली। ३ एक छोटा बरसाती कीड़ा जो लाल रंग का होता है।

(२) अनुक्तविषया—जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय बिना कहे ही उत्प्रेक्षा की जाय।

उदाहरण—(दोहा)

उगिलत-सो पय-पूर [१] को, निगलत-सो तम-तोम।
चख-चकोर-चिंता-रतन, ज्यो सुहावन सोम॥

यहाँ चाँदनी का फैलना और अंधकार का विलीन होना विषय है, इसका कथन किए बिना ही दूध की धारा फेंकने और (अंधकार को) खाने की संभावना की गई है।

(२) हेतूत्प्रेक्षा

जहाँ अहेतु (जो वस्तुतः हेतु नहीं है) को हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय।

इसके दो भेद होते है—(१) सिद्धविषया और (२) असिद्धविषया।

(१) सिद्धविषया—जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय सिद्ध अर्थात् वास्तविक हो।

उदाहरण—(दोहा)

एकहि संग निवास ते, उपजे एकहि संग।
कालकूट की कालिमा, लगी मनौ बिधु-अंग॥

यहाँ चंद्रमा की कालिमा का हेतु विष का संग माना गया है। पर वह उसकी कालिमा का हेतु नही है। आस्पद सिद्ध इसलिए है कि विष और चंद्रमा एक साथ थे और एक साथ उत्पन्न भी हुए।

---

१ धारा।

(२) असिद्धविषया—जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय असिद्ध अर्थात् अवास्तविक हो।

उदाहरण—(दोहा)

पूस[1] दिनन मैं ह्वै रह्यो, अगिनि-कोन[2] मै भान[3]।
जानत हौं जाड़ो बली तें वह डरै निदान[4]॥

इस दोहे में जाड़े के डर से सूर्य का अग्निकोण मे अग्निसेवन करने जाना असिद्ध है।

(३) फलोत्प्रेक्षा

जहाँ अफल (जो वस्तुतः फल न हो) को फल मानकर उत्प्रेक्षा की जाय।

इसके भी दो भेद होते हैं—(१) सिद्धविषया और असिद्ध-विषया।

(१) सिद्धविषया—जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय सिद्ध (सत्य) हो।

उदाहरण—(दोहा)

बिरहिनि अँसुवनि बिधु रहै, दरसावत नित सोधि।
'दास' बढ़ावन को मनो, पूनो-दिननि पयोधि॥

यहाँ पर पूर्णिमा के दिन समुद्र का बढ़ना सिद्ध आधार है। पर विरहिणियों के आँसुओं का संचय चंद्रमा इसी अभिप्राय से नही करता। यह अफल को फल मानना हुआ।

(२) असिद्धविषया—जहाँ उत्प्रेक्षा का आधार असिद्ध (असत्य) हो।

---

१ पौष मास। २ पूर्व और दक्षिण दिशा के बीच। ३ सूर्य। ४ आखिरकार।

उदाहरण—(चौपाई)

चारु चरन-नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी।
मनहुँ प्रेम-बस बिनती करहीं। हमहिं सीय-पद जनि परिहरहीं॥

यहाँ नूपुरों का बिछोह की आशंका से प्रार्थना करना असिद्ध है।

सूचना—हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा का अंतर क्रिया से ज्ञात होता है। यदि क्रिया किसी हेतु से की गई हो तो हेतूत्प्रेक्षा और किसी फल की प्राप्ति की इच्छा से की गई हो तो फलोत्प्रेक्षा होगी।

कभी-कभी उत्प्रेक्षा में वाचक का प्रयोग नहीं होता इसे गम्योत्प्रेक्षा कहते हैं और कभी-कभी निषेधपूर्वक उत्प्रेक्षा होती है।

गम्योत्प्रेक्षा—जहाँ उत्प्रेक्षा-वाचक शब्दों का लोप हो।

उदाहरण—(कवित्त)

भूषन बिसाल हीरा लाल मनि मोती-माल
कंकन-कलित कर-मुद्रिका प्रभा की है।
'लछिराम' राम-अंग स्यामघन रंग-पर,
जुलफैं जँजीरेदार पुंज परमा[1] की है।
छोरैं सेत पट फहरीली मंद गज-गौन[2],
सारद मरोरैं मन-मौजैं समता की है।
मरकत-मंदर[3] पर संगमी रतनहार,
लहरैं तरंगदार गंग-यमुना की है॥

यहाँ पर चोथे चरण में जो उत्प्रेक्षा की गई है वह बिना वाचक की है।

सापह्नवोत्प्रेक्षा—जहाँ निषेधपूर्वक उत्प्रेक्षा का कथन हो।

१ शोभा। २ हाथी की चाल। ३ नीलम का पहाड़।

उदाहरण—(दोहा)

रामचंद्र भूपाल-मनि, ये न रावरे बान।
रावन-रथ पर कोप करि, बरसत काल कृसान॥

इस दोहे में राम के बाणों पर कृशानु (अग्नि) की जो संभावना की गई है उसमें पहले बाणों का निषेध किया गया है।

(१३) अतिशयोक्ति

जहाँ लोकसीमा का उल्लंघन करते हुए प्रस्तुत की प्रशंसा की जाय।

'अतिशयोक्ति' शब्द में 'अतिशय' का अर्थ है 'लोकसीमा का उल्लंघन'। इसलिए जहाँ कोई ऐसी बात कही जाती है जो लौकिक बात के बाहर हो वहाँ यह अलंकार होता है।

इसके सात भेद होते है—(१) रूपकातिशयोक्ति, (२) भेदकातिशयोक्ति, (३) संबंधातिशयोक्ति, (४) असंबंधातिशयोक्ति, (५) अक्रमातिशयोक्ति, (६) चपलातिशयोक्ति और (७) अत्यंतातिशयोक्ति।

(१) रूपकातिशयोक्ति—जहाँ उपमेय के कथन बिना केवल उपमान में ही उपमेय का अभेद दिखाया जाय अर्थात् केवल उपमान के द्वारा ही उपमेय का ज्ञान कराया जाय।

'रूपकातिशयोक्ति' में 'रूपक' शब्द का अर्थ है उपमेय का उपमान का रूप धारण करना। प्राचीन आचार्यों ने इसका पूरा अर्थ यों लिखा है—'जहाँ उपमान, उपमेय को अपने में निगल जाय और उपमान से उपमेय का अभेद होकर केवल उपमान से ही उपमेय का भी ज्ञान हो जाय।'

उदाहरण—(सवैया)

भू पर चारि खिले अरबिंद मलिंद त्यों ऊपर प्रेम हिलोरैं।
खंजन कीर कपोत लसैं मुकुता-लर वास बिलास बिथोरैं।
मंडित कंज सनाल, किते 'लछिराम' तिहूँ पुर के चित चोरैं।
कौसिला सामुहै हेमलता बपुधारी सो ब्रह्म किए गँठजोरैं॥

यहाँ पर अरविंद (कमल) से मुख, मलिद (भ्रमर) से बाल, खंजन से नेत्र, कीर (सुग्गा) से नाक, कपोत (कबूतर) से गर्दन, मुक्ता (मोती) से दाँत, सनाल कंज (कमल) से भुजा और हेमलता से (स्त्रियों के) शरीर का ज्ञान कराया गया है।

सूचना—कहीं-कहीं रूपकातिशयोक्ति का कथन निषेधपूर्वक भी किया जाता है। उसे सापह्नव रूपकातिशयोक्ति कहते हैं। यथा—

झूठ इंदु अरबिंद मै, कहत सुधा मृदुबास।
तो मुख मंजुल अधर मै, तिनको प्रगट प्रकास॥

यहाँ पर सुधा (अमृत) और धीमी महक उपमानों द्वारा मधुरता और मुख की सुगंध उपमेयों का ज्ञान कराया गया है और इनका वर्णन निषेधयुक्त है।

(२) भेदकातिशयोक्ति— जहाँ उपमेय की अभिन्नता होने पर भी भिन्नता कही जाय। इस अलंकार के वाचक 'और ही', 'न्यारा' आदि हैं।

'भेदकातिशयोक्ति' मे 'भेदक' शब्द का अर्थ है भेद करने-वाला। इस अलंकार मे 'और ही' आदि शब्दों के द्वारा उपमान से उपमेय को भिन्न कहा जाता है।

उदाहरण—(दोहा)

नगर भरे सब साज सों, किते न जगत लखात।
प्रेम-पुरी औरै कछू, सज्जन जहाँ बिकात॥

यहाँ 'औरै' शब्द के द्वारा 'प्रेम-नगर' की भिन्नता दिखाई गई है।

(३) संबंधातिशयोक्ति—जहाँ असंबंध में संबंध कहा जाय अर्थात् अयोग्य में भी योग्यता दिखाई जाय।

उदाहरण—(कबित्त)

कंचन-कलित नग-लालनि-बलित सौध[१],
द्वारिका ललित जाकी दीपति अपार है।
ताकी बर वल्लभी[२] बिचित्र अति ऊँची, जासो
निपटै नजीक[३] सुरपति[४] को अगार है।
'दास' जब-जब जाइ सजनी सयानी संग,
रुकमिनी रानी तहाँ करत बिहार है।
तब-तब सची सुर-सुंदरीन करु लैकै,
कल्पतरु-फूल लै मिलत उपहार है॥

यहाँ महलों की ऊँचाई इतनी अधिक बतलाई गई है कि रुक्मिणी से इंद्राणी आदि रूबरू मिल लेती है।

(४) असंबंधातिशयक्ति—जहाँ संबंध मे असंबंध कहा जाय अर्थात् योग्य मे अयोग्यता दिखाई जाय।

उदाहरण—(सवैया)

सागर-जात[५], सराहत है श्रुति[६], सूर-हितू, हित कै सरसावै।
श्री[७] को सहोदर, सीरो सुभाय, सदा 'रघुनाथ' कहै कबि गावै।
साथ सभा सुर की लहिये, अरु अंसुनि[८] औनि अकासहि छावै।
ऐसो गऊ ससि प्यारो तऊ तुव आनन आगे न आदर पावै॥

---

१ महल। २ छत। ३ अत्यंत निकट। ४ इंद्र। ५ उत्पन्न। ६ वेद। ७ लक्ष्मी। ८ किरणें।

चंद्रमा उपरिलिखित कारणों से आदर करने की वस्तु है पर मुख के समक्ष उसका आदर नहीं किया जा रहा है।

सूचना—जहाँ शेष, शारदा, वेद, गणेश आदि के शोभा आदि का वर्णन कर सकने की बात कही जाती है वहाँ भी यही अलंकार होता है। यथा-

महि पत्री करि, सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ।
'तुलसी' गनपति सों तदपि, महिमा लिखी न जाइ॥

यह संतों की महिमा है। गणपति नहीं लिख सकते यही संबंध में असंबंध है।

(५) अक्रमातिशयोक्ति—जहाँ कारण और कार्य का बिना क्रम के एक साथ वर्णन किया जाय। इसके वाचक 'संग ही' 'साथ ही' आदि है।

उदाहरण—(कवित्त)

जूथपति पैठ्यो पानी पोषत[1] प्रबल मद,
कलभ[2] करेनुकनि[3] लीने संग सुख तै।
ग्राह गह्यौ गाढ़े, बैर पीछले के बाढ़े,
भयो बलहीन बिकल-करन[4] दीह[5] दुख ते।
कहै 'मतिराम' सुमिरत ही समीप लखे,
ऐसी करतूति भई साहिब-सुरुख[6] ते।
दोऊ बातै छूटी गजराज की बराबर[7] ही,
पाँव ग्राह-मुख ते पुकार निज मुख ते॥

यहाँ हरि का नाम (पुकार) कारण और ग्राह-मुख से गजराज का पैर छूटना कर्म दोनों का साथ ही होना कहा गया है।

---

१ शरीर को भिगोता हुआ। २ हाथी के बच्चे। ३ हथिनी। ४ इंद्रिय। ५ दीर्घ। ६ अनुकूलता ७ साथ ही।

(६) चपलातिशयोक्ति—जहाँ कारण के ज्ञान से अर्थात् उसके देखने-सुनने मात्र से ही कार्य का हो जाना कहा जाय।

'चपलातिशयोक्ति' में 'चपला' शब्द का अर्थ है 'बिजली'। जिस प्रकार बिजली के चमकने और उसकी चमक के देखे जाने मे विलंब नहीं होता उसी प्रकार इस अलंकार में कारण के ज्ञान से ही कार्य हो जाता है।

उदाहरण—(कबित्त)

वारि के बिहार बर बारन[1] के बोरिबे कौ,
वारिचर[2] बिरची इलाज[3] जयकाज की।
कहै 'मतिराम' बलवंत जलजंतु जानि,
दूरि भई हिंमत दुरद-सिरताज की।
असरन-सरन के चरन-सरन तके,
त्यौं ही दीनबंधु निज नाम की सुलाज की।
धाए रति[4] मानि अति आतुर गुपाल, मिली
बीच ब्रजराज कौं गराज गजराज की॥

गज भगवान् के चरणो की शरण जाकर नाम लेनेवाला ही था कि भगवान् वहाँ से चल पड़े। यहाँ कारण का ज्ञान होते ही कार्य हुआ है।

(७) अत्यंतातिशयोक्ति—जहाँ कारण के पहले ही कार्य हो जाय।

उदाहरण—(दोहा)

राजन! राउर[5] नाम-जस, सब अभिमतदातार[6]।
फल-अनुगामी महिपमनि! मन-अभिलाष[7] तुम्हार॥

---

१ हाथी २ ग्राह। ३ उपाय। ४ प्रेम, स्नेह। ५ आपका। ६ मनोवाछित देनेवाला। ७ मन की इच्छा फल के पीछे-पीछे चलती है।

यहाँ पर दूसरी पंक्ति का अर्थ है कि फल पहले मिल जाता है, उसके पाने का अभिलाप पीछे होता है।

सूचना—अक्रम, चपला और अत्यंतातिशयोक्ति को कारणातिशयोक्ति भी कहते हैं।

(१४) तुल्ययोगिता

जहाँ अनेक वस्तुओं (प्रस्तुत एवम् अप्रस्तुत) के धर्मों की एकता कही जाय।

'तुल्ययोग' शब्द का अर्थ है 'एकता'। इस अलंकार मे कई वस्तुओं के धर्मों की एकता का वर्णन होता है।

इसके तीन प्रकार हैं।

(१) प्रथम तुल्ययोगिता—जहाँ वर्ण्यों (उपमेयों) अथवा अवर्ण्यों (उपमानो) का एक धर्म कहा जाय।

(१) वर्ण्यों की धर्मएकता

उदाहरण—(दोहा)

तोहि जीति हर को हरा, अरि को सुरपुर-बास।
सुर-बनितन को पति मिलै, तेरे कोप प्रकास॥

यहाँ हर (महादेव), अरि (शत्रु), सुर-वनिता (अप्सराओं) इन तीन प्रस्तुतो का एक ही धर्म 'मिलै' कहा गया है।

(२) अवर्ण्यों की धर्मएकता

उदाहरण—(दोहा)

सिव सरजा भारी-भुजन, भुव-भरु[1] धर्यो सभाग।
'भूषन' अब निहचिंत है, सेसनाग दिगनाग॥

१ पृथ्वी का भार।

इस दोहे में शेषनाग और दिग्गज (अवर्ण्यों) का एक धर्म 'निश्चित हैं' कहा गया है।

(२) द्वितीय तुल्ययोगिता जहाँ हित (मित्र) और अहित (शत्रु) में एक ही प्रकार की वृत्ति दिखाई जाय।

उदाहरण - (दोहा)

जे निसिदिन सेवन करैं, अरु जे करैं बिरोध।
तिन्है परमपद देत हरि, कहौ कौन यह बोध॥

यहाँ विष्णु भगवान् सेवा करनेवाले और विरोध करनेवाले दोनों को मुक्ति देकर उनके साथ एक-सा व्यवहार करते है।

(३) तृतीय तुल्ययोगिता—जहाँ प्रस्तुत (उपमेय) का उत्कृष्ट गुणवाले अप्रस्तुतो (उपमानों) के साथ वर्णन किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

भोज बिक्रमादित्य नृप, जगदेवो[1] रनधीर।
दानिनहूँ के दानि दिन, इंद्रजीत बर बीर॥

यहाँ इंद्रजीत का भोज आदि के साथ वर्णन किया गया है।

सूचना—द्वितीय उल्लेख में एक व्यक्ति एक ही व्यक्ति का अनेक प्रकार से विषयभेद से वर्णन करता है, पर तुल्ययोगिता मे उपमेय को केवल उपमानों के साथ मिलाकर वर्णन करते है।

(१५) दीपक

जहाँ उपमेय और उपमान का एक ही धर्म कहा जाय।

यहाँ 'धर्म' शब्द के अंतर्गत क्रिया और गुण आदि को समझना चाहिए।

---

१ एक प्रसिद्ध दानी।

उदाहरण—(दोहा)

कमल, कलानिधि[१] मालती, किसलय[२], नारि सुभाय।
सकल मनोहर होत है, कोमलता कों पाय॥

यहाँ नारि उपमेय और कमल आदि उपमानों का एक ही धर्म 'कोमलता से मनोहर होना' कहा गया है।

इसके अतिरिक्त एक प्रकार का और दीपक होता है जिसे 'आवृत्तिदीपक' कहते है।

(क) आवृत्तिदीपक—जहाँ क्रियापदों की आवृत्ति हो।

इसके तीन भेद होते हैं—(१) पदावृत्ति, (२) अर्थावृत्ति और (३) पदार्थावृत्ति।

(१) पदावृत्ति—जहाँ भिन्न-भिन्न अर्थवाले पर एक ही आकार के शब्दों की आवृत्ति हो।

उदाहरण—(दोहा)

बहैं[३] रुधिर[४] सरिता बहैं[५] किरवानैं[६] कढ़ि कोस[७]।
बीरन बरहिं[८] बरांगना[९], बरहिं[१०] सुभट रन-रोस[११]॥

यहाँ 'बहैं' और 'बरहिं' दो शब्दो की आवृत्ति है, पर इनके अर्थ बदल-बदल गए हैं।

(२) अर्थावृत्ति—जहाँ भिन्न-भिन्न रूप के एकार्थवाची क्रियापदों की आवृत्ति हो।

---

१ चंद्रमा। २ नया पत्ता, कोपल। ३ बहती है। ४ खून की नदियाँ। ५ चलती है। ६ तलवारें। ७ म्यान। ८ वरण करती हैं। ९ सुंदर स्त्रियाँ (अप्सराएँ)। १० जलते है। ११ क्रोध।

उदाहरण—(दोहा)

सिव सरजा तव दान को, करि को सकत बखान।
बढ़त नदी-गन दान-जल[1] उमड़त मद गज-दान[2]॥

यहाँ भी 'बढ़त' और 'उमड़त' का एक ही अर्थ है।

(३) पदार्थावृत्ति—जहाँ एक ही आकार और अर्थवाले क्रियापदों की आवृत्ति हो।

उदाहरण—(सवैया)

पेट चढ्यौ[3] पलना पलिका[4] चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह-मढ्यौ रे।
चौक चढ्यौ[5] चितसारि[6] चढ्यौ गजबाजि चढ्यौ गढगर्ब चढ्यौ रे।
ब्योम-विमान[7] चढ्योई रह्यौ कहि 'केसव' सो कबहूँ न पढ्यौ रे।
चेतत नाहिं रह्यौ चढ़ि चित्त[8], सो चाहत मूढ़ चिताहु चढ्यौ रे॥

यह रावण के प्रति अंगद की उक्ति है। इसमें 'चढ़ना' क्रिया की आवृत्ति है। अर्थ और पद दोनों एक-से है।

सूचना—पदावृत्ति और यमक में एवम् पदार्थावृत्ति और लाटानुप्रास में अंतर यह है कि आवृतिदीपक मे केवल क्रियापद प्रयुक्त होते हैं और उन दोनों में इनसे भिन्न पद।

(१६) प्रतिवस्तूपमा

जहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों का शब्दांतर से एक ही धर्म कहा जाय वहाँ प्रतिवस्तूपमालंकार होता है।

'प्रतिवस्तूपमा' शब्द में 'वस्तु' का अर्थ है 'वाक्यार्थ' और 'उपमा' का अर्थ है 'समान धर्म'। इसलिए पूरे शब्द का अर्थ

---

१ संकल्प करने में गिरे हुए जल से। २ हाथियों का मद। ३ गर्भ में आए। ४ पलग। ५ अर्थात् विवाह में। ६ रंगमहल। ७ पुष्पक विमान। ८ चित्त बहुत चढ़ गया है, बड़ा अभिमान आ गया है।

हुआ 'वाक्यार्थ के प्रति समान धर्म'। इस अलंकार में उपमेय और उपमान वाक्यों के प्रति समान धर्म (एकार्थवाची भिन्न-भिन्न शब्दों से) कहा जाता है।

उदाहरण—(दोहा)

कंटक करि-करि परत गिरि, साखा सहस खजूरि।
मरहि कुनृप करि-करि कुनय, सो कुचालि भव[1] भूरि[2] ॥

यहाँ प्रथम पंक्ति के उपमान-वाक्य और द्वितीय पंक्ति के उपमेय-वाक्य का एक ही धर्म 'परत गिरि' और 'मरहिं' भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा कहा गया है।

(१७) दृष्टांत

जहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों तथा उन दोनों के धर्मों में बिंब-प्रतिबिंब-भाव हो।

'दृष्टांत' शब्द का अर्थ 'निश्चय का देखना' है। इस अलंकार मे उपमेय-वाक्य कहकर उपमान-वाक्य द्वारा उसका निश्चय कराया जाता है।

उदाहरण—(दोहा)

राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह।
भूरि होति रवि दूरि लखि, सिर पर पगतर छाँह ॥

पूर्वार्द्ध उपमेय-वाक्य है और उत्तरार्द्ध उपमान-वाक्य। पहले का धर्म है (राम से) 'दूर होने पर माया का बढ़ना और (उनके) मन में होने से उसका घटना' और दूसरे का धर्म है (सूर्य के) 'दूर होने से छाया का अधिक होना और सिर पर होने से पैर के नीचे होना'। ये सब बिंब-प्रतिबिंबवत् कहे गए है।

---

१ ससार। २ अत्यधिक।

सूचना—कुछ आचार्यों का मत है कि बिना वाचक के ही दृष्टांत अलंकार होता है, जहाँ वाचक का प्रयोग होता है वहाँ 'उदाहरण' नामक एक दूसरा ही अलंकार बन जाता है। यथा—

पिसुन-छल्यौ[1] नर सुजन कौं, करत बिसास न चूकि।
जैसे दाध्यौ[2] दूध को, पीवत छाछहिं[3] फूँकि॥

ज्यों, जैसे, जिमि आदि वाचक बतलाए गए हैं। पर यह ठीक नहीं है। उदाहरण में पहले सामान्य-वाक्य कहा जाता है और उसकी प्रतिपत्ति (औचित्यनिर्णय) के लिए दूसरा उपमान-वाक्य कहा जाता है।* जैसा ऊपर के उदाहरण में है। इसलिए 'उदाहरण' दृष्टांत से भिन्न है। स्मरण रखना चाहिये कि दृष्टात के दोनों वाक्य विशेष अथवा सामान्य होते हैं।† ऊपर के उदाहरण में दोनों वाक्य विशेष हैं। प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्यों का एकत्व होता है और दृष्टात में साम्य।

(१८) निदर्शना

जहाँ दो पदार्थों में भिन्नता होते हुए भी उपमान के द्वारा उनके संबंध की कल्पना की जाय।

'निदर्शना' शब्द का अर्थ है कुछ रचकर दिखाना। इस अलंकार में उपमेय और उपमान दो वाक्यों में संबंध के असंभव होते हुए भी एक के ऊपर दूसरे का आरोप इस प्रकार से किया जाता है जिससे दोनों में समानता स्थापित हो जाती है।

इसके तीन भेद होते है।

---

१ दुष्ट द्वारा छला हुआ। २ जला हुआ। ३ मट्ठा।

* सामान्येन निरूपितस्यार्थस्य सुखप्रतिपत्तये तदेकदेश निरूप्य तयोरवयवावयविभाव उच्यमान उदाहरणम्—रसगंगाधर।

† दृष्टान्ते सामान्यः सामान्येन विशेषो विशेषेण समर्थ्यते—उद्योत।

(१) प्रथम निदर्शना—जहाँ जो, सो आदि पदों के द्वारा दो असमान वाक्यो की एकता दिखाई जाय।

उदाहरण—(सवैया)

जुगनू अब भानु के आगे भली बिधि आपनी जोतिन्ह को गुन गैहै।
माखियौ जाइ खगाधिप[1] सो उड़िबे की बड़ी-बड़ी बात चलैहै।
'दास' जबै तुकजोरनहार कबिंद उदारन की सरि[2] पैहै।
तौ करतारहु[3] सों औ कुम्हार सों एक दिना झगरो परि जैहै॥

'तुक्कड़ के कवींद्र की समता पाने' उपमेय-वाक्य के साथ 'जुगनू का भानु के सामने अपनी ज्योति का गुण गाने' आदि तीन उपमान-वाक्यो की एकता दिखाई गई है।

सूचना—कही-कही बिना 'ज ते' आदि पदो के भी इसका वर्णन होता है। यथा—

मीठे बचन उदार के, सोने माहिं सुगंध।

यहाँ 'उदार के मीठे वचन' और 'सोने मे सुगंध' दो असम वाक्य हैं, जिनकी एकता बिना 'जो सो' आदि पदो के स्थापित की गई है।

(२) द्वितीय निदर्शना—जहाँ उपमेय के गुण का उपमान में अथवा उपमान के गुण का उपमेय में आरोप किया जाय।

(१) उपमेय के गुण का उपमान मे आरोप

उदाहरण—(चौपाई)

जेहि दिन दसन[4]-ज्योति निरमई[5]। बहुतै जोति जोति ओहि भई
रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती

यहाँ भी दंत उपमेय के ज्योति-गुण का आरोप सूर्यादि उपमानो में किया गया है।

---

१ गरुड। २ समता। ३ ब्रह्मा। ४ दाँत। ५ निर्मित की (बनाई)।

(२) <u>उपमान के गुण का उपमेय में आरोप</u>

उदाहरण—(दोहा)

जब कर गहत कमान-सर, देत परनि[1] कौं भीति[2]।
भाउसिंह मैं पाइए, तब अर्जुन की रीति ॥

इस दोहे में भाऊसिंह उपमेय में अर्जुन उपमान के गुणों का आरोप किया गया है।

(३) <u>तृतीय निदर्शना</u>—जहाँ अपनी सत् अथवा असत् क्रिया के द्वारा दूसरों को सत् अथवा असत् अर्थ का ज्ञान कराया जाय। इसे सदसदर्थ निदर्शना भी कहते हैं।

<u>सदर्थ</u>

उदाहरण—(दोहा)

दीपक दीह प्रकास मैं, जारत अंग पतंग
देखरावत सब नरन को, प्रेम-चरित नवरंग ॥

दीपक में पतिंगा जलकर लोगों को प्रेम करने के ढंग (सत्) का ज्ञान कराता है।

<u>असदर्थ</u>

उदाहरण—(वंशस्थ)

कु-अंगजों की बहुकष्टदायिता।
बता रही थी जन नेत्रवान को।
स्वकंटकों से स्वयमेव सर्वदा।
विदारिता हो बदरी-द्रुमावली ॥

बेर के पेड़ में काँटों का बाहुल्य लोगों को बुरी संतति का कष्टकारी होना बता रहा है।

---

१ शत्रुओं को। २ भय।

सूचना—प्रतिवस्तूपमा में भी दो वाक्य होते हैं, पर वे दोनो अन्योन्याश्रित नहीं होते और यहाँ दोनो वाक्य सापेक्ष रहते हैं।

(१६) व्यतिरेक

जहाँ उपमेय के उत्कर्ष अथवा उपमान के अपकर्ष द्वारा उपमेय के गुणाधिक्य का वर्णन हो।

'व्यतिरेक' शब्द में 'वि' का अर्थ है 'विशेषता' अर्थात् असाधारण धर्म और 'अतिरेक' का अर्थ है 'पृथक्-भाव'। इसलिए पूरे शब्द का अर्थ हुआ 'दूसरे से पृथक् करनेवाला असाधारण धर्म'। इस अलंकार में उपमेय के उत्कर्ष अथवा उपमान के अपकर्ष द्वारा उपमेय को असाधारण धर्मवाला बतलाकर उसे उपमान से पृथक् सिद्ध करते है।

(१) उपमेय का उत्कर्ष

उदाहरण – (दोहा)

तेरो मुख अरु विधु धरे, दोऊ जगमग जोति।
पै यामैं मित्रहिं[1] लखे, चटक चौगुनी होति॥

मुख उपमेय मे यह आधिक्य दिखाया गया है कि वह मित्र को देखकर चौगुना चटकीला (अत्यंत प्रसन्न) हो जाता है।

(२) उपमान की न्यूनता

उदाहरण—(दोहा)

घटै बढ़ै सकलंक लखि, जग सब कहै ससंक।
बाल-बदन सम है नहीं, रंक मयंक[2] इकंक[3]॥

चंद्रमा घटता-बढ़ता है, कलंकयुक्त है। यही उपमान की न्यूनता है।

---

१ सूर्य और दोस्त। २ चंद्रमा। ३ निश्चय।

(३) उभय पर्यवसायी

उदाहरण—(बरवै)

कमल कंटकित सजनी, कोमल पाइ।
निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाइ॥

यहाँ उपमेय (पाइ) में कोमलता और प्रफुलित रहना आधिक्य है और उपमान (कमल) में कंटक और रात में मुरझाना न्यूनता है।

(२०) सहोक्ति

जहाँ 'सह' अर्थवाले शब्दों के बल से एक शब्द दो अर्थों का बोधक हो जाय।

'सहोक्ति' शब्द का अर्थ है 'सह' भाव की उक्ति। इस अलंकार में सह, संग, साथ आदि शब्दो के द्वारा एक शब्द दो ओर लगता है। वह शब्द एक ओर प्रधान रूप से और दूसरी ओर गौण रूप से अन्वित होता है।

उदाहरण —(पद)

गहि करतल मुनि-पुलक सहित कौतुकहि उठाइ लियो।
नृपगन-मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहिं दियो।
आकरष्यो सिय-मन समेत हरि, हरष्यो जनक-हियो।
भंज्यौ भृगुपति-गर्ब सहित, तिहुँ लोक बिमोह कियो॥*

---

* इसका मूल श्लोक इस प्रकार है—

उत्क्षिप्तं सह कौशिकस्य पुलकैः सार्धं मुखैर्नामितं
भूपाना जनकस्य संशयधिया साकं समास्फालितम्।
वैदेह्या मनसा समं तदधुनाकृष्टं ततो भार्गव-
प्रौढाहङ्कृतिकन्दलेन च समं भग्नं तदैशं धनुः॥

यहाँ 'उठाइ लियो' का संबंध प्रधानतया धनुष से है, पर 'सहित' शब्द के कारण उसका संबंध 'मुनि पुलक' से भी हो गया है। इसी प्रकार आगे के तीनों चरणों में भी समझ लेना चाहिए।

सूचना—'सह' आदि शब्दों के साथ कोई चमत्कारपूर्ण बात कहनी चाहिए। साधारण वर्णन में यह अलंकार न बनेगा। जैसे—'सीता लखन सहित रघुराई। चले बनहिं अवधहिं सिर नाई' में सहोक्ति न होगी। उक्त चमत्कार सब अलंकारों में रहनेवाली बीजरूप अतिशयोक्ति या वक्रोक्ति के मेल से होता है, जैसा ऊपर दिए हुए उदाहरण में है।

(२१) समासोक्ति

जहाँ समान विशेषणों के द्वारा प्रस्तुत से ही अप्रस्तुत का भी ज्ञान हो जाय।

'समासोक्ति' शब्द में 'समास' का अर्थ है संक्षेप। अर्थात् जहाँ संक्षेप में थोड़ी बात कहकर अधिक का ज्ञान कराया जाय। इस अलंकार मे कही तो जाती है प्रस्तुत बात, पर अप्रस्तुत का स्फुरण स्वयम् हो जाता है।

जिसके वर्णन करने का तात्पर्य कवि का होता है उसे प्रस्तुत कहते है और जो आप-से-आप निकल आता है उसे अप्रस्तुत कहते है। इसमें दो प्रकार के समान विशेषणों का प्रयोग हो सकता है—(१) श्लिष्ट और (२) साधारण। इसलिए यह दो प्रकार की कही जाती है।

(१) श्लिष्ट शब्दों से

उदाहरण—(कबित्त)

जग मैं बिदित कहै कबि 'रघुनाथ' आजु,
सब ही के ऊपर जसीलो जाको गोत है।
नख तें लै सिख लौं सकल अंग सुधामई,
आनँद को करता सुंदरता को पोत[1] है।
और गुन सुने ताकी महिमा कहाँ लौं कहौं,
औषधी को पति[2] करै बुध[3] को उदोत है।
तजि दीन्हीं लाज देखो परम पुनीत आजु,
ह्वैकै द्विजराज[4] बस बारुनी[5] के होत है॥

यहाँ प्रस्तुत अर्थ चंद्रमा पक्ष का है, पर 'द्विजराज', 'बारुनी' आदि शब्दों के दोहरे अर्थों के कारण उसका एक अप्रस्तुत अर्थ ब्राह्मण-पक्ष का भी निकलता है।

(२) साधारण शब्दों से

उदाहरण—(दोहा)

तच्यो आँच अति बिरह की, रह्यो प्रेम-रस भीजि।
नैननि के मग जल बहै, हियो पसीजि-पसीजि॥

इस दोहे में वियोग की अग्नि से तपकर हृदय का पसीज कर अश्रु-रूप में आँखों से निकलना प्रस्तुतार्थ है और इसी से अर्क बनाने की रीति भी सूचित होती है।

---

१ जहाज। २ चद्रमा ओषधीश कहलाता है; अच्छा वैद्य। ३ बुध चद्रमा का पुत्र है; पंडित। ४ चद्रमा; ब्राह्मण। ५ पश्चिम दिशा; शराब।

सूचना—श्लेष में समान विशेषण न होकर समान विशेष्य होते हैं और कवि का तात्पर्य दोनो अर्थों से होता है।

(२२) परिकर

जहाँ पर किसी विशेषण का प्रयोग किसी क्रिया के अर्थ की पुष्टि के लिए किया जाय।

'परिकर' शब्द का अर्थ है 'परिवार' अथवा उपकरण। जिस प्रकार छत्र, चामर आदि उपकरणों से राजा की शोभा होती है उसी प्रकार परिकरालंकार मे प्रयुक्त साभिप्राय विशेषण के द्वारा काव्य-चमत्कार बढ़ता है।

उदाहरण—(कवित्त)

मंगलीक-माला गरे हार गज-मोतिन के,
खौर भाल मलय-विलास अवतारा को।
आनन सुरूप सरवर हास हीराहार,
बचन-अमीरस अमंद सुभसारा को।
अरबिंद-नैन अंग-भूषन जवाहिर के,
'लछिराम' जस हिमालय के पसारा को।
सीतल करैंगे मेटि ताप-त्रिभुवन राम,
स्यामघन-बरन बरसि दान-धारा को॥

इस कवित्त में 'श्याम-घन-वर्ण' विशेषण साभिप्राय है; क्योंकि 'त्रिभुवन का ताप दूर करना' है।

(२३) परिकरांकुर

जहाँ किसी क्रिया के अर्थ को सिद्ध करने के लिए साभिप्राय विशेष्य का प्रयोग हो।

'परिकरांकुर' का अर्थ है 'परिकर का अँकुआ', अर्थात् इस

अलंकार का प्रयोग किसी आरंभिक बात के लिए होता है। परि-करालंकार में साभिप्राय विशेषण होता है तो यहाँ विशेष्य ही साभिप्राय हो जाता है।

उदाहरण—(सवैया)

लोचन पूरि रहे जल सों प्रभु दूरि तें देखत ही दुख मेट्यो।
सोच भयो सुरनायक[1] के कलपद्रुम के हिय-मॉझ खखेट्यो[2]।
कंप कुबेर-हिये सरसो, परसे पग जात सुमेरु ससेट्यो[3]।
रंक तें राउ भयो तबहीं जबही भरि अंक रमापति भेंट्यो॥

'रमापति' शब्द साभिप्राय है, क्योंकि 'सुदामा को रंक से राजा करने की क्रिया' इससे सिद्ध होती है।

(२४) अप्रस्तुतप्रशंसा

जहाँ पर अप्रस्तुत का वर्णन करके प्रस्तुत का बोध कराया जाय।

'अप्रस्तुतप्रशंसा' मे 'अप्रस्तुत' शब्द का अर्थ है 'वह बात जो प्रकरण से भिन्न हो' और प्रशंसा शब्द का अर्थ है 'वर्णन'। जहाँ 'प्रकरण से भिन्न वस्तु का वर्णन हो'। इस अलंकार में प्रकरण से भिन्न वस्तु का वर्णन करके प्रस्तुत का ज्ञान कराया जाता है।

इसके पाँच प्रकार है—(१) कारण के द्वारा कार्य का ज्ञान (कारण-निबंधना), (२) कार्य के द्वारा कारण का ज्ञान (कार्य-निबंधना), (३) विशेष के द्वारा सामान्य का ज्ञान (विशेप-निबंधना), (४) सामान्य के द्वारा विशेष का ज्ञान (सामान्य-

---

१ इंद्र। २ खटका। ३ सिकुडा जाता है।

निबंधना) और (५) सदृश वस्तु के द्वारा सदृश का ज्ञान (सारूप्य-निबंधना या अन्योक्ति) ।

(१) कारण-निबंधना—जहाँ अप्रस्तुत कारण के वर्णन से प्रस्तुत कार्य का ज्ञान कराया जाय ।

उदाहरण—(दोहा)

लई सुधा सब छीनि बिधि, तुव मुख रचिबे काज ।
सो अब याही सोच सखि, छीन होत दुजराज ॥

यहाँ मुख का सौंदर्य कार्य है । यह 'चंद्रमा से सुधा का छिन जाना' कारण द्वारा सूचित किया गया ।

(२) कार्य-निबंधना—जहाँ अप्रस्तुत कार्य के वर्णन से प्रस्तुत कारण सूचित किया जाय ।

उदाहरण—(दोहा)

भृगुकुल-कमल-दिनेस मुनि, जीत सकल संसार ।
क्यौं चलिहै इन सिसुन पै, डारत हौ जस-भार ॥

यह परशुराम के प्रति राम की उक्ति है । आप 'यश का भार लड़कों पर क्यों दे रहे है' का भाव यह है कि हम आपको पराजित करके स्वयम् संसार-विजेता के भी विजेता बन जायँ, क्या यह आपको स्वीकार है ? यहाँ यश कार्य (अप्रस्तुत) का कथन है और पराजय कारण (प्रस्तुत) सूचित होता है ।

(३) विशेष-निबंधना—जहाँ अप्रस्तुत विशेष के वर्णन से प्रस्तुत सामान्य सूचित किया जाय ।

उदाहरण—(दोहा)

आपु न काहू काम के, डार पात फल मूर ।
औरनहूँ रोकत फिरै, 'रहिमन' पेड़ बबूर ॥

यहाँ बबूल (विशेष) के अप्रस्तुत वृत्तांत से निकम्मे व्यक्तियों (प्रस्तुत) का कार्य सूचित किया गया है।

(४) सामान्य-निबंधना—जहाँ अप्रस्तुत सामान्य के कथन द्वारा प्रस्तुत विशेष का ज्ञान कराया जाय।

उदाहरण—(सवैया)

या जग मैं तिन्हैं धन्य गनौ, जे सुभाय पराये भले कहँ दौरैं।
आपनो कोऊ भलो करै, ताको सदा गुन माने रहैं सब ठौरैं।
'दासजू' ह्वै जो सकै तो करैं, बदले उपकार के आपु करोरैं[1]।
काज हितू के लगे तन, प्रान के दान ते नेकु नहीं मन मोरैं॥

यहाँ परोपकारी की सामान्य गुणावली द्वारा किसी विशेष परोपकारी का ज्ञान कराया गया है।

(५) सारूप्य-निबंधना अन्योक्ति)—जहाँ समान अप्रस्तुत के द्वारा समान प्रस्तुत का ज्ञान कराया जाय।

उदाहरण—(कुडलिया)

दानी हौ सब जगत मैं, एकै तुम मंदार[2]।
दारन दुख दुखियान के, अभिमत-फल-दातार।
अभिमत-फल-दातार, देव-गन सेवैं हित सों।
सकल संपदा मोह, छोह किन राखौ चित सों।
बरनै 'दीनदयाल', छाँह तव सुखद बखानी।
ताहि सेइ जो दीन रहै, दुख तौ कस दानी॥

इस कुंडलिया मे समान अप्रस्तुत कल्पवृक्ष का वर्णन करके किसी उदारचेता धनी पुरुष (समान प्रस्तुत) का ज्ञान कराया गया है।

सूचना—समासोक्ति मे वर्णन प्रस्तुत का रहता है और उसमें अप्र-

---

१ करोड़ों। २ कल्पवृक्ष।

प्रस्तुत का भान-मात्र होता है, पर 'अप्रस्तुतप्रशंसा में' अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत का ज्ञान कराया जाता है।

(२५) पर्यायोक्ति

जहाँ प्रकारांतर से अभिलषितार्थ का प्रतिपादन या इष्टसाधन किया जाय वहाँ पर्यायोक्ति होती है।

'पर्यायोक्ति' में 'पर्याय' शब्द का अर्थ है 'प्रकारांतर'। जहाँ कोई बात घुमा फिराकर दूसरे ढंग से कही जाती है या किसी कार्य का संपादन किसी बहाने से किया जाता है वहाँ पर्यायोक्ति होती है।

(१) प्रथम—जहाँ वाच्य-वाचक-भाव के बिना भंग्यंतर से अर्थात् सुचारु ढंग से किसी अभिलषितार्थ का प्रतिपादन हो।

उदाहरण—(दोहा)

यह बिरिया[1] नहिं और की तू करिया[2] वह सोधि।
पाहन-नाव चढ़ाय जिन कीने पार पयोधि॥

कहना तो यह है कि समुद्र पर भी पुल बाँधनेवाले राम का भजन करो, पर उसे प्रकारांतर से कहा गया है कि पत्थर की नाव पर चढ़ाकर समुद्र पार करनेवाले मल्लाह (राम) की खोज करो।

(२) द्वितीय—जहाँ किसी व्याज से इष्टसाधन किया जाय।

उदाहरण—(सवैया)

यहि बाट ते थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल-थाह दिखाइहौं जू।
परसे पग-धूरि तरै तरनी[3], घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू।

१ समय। २ मल्लाह। ३ नाव।

'तुलसी' अवलंब न आन कछू लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू ।
बरु मारिए मोहिं, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ।।

यहाँ राम का पादोदक इष्टसाधन है। उसके लिए केवट पैर की धूलि से नाव के (अहल्या की तरह) तर जाने की बात और अपनी दीनता का बहाना कर रहा है ।

सूचना—'कैतवाह्नुति' में जो 'व्याज' होता है वह उपमान का आरोप प्रकट करने के लिए और यहाँ व्याज किसी कार्य-साधन का होता है, उपमान के आरोप का नहीं।

(२६) व्याजस्तुति

जहाँ निंदा से स्तुति अथवा स्तुति से निंदा का तात्पर्य हो ।

(१) निंदा के बहाने स्तुति

उदाहरण—(कवित्त)

पापी एक जात हुतौ गंगा के अन्हाइबे कौं,
तासौं कहै कोऊ एक अधम अयान[1] मैं ।
जाहु जनि पंथी उत बिपति बिसेष होति,
मिलैगो महान कालकूट[2] खान-पान मैं ।
कहै 'पद्माकर' भुजंगन बँधैंगे अंग,
संग मैं सु भारी भूत चलैंगे मसान मैं ।
कमर कसैंगे गजखाल ततकाल, बिन
अंबर[3] फिरैगो तू दिगंबर[4] दिसान मैं ।।

इस कवित्त में स्नान करनेवाले को 'जहर खाने को मिलेगा' आदि बातें कहकर गंगाजी की निंदा की गई है, पर वे महादेव के समान बना देंगी, यह स्तुति निकलती है ।

---

१ अज्ञान । २ विष । ३ वस्त्र । ४ नग्न ।

(२) स्तुति के बहाने निंदा

उदाहरण—(सवैया)

गिरिराज[1] धरे छिगुनी[2] नख पै जस आज लौ भूतल गावत है।
'लछिराम' सुरूप सरोज मनोज मयंकहु को सरमावत है।
मुख सॉवरो रावरो हेरत ही मन कौन के मोद न छावत है।
व्रज के सिरताज गरीबनिवाज तुम्हें सदा कूबर भावत है॥

इस सवैया मे 'कूबर भाने' में प्रकट स्तुति है, पर तात्पर्य निंदा का है।

(२७) आक्षेप

जहाँ विवक्षित वस्तु की विशेषता प्रतिपादन करने के लिए निषेध-सा किया जाय वहाँ आक्षेपालंकार होता है।

'आक्षेप' शब्द का अर्थ है 'निषेध'। इस अलंकार में प्रथम कही बात का अथवा आगे कही जानेवाली बात का निषेध इस अभिप्राय से होता है कि उसकी विशेषता कुछ और प्रतिपादित हो। केवल निषेध में यह अलंकार न होगा।

इसके तीन भेद हैं—(१) उक्ताक्षेप, (२) निषेधाक्षेप और (३) व्यक्ताक्षेप।

(१) उक्ताक्षेप—जहाँ अपने कहे हुए अर्थ का किसी अभिप्राय (उत्कर्ष के लिए निषेध किया जाय।

उदाहरण (दोहा)

सह्यौ न जात बिछोह सखि, कछु करि मरत उपाय।
अथवा हतिहै आजु ही, ससि स्वरूप दरसाय॥

यहाँ पहले 'कोई उपाय करके मर जाती तो अच्छा होता'

---

१ गोवर्धन पर्वत। २ कानी अँगुली।

का निषेध दूसरी पंक्ति से हो जाता है, क्योंकि उपाय मिल गया है। यह दूसरी बात (चंद्रमा अपना स्वरूप दिखाकर मार डालेगा) उत्कर्षसूचक है।

(२) निषेधाक्षेप—जहाँ वास्तविक निषेध न होकर निषेध का आभास-मात्र हो वहाँ निषेधाक्षेप होता है।

उदाहरण (दोहा)

हौं न कहत, तुम जानिहौ, लाल बाल की बात।
अँसुआ उडुगन परत है, हौं न चहत उतपात॥

यहाँ 'मैं नहीं कहती तुम स्वयम् जान लोगे' यह निषेध है, पर 'अँसुआ उडुगन परत है' कहकर वियोग-दशा बतला भी देती है। 'मैं नहीं कहती' यह केवल निषेध का आभास है।

(३) व्यक्ताक्षेप—जहाँ विधि के भीतर निषेध छिपा हो अर्थात् प्रकाश में कार्य करने को कहा जाय, पर उसका तात्पर्य निषेध से हो।

उदाहरण—(सवैया)

रोकहिं जौं तौ अमंगल होय औ प्रेम नसै, जौं कहैं पिय जाइए।
जौं कहैं 'जाहु न' तौ प्रभुता, जौं कछू न कहै तौ सनेह नसाइए।
जौ 'हरिचंद' कहैं 'तुम्हरे बिन जीहैं न' तौ पर क्यों पतिआइए।
तासों पयान-समै तुम तें हम का कहैं प्यारे हमें समुझाइए॥

यहाँ कहने से तो ऐसा जान पड़ता है मानो वह रोकने के लिए स्वयम् इच्छुक नहीं है, केवल बिदा के समय क्या कहना चाहिए इसे ही नहीं जानती; पर वस्तुतः उसका तात्पर्य विदेश-गमन से पति को रोकना ही है।

(२८) विरोध

जहाँ वस्तुतः विरोध न होकर विरोध का आभास-मात्र हो।

यह विरोध जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य इन चार मे हो सकता है। * प्रस्तार की रीति से इसके दस प्रकार हो सकते है–

(१) जाति का जाति से विरोध, (२) जाति का गुण से विरोध, (३) जाति का क्रिया से विरोध, (४) जाति का द्रव्य से विरोध, (५) गुण का गुण से विरोध, (६) गुण का क्रिया से विरोध, (७) गुण का द्रव्य से विरोध, (८) क्रिया का क्रिया से विरोध, (९) क्रिया का द्रव्य से विरोध और (१०) द्रव्य का द्रव्य से विरोध।

(१) जाति का विरोध जाति से

उदाहरण—(दोहा)

सुधाधाम ह्वै करत है, तू विप ही को काज।
अहै कसाई के सरिस, तू ह्वैकै द्विजराज॥

यहाँ कसाई जाति का द्विजराज (ब्राह्मण) जाति से विरोध है। द्विजराज का अर्थ चंद्रमा होने से विरोध का परिहार है।

(२) जाति का विरोध गुण से

उदाहरण—(दोहा)

कहत कृपामय सब सदा, तीन्हें रहत कटार।
तू असील[1] साहब तऊ, सोहत सील-भँडार॥

यहाँ 'कृपामय' गुण का 'कटार' जाति से विरोध है।

---

* इन शब्दों के लक्षण के लिए देखिए तृतीय प्रकाश।

१ शीलरहित और असल या सच्चा।

राजा के गुण करुणा और वीरत्व दोनों है, इसी से इसका परिहार है।

(३) जाति का विरोध क्रिया से

उदाहरण—(सवैया)

श्रीसरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
'भूषन' तेरे अरुन्न प्रताप सपेत[1] लखे कुनबा[2] नृप सारे।
साहितनै तव कोप-कृसानु ते बैरि गरे सब पानिप[3] वारे।
एक अचंभव होत बड़ो तिन-ओंठ-गहे अहि जात न जारे॥

इस सवैये मे कृशानु (अग्नि) जाति से 'तृण न जलना' क्रिया का विरोध है। 'तिन-ओठ-गहे' का अर्थ 'दीनता दिखाना' होने से विरोध का परिहार हो जाता है। इसके प्रथम एवम् द्वितीय चरण में गुण से गुण का और तृतीय मे जाति से जाति (पानिप) का भी विरोध है?

(४) जाति का विरोध द्रव्य से

उदाहरण—(दोहा)

सीता-नयन चकोर सखि, रबि-बंसी रघुनाथ।
रामचंद्र सिय कमल-मुख भलो बनो है साथ॥

चकोर जाति का सूर्य द्रव्य से और कमल जाति का चंद्र द्रव्य से विरोध है।

(५) गुण का विरोध गुण से

उदाहरण—(तोटक)

जिनको सुअनुग्रह वृद्धि करै। तिनको किमि निग्रह चित्त परै।

१ उज्ज्वल, चेहरे का रंग फक होने से। २ कुटुंब। ३ पानी, शोभा।

जिनके जग अच्छत सीस धरैं। तिनको तन सच्छत कौन करै॥

यहाँ अक्षत (घावरहित) गुण का सक्षत (घावयुक्त) गुण से विरोध है। अक्षत का अर्थ चावल होने से विरोध का परिहार हो जाता है।

(६) गुण का विरोध क्रिया से

उदाहरण— दोहा)

मोद हिये यों होत है, तुव खीझे अनतोल।
मोकों निपट मिठात है, यह तेरो कटु बोल॥

यहाँ 'मोद' गुण का 'खीझना' क्रिया से और 'कटु' गुण का 'मिठाना' (मीठा लगाना) क्रिया से विरोध है। प्रेम के कारण ऐसा होता है इसी से परिहार हो जाता है।

(७) गुण का विरोध द्रव्य से

उदाहरण—(दोहा)

विषमय यह गोदावरी, अमृतनि के फल देति।
'केसव' जीवनहार[1] को दुख असेष हरि लेति॥

यहाँ विषमय (जहरीली) गुण का अमृत द्रव्य से विरोध है। विष का अर्थ जल और अमृत का अर्थ देवता होने से विरोध का परिहार हो जाता है।

(८) क्रिया का विरोध क्रिया से

बैन सुन्यो जब ते मधुर, तब तें सुनत न बैन।
नैन लगे जब ते, लखौ तब तें लगत न नैन॥

यहाँ 'सुनना' क्रिया का 'न सुनना' क्रिया से और 'लगना' का 'न लगना' से विरोध है। 'न सुनत' का अर्थ दूसरे की

१ जीवन (जल और जिंदगी) को हरनेवाला।

बातों पर) 'ध्यान न देना' और 'लगत न' का 'आँख न लगना, नींद न आना' अर्थ होने से विरोध का परिहार होता है।

(९) क्रिया का विरोध द्रव्य से

उदाहरण—(दोहा)

अब न प्रान राखत बनत, बेगि पधारहु पीय।
चंद जरावत आगि लौं, काटत कमलहु हीय॥

यहाँ 'चंद' द्रव्य का 'जलाना' क्रिया से विरोध है। वियोगावस्था होने से विरोध का परिहार हो जाता है।

(१०) द्रव्य का विरोध द्रव्य से

उदाहरण—(दोहा)

चंदन हालाहल भयो, चंद भयो है सूर।
फूल-गुलाब त्रिसूल सो, बाड़व भयो कपूर॥

यहाँ चंदन द्रव्य का हालाहल द्रव्य से विरोध है। 'हालाहल' का अर्थ कष्ट देनेवाला होने से और वियोग की अवस्था के कारण विरोध का परिहार होता है। इसी प्रकार अन्य तीनों चरणों में भी यही विरोध है।

(२६) विभावना

जहाँ कारण और कार्य के संबंध में चमत्कारपूर्ण कल्पना की जाय।

'विभावना' शब्द का अर्थ है—'विशेष प्रकार की कल्पना'। इस अलंकार में कारण और कार्य के संबंध में चमत्कारपूर्ण कल्पना की जाती है।

इसके छह प्रकार होते है।

(१) प्रथम—जहाँ कारण के अभाव में भी कार्य हो जाय।

उदाहरण—(दोहा)

अवलोके बिनहूँ अनी [1], तुव अवनी के इंद [2]।
थिर न रहत कबहूँ कहूँ, थर-थर कँपत अरिंद ॥

सेना को बिना देखे ही काँपना, कारण के बिना कार्य होना है।

(२) द्वितीय—जहाँ अपूर्ण कारण से ही कार्य उत्पन्न हो जाय।

उदाहरण—(कवित्त)

त्रिजटा कहति बार-बार तुलसीस्वरी [3] सों,
राघौ बान एक ही समुद्र सातौ सोषिहै।
सकुल सँघारि जातुधान-धारि [4], जंबुकादि
जोगिनी-जमाति कालिका-कलाप [5] तोषिहै।
राज दै नेवाजिहै बजाइ कै बिभीषनै,
बजैंगे ब्योम बाजने बिबुध प्रेम पोषिहै।
कौन दसकंध कौन मेघनाद बापुरो,
को कुंभकर्न कीट जब राम रन रोषिहै ॥

एक बाण सातो समुद्रो को सोखने के लिए अपूर्ण कारण है।

(३) तृतीय—जहाँ कारण का प्रतिबंध करनेवाली वस्तु के होते हुए भी कार्य हो जाय।

उदाहरण—(दोहा)

मानत लाज-लगाम नहिं, नैंक न गहत मरोर।
होत तोहिं लखि बाल के दृग-तुरंग [6] मुँह जोर ॥

इस दोहे में लगाम प्रतिबंधक होते हुए भी 'मरोर न गहना' कार्य हो गया है।

---

१ सेना। २ इंद्र। ३ सीता। ४ सेना। ५ समूह। ६ घोड़ा।

(४) चतुर्थ—जहाँ अहेतु (जो वास्तविक कारण नहीं है उस) से कार्य की उत्पत्ति हो।

उदाहरण—(दोहा)

यह अचरज जासों कहै, ल्यावै मनहिं कहा सु।
वा चंपक की बेलि ते, कढ़ति कमल की बासु॥

चंपक की बेलि से कमल की सुगंध आना अहेतु से कार्योत्पत्ति है।

(५) पंचम—जहाँ विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति हो।

उदाहरण—(कबित्त)

ता दिन अखिल खलभलै खल खलक[1] मै,
जा दिन सिवाजी गाजी[2] नेक करखत है।
सुनत नगारन अगार[3] तजि अरिन की,
दारगन[4] भागत न बार[5] परखत है।
छूटे बार[6] बार[7] छूटे बारन ते लाल[8] देखि,
'भूषन' सुकबि बरनत हरषत है।
क्यो न उतपात होहि बैरिन के भुंडन मै,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत है॥

यहाँ चौथे चरण में बादलो से आग बरसना विरुद्ध कारण से कार्योत्पत्ति कही गई है।

(६) षष्ठ—जहाँ कार्य से कारण की उत्पत्ति कही जाय।

उदाहरण—(दोहा)

भयो सिंधु ते बिधु[9], सुकबि बरनत बिना बिचार।
उपज्यो तुव मुख-इंदु ते प्रेम-पयोधि अपार॥

---

१ पृथ्वी। २ धर्मयुद्धवीर। ३ महल। ४ स्त्रियाँ। ५ दिन (मुहूर्त)। ६ द्वार (घर बार)। ७ बाल (केश)। ८ रत्न। ९ चंद्रमा।

इस दोहे में इंदु (चंद्र) कार्य से पयोधि (समुद्र) कारण की उत्पत्ति का वर्णन है।

(३०) विशेषोक्ति

परिपूर्ण कारण के होते हुए भी जहाँ कार्य का उद्भव न हो वहाँ विशेषोक्ति होती है।

'विशेषोक्ति' शब्द में 'विशेष' का अर्थ है 'अनुत्पत्ति का निमित्त'। इस अलंकार मे कार्य की अनुत्पत्ति के निमित्त की अवगति कथित होती है। कारण के रहते भी कार्य का अभाव रहता है।

इसके तीन प्रकार है—(१) उक्तनिमित्ता, (२) अनुक्तनिमित्ता और (३) अचित्यनिमित्ता।

(१) उक्तनिमित्ता—जहाँ कार्य की अनुत्पत्ति का निमित्त कथित हो।

उदाहरण (दोहा)

याहि कछू घनस्यामजू, लागी बड़ी बलाइ।
विरह-सिंधु मै बास भो, तऊ प्यास नहिं जाइ॥

सिंधु में रहते हुए भी प्यास न जाना, पूर्ण कारण होते हुए भी कार्योत्पत्ति नही है। इसका निमित्त दोहे मे 'बड़ी बलाइ' कथित है।

(२) अनुक्तनिमित्ता—जहाँ कार्य की अनुत्पत्ति का कारण न कहा जाय।

उदाहरण—(सोरठा)

फूलै-फलै न बेत, जदपि सुधा बरसहि जलद।
मूरख-हृदय न चेत, जौ गुरु मिलहि बिरंचि सत॥

सुधा के बरसने पर भी बेत का न फूलना-फलना और सौ ब्रह्मा के गुरु होने पर भी मूर्ख के हृदय में ज्ञान न होना, यह पूर्ण कारण के होते हुए कार्य की अनुत्पत्ति है। इस अनुत्पत्ति का कारण कहा नहीं गया है।

(३) अचित्यनिमित्ता—जहाँ कार्य की अनुत्पत्ति का निमित्त अचिंत्य हो।

उदाहरण—(दोहा)

तुव कृपान पानिपमई, जदपि नरेस दिखाति।
तऊ प्यास पर-प्रान की, अचरज, नही बुझाति॥

पानी से युक्त रहने पर भी प्यास न बुझने का कारण 'अचरज' शब्द से अचिंत्य बताया गया है।

(३१) असंगति

जहाँ कार्य-कारण के नियत संबंध का परित्याग दिखलाया जाय और उसमे विरोध का आभास हो।

'असंगति' शब्द का अर्थ है 'नियत संबंध का त्याग'। इस अलंकार में कार्य-कारण के नियत संबंध का उलट-फेर दिखाया जाता है।

इसके तीन भेद है।

(१) प्रथम—जहाँ कारण और कार्य की भिन्न-भिन्न स्थानो में स्थिति कही जाय।

उदाहरण—(कवित्त)

राजभार रजभार[1] लाजभार भूमिभार,
भवभार जयभार नीके ही अटतु है।

---

१ रजपूती।

प्रेमभार पनभार 'केसव' सॅपत्तिभार,
पतिभारजुत[1] अति जुद्धनि जुटतु है।
दानभार, मानभार सकल सयानभार,
भोगभार भागभार घटना घटतु है।
एते भार फूल-सम राजैं राजाराम-सिर,
तेहि दुख सत्रुन के सीरस[2] फटतु है॥

यहाँ राज आदि के भार है तो राजाराम के सिर पर, पर बोझ से सिर फटा जाता है शत्रुओ का।

सूचना—विरोध में भिन्न-भिन्न स्थलों पर रहनेवाले पदार्थों को स्थिति एक स्थान पर कही जाती है और यहाँ एक देश में रहनेवाली वस्तुओं की स्थिति भिन्न-भिन्न देशों मे कही जाती है।

(२) <u>द्वितीय</u>—जो कार्य जहाँ करना है वहाँ न करके अन्यत्र करे।

उदाहरण—(सोरठा)

मैं देख्यौ बन[3] न्हात, रामचंद्र तुव अरितियन्ह।
कटितट पहिरे पात, दृग कंकन[4] कर मै तिलक[5]॥

यहाँ नेत्रों मे 'कंकण' और हाथ में 'तिलक' धारण करना अनुपयुक्त स्थान की योजना है।

(३) <u>तृतीय</u>—जिस कार्य के करने मे लगे उससे विरुद्ध कार्य कर बैठे।

---

१ प्रतिष्ठा के भार से युक्त। २ मस्तक। ३ जगल और जल। ४ हाथ का एक गहना और कं=जल+कण=अश्रु। ५ टीका और तिल+क=जल (मृत पतियों को तिलांजलि देती हैं)।

उदाहरण—(सवैया)

काज महा रितुराज बली के ए हैं बनि आवत है लखतेहीं।
जात कह्यो न कहा कहिए 'रघुनाथ' कहै रसना एक एहीं।
साल[1] तमाल रसालहि आदि दै जेतिक बृच्छलता बन जेहीं।
नौ-दल कीवे को कीन्हो बिचार तो कै पतझार दियो पहिलेहीं॥

'नवदल' निकालने के लिए उद्यत होने पर 'पतझार' कर देना विरुद्ध कार्य कर डालना है।

(२३) विषम

जहाँ परस्पर मे अनुरूपता से रहित पदार्थों का संबंध घटित होना कहा जाय वहाँ विषमालंकार होता है।

'विषम' शब्द का अर्थ है 'जो एक सा न हो'। इसमें दो ऐसे पदार्थों का संबंध घटित होना दिखाया जाता है जो एक-से नहीं होते। यहाँ संबंध के भीतर संयोग और उत्पाद्य-उत्पादक भाव भी समझना चाहिए। इसके तीन प्रकार है।

(१) प्रथम—जहाँ अत्यंत विलक्षणता के कारण दो का संयोग अयोग्य बतलाया जाय।

उदाहरण—(हसगति)

एकउ हरहि न बर-गुन कोटिक दूपन।
नर-कपाल, गज-खाल, व्याल-बिष-भूषन।
कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन।
कहाँ अमंगल भेस बिसेस भयावन॥

यहाँ सुंदर स्वरूप और अमंगल वेश का संयोग अयोग्य बतलाया गया है।

---

१ एक वृक्ष।

(२) द्वितीय—जहाँ कार्य एवम् कारण की गुण-क्रिया एक-दूसरे से विरुद्ध हो।

उदाहरण—(बरवै)

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन-राम।
इन तें भइ सित कीरति अति अभिराम॥

यहाँ 'श्याम' कारण से 'सित' (उज्ज्वल) कीर्ति होने में कारण और कार्य के गुण में विरोध है।

(३) तृतीय—जहाँ कर्ता किसी क्रिया के फल को ही अप्राप्त न करे, प्रत्युत अनिष्ट का लाभ भी हो।

उदाहरण—(सवैया)

दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै।
कत भाँड़ भए उठि आसन तें कहि 'केसव' संभुसरासन को छ्वै।
अरु काहू चढ़ायो न काहू नवायो न काहू उठायो न आँगुरहू द्वै।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ आए ह्वै बीर चले बनिता ह्वै॥

यहाँ धनुष न उठ सकना क्रिया-फल की अप्राप्ति है, वीरता के साथ आना और वनिता की तरह सिर नीचा किए जाना अनिष्ट-लाभ है।

(३३) अधिक

आधेय अथवा आधार की अधिकता का वर्णन अधिकालंकार है।

जो वस्तु किसी पर स्थित रहती है वह आधेय है और जिस पर वह स्थित रहती है वह आधार है। इसके दो भेद हैं।

(१) प्रथम—जहाँ बड़े आधार से छोटा आधेय भी

वर्णनीय (आधेय) की उत्कर्षता प्रकट करने के अभिप्राय से बड़ा बतलाया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

सिव सरजा तव हाथ को, नहिं बखान करि जात।
जाको बासी[1] सुजस, सब त्रिभुवन मैं न समात॥

यहाँ त्रिभुवन आधार 'जस' आधेय से बड़ा है, पर यश की उत्कृष्टता प्रकट करने के विचार से वह त्रिभुवन से भी बड़ा कहा गया है।

(२) द्वितीय—जहाँ बड़े आधेय से वस्तुतः छोटा आधार भी वर्णनीय (आधार की उत्कृष्टता प्रकट करने के अभिप्राय से बड़ा बतलाया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

सुनियत जाके उदर मैं, सकल लोक-बिस्तार।
'दास' बसै तो उर सदा, सोई नंदकुमार॥

यहाँ नंदकुमार—जिनके उदर में सब लोकों का विस्तार है—आधेय से वस्तुतः 'उर' आधार छोटा है। पर यहाँ वह बड़ा वर्णित है।

(४) एकावली

जहाँ पूर्व-पूर्व में कथित वस्तु के प्रति उत्तरोत्तर कथित वस्तु का वीप्सा के द्वारा विशेषण-भाव से स्थापन अथवा निषेध हो वहाँ एकावली होती है।

'एकावली' का अर्थ होता है 'माला'। 'माला' में एक मोती से सटा दूसरा मोती होता है और दूसरे से सटा तीसरा।

---

१ बसनेवाला।

इसी प्रकार वे बराबर एक-दूसरे से सटते चले जाते है। इसलिए जो मोती दो के बीच मे रहता है वह दोनो ओर सटा होता है इसी से एकावली मे उत्तरकथित पदार्थ का पुनः कथन (वीप्सा) होता है।

उदाहरण—(दोहा)

काल विलोकत ईस-रुख, भानु काल-अनुसारि।
रविहिं राउ, राजहि प्रजा, बुध ब्यवहरहि बिचारि॥

यहाँ ईश्वर मे काल का विशेषण-भाव से स्थापन है और उसमे भानु आदि का।

निषेध की एकावली

उदाहरण—(सवैया)

सोभित सो न सभा जहँ बृद्ध न बृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधु न साधित दीह दया न दिपै जिन माही।
सो न दया जु न धर्म धरै, धर धर्म न सो जहँ दान बृथाहीं।
दान न सो जहँ साँच न, 'केसव' साँच न सो जु बसै छल-छाहीं॥

यहाँ 'सभा' का विशेषण 'बृद्ध न' है, जिसमे निषेध-भाव है। इसी प्रकार एक शृंखला (माला) बनती चली गई है।

सूचना—(१) एकावली में विशेषण-भाव से स्थापन और निषेध के अंतर्गत विशेष्य-भाव से स्थापन या निषेध भी समझना चाहिए।

(२) जब कार्य और कारण की इसी प्रकार माला बनती है तो उसे 'कारणमाला' नामक एक अलग ही अलंकार मानते है। जैसे—

बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिन द्रवहिं न राम।
राम-कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिश्राम॥

इसमें पूर्व में कारण और उत्तर में कार्य कहे गए है। इसका उलटा भी हो सकता है पहले कार्य और उसका कारण पीछे।

(३) जहाँ उपकार्य और उपकारक-भाव से वस्तुओ का वर्णन इसी प्रकार माला-रूप में हो वहाँ एक दूसरा ही अलंकार माना जाता है, जिसे 'मालादीपक' कहते है। यथा—

जग की रुचि व्रजबास, व्रज की रुचि व्रजचंद हरि।
हरि-रुचि बसी, 'दास', बंसी-रुचि मन बाँधिबो॥

(४) जहाँ उत्तरोत्तर उत्कर्ष या अपकर्ष की माला होती है वहाँ एक दूसरा ही अलंकार माना जाता है जिसे 'सार' कहते हैं। जैसे—

सिला कठोरी काठ तें, ताते लोह कठोर।
ताहू तें कीन्हो कठिन, मन तुम नंदकिसोर॥

(३५) यथासंख्य

जहाँ प्रथम कही हुई वस्तुओं के क्रम का निर्वाह उनके संबंध में आगे कही जानेवाली वस्तुओं के साथ अंत तक निभाया जाय।

'यथासंख्य' शब्द का अर्थ है 'संख्याओ का क्रम' अर्थात् जितनी वस्तुओ का वर्णन पहले जिस क्रम से हुआ है आगे चलकर उनसे संबंधित वस्तुओ का वर्णन भी उसी क्रम से हो।

उदाहरण—(छप्पय)

आनन[1], बेनी[2], नैन[3], बैन[4], पुनि दसन[5], सुकटि[6], गति[7]।
ससि, सर्पिन, मृग, पिक[8], अनार, केहरि[9], करनिन[10]-पति।
पुरन[11], खिजत[12], जक[13], तरुन, पक्क, बरपंच[14], पुष्टबल।
सरद, पताल, बिछोह, पाग, तरु, गिरि, बन-कज्जल।
निसि, संनिबेस, सावक[15], चुवत[16], बिगस[17], प्रसूती[18], मदझरत
'पृथिराज' भनत बंसी बजत अस बनिता बन-बन फिरत॥

---

१ मुख। २ चोटी। ३ नेत्र। ४ वचन। ५ दाँत। ६ कमर। ७ चाल। ८ कोयल। ९ सिंहिनी। १० हथिनियो की स्वामिनी। ११ पूर्ण। १२ क्रुद्ध। १३ चकपकाया हुआ। १४ समूह मे श्रेष्ठ। १५ बच्चा। १६ मदमस्त। १७ फटा हुआ। १८ ब्याई हुई।

इस छप्पयके प्रथम चरण में आनन आदि सात वस्तुओं के नाम लिए गए हैं और दूसरे, तीसरे, चौथे एवम् पाँचवें चरणों से यथाक्रम उनके उपमानो एवम् विशेषणों का वर्णन किया गया है।

(३९) परिवृत्ति

जहाँ सम अथवा असम पदार्थो का विनिमय हो वहाँ परिवृत्ति-अलंकार होता है।

'परिवृत्ति' शब्द का अर्थ है 'अदला-वदला। यही विनिमय' शब्द का भी अर्थ है, अर्थात् कुछ देकर लेना। इसमें सम-गुणवाली या विषम-गुणवाली वस्तुओ का 'अदला-वदला' होता है। इस प्रकार यह चार प्रकार की हो सकती है—(१) उत्कृष्ट पदार्थ देकर उत्कृष्ट पदार्थ लेना और (२ न्यून पदार्थ देकर न्यून लेना। ये दोनो सम परिवृत्ति है। (३) उत्कृष्ट वस्तु देकर निकृष्ट लेना और (४) निकृष्ट देकर उत्कृष्ट लेना। ये दोनों असम परिवृत्ति हैं।

(१) उत्कृष्ट से उत्कृट की

उदाहरण—(दोहा)

वेलि-कुसुम कहँ, पवन यह, सीख नटन की देत।
भेट माँहि तिन ते बहुरि, अति सुगंध लै लेत॥

यहाँ नाचने की शिक्षा देना और सुगंध लेना, उत्कृष्ट से उत्कृष्ट का विनिमय है।

(२) न्यून से न्यून की

गंगे कीन्हौ कौन तुम, मो पै वड़ उपकार।
लै मन को सब मैल अब तन को दीन्ही छार॥

यहाँ मैल लेकर 'छार' देना न्यून से न्यून का विनिमय है।

(३) उत्कृष्ट से न्यून की

उदाहरण—(दोहा)

कासों कहिए आपनो, यह अयान जदुराइ।
मन-मानिक दीन्हों तुमहिं, लीन्ही बिरह-बलाइ॥

यहाँ माणिक देकर बला लेना उत्कृष्ट से न्यून का विनिमय है।

(४) न्यून से उत्कृष्ट की

दई पराजय अरिन कहँ, लीन्ही कित्ति अमान।
लै सिँगार तिन तियन को, दीन्हो दुख को दान॥

सूचना—परिवृत्ति अलंकार में जिस 'विनिमय' का वर्णन होता है वह कविकल्पित होना चाहिए, वास्तविक विनिमय में अलंकार न होगा।* जैसे, 'दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया' में परिवृत्ति नही है। इसी प्रकार लेनदेन में दो पक्ष होने आवश्यक हैं। किसी दूसरे की ही वस्तु के लेने में यह अलंकार बन सकता है, अपनी वस्तु के उलट-फेर में नहीं। जैसे—

पितु-आयसु भूषन-बसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमौ-हरष न हृदय कछु, पहिरे बलकल चीर॥

यहाँ यदि कोई भूषण को त्यागकर बल्कल पहनने में उत्कृष्ट से न्यून का विनिमय मानने लगे तो वह सभव नही, क्योंकि यहाँ विनिमय का अभाव है।

(३७) परिसंख्या

जहाँ किसी वस्तु का एक स्थान से निषेध करके उसका दूसरे स्थान में स्थापन हो वहाँ परिसंख्या होती है।

* दानादानव्यवहारः कविकल्पित एव न वास्तवस्तत्रालकारत्वाभावात्।
—उद्योत।

'परिसंख्या' शब्द का अर्थ है 'गणना का वर्णन'। इस अलंकार मे एक वस्तु की अन्य स्थानो मे स्थिति का निषेध करके उसकी स्थापना एक स्थान में की जाती है।

उदाहरण—(दोहा)

अति चंचल जहॅ चलदलै, बिधवा बनी, न नारि।
मन मोहो ऋषिराज को, अदभुत नगर निहारि॥

यहॉ चंचलता का अन्यत्र से वर्जन करके उसकी स्थापना चलदल (पीपल) में की गई है। इसी प्रकार विधवापन का अन्यत्र से वर्जन उसकी स्थापना 'वनी' (वाटिका) मे करने के लिए किया गया है।

सूचना—परिसंख्या अलंकार प्रश्नयुक्त भी होता है। इसके अतिरिक्त कहीं निषेध शब्दों द्वारा स्पष्ट कथित होता है और कही उसकी प्रतीति अर्थ से होती है। ऊपर के उदाहरण में 'अति चंचल जहँ चलदलै' में निषेध आर्थ है और 'विधवा बनी, न नारि' मे शाब्द। प्रश्नयुक्त परिसंख्या का उदाहरण इस प्रकार होगा—

क्या आराध्य ? सुकृत सदा, सेव्य ? शास्त्र-शुचि ज्ञान।
काव्य क्या कहो ? परमपद, ध्येय कौन ? भगवान॥

(३८) समुच्चय

जहॉ कई वस्तुओं का एकत्रीकरण (भावों, गुणो, कियाओ आदि की जटिलता का बोध करने के लिए) किया जाय वहाँ समुच्चय होता है।

'समुच्चय' शब्द का अर्थ है 'समूह'। इस अलंकार में अनेक भावों, क्रियाओ, गुणों आदि का एक स्थान में जुट जाना वर्णित होता है। इसके दो भेद हैं।

(१) प्रथम—जहाँ एक साथ बहुत-से गुणों अथवा क्रियाओं का एक ही समय में होना वर्णित हो।

उदाहरण—(दोहा)

हे हरि तुम बिन राधिका, सेज परी अकुलाति।
तरफराति, तमकति, तचति, सुसुकति, सूखी जाति॥

यहाँ तड़फड़ाना आदि कई क्रियाएँ एक ही समय में हो रही हैं।

(२) द्वितीय—जहाँ एक कार्य के करने के लिए एक ही साधक काफी हो, पर अन्य साधक भी प्रस्तुत हो जायँ।

उदाहरण—(दोहा)

काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तियबिसेष पुनिचेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि॥

मंथरा के कुटिल होने में कुबड़ा होना ही पर्याप्त है, पर यहाँ उसके लिए स्त्रीत्व और दासीत्व द्वारा दो साधकांतर भी आ गए हैं (मंथरा कुबड़ी थी)।

(३८) प्रत्यनीक

जहाँ शत्रु को न जीत सकने के कारण उस पक्ष के किसी व्यक्ति से वैर निकाला जाय।

'प्रत्यनीक' शब्द का अर्थ है 'सेना के प्रति'। किसी शत्रु से न जीत सकने के कारण उसकी सेना या उसके संबंधी के प्रति बुरा व्यवहार करना इस अलंकार का विषय है। जैसे—'धोबी से न जीते, गदहे के कान उखाड़े'।

उदाहरण—(दोहा)

तो मुख-छबि सौं हारि जग, भयो कलंक-समेत।
सरद-इंदु अरविंदमुख, अरबिदनि दुख देत॥

यहाँ कमलमुखी राधिका से न जीतने पर चंद्र का (मुख के मित्र) कमल को सताना कहा गया है।

सूचना—इस अलंकार में हेतूत्प्रेक्षा सहायक रूप में बराबर देखी जाती है जैसा ऊपर के उदाहरण में है।

(४०) काव्यार्थापत्ति

जहाँ एक कहे हुए अर्थ के साथ दूसरा अकथित अर्थ भी आप से आप सिद्ध हो जाय।

'काव्यार्थापत्ति' का अर्थ है 'काव्य मे कहे हुए अर्थ का आ पड़ना'। इस अलंकार में कही जाती है एक बात पर दूसरी बात स्वयम् आ पड़ती (सिद्ध हो जाती) है।

उदाहरण—(दोहा)

रामचंद्र भूपालमनि, ज्वलित रावरो ओज।
जीत्यौ जब रबि को, कहा तब बड़वानल-खोज॥

इस दोहे मे सूर्य को जीत लेने से बड़वानल का जीता जाना भी स्वतः सिद्ध हो गया है।

(४१) काव्यलिंग

जहाँ किसी समर्थनीय अर्थ का समर्थन किया जाय वहाँ काव्यलिग होता है।

'काव्यलिग' में 'लिग' शब्द का अर्थ है 'चिह्न'। न्याय-शास्त्र मे कथित लिंग से भिन्नता दिखाने के लिए इसमे काव्य

शब्द भी जोड़ा गया है। यहाँ भी समर्थनीय अर्थ का चिह्न अर्थात् हेतु बनकर कोई बात आती है।

उदाहरण—(दोहा)

एक छत्र इक मुकुटमनि, सब बरनन पर जोउ।
'तुलसी' रघुबरनाम के,. बरन बिराजत दोउ॥

यहाँ 'राम' नाम के र् और म् अक्षरों की श्रेष्ठता ही समर्थनीय है। इसका समर्थन कवि इस प्रकार करता है कि 'र' अक्षर सभी अक्षरों के सिर पर छत्र की तरह रहता है (जैसे र्म मे ऊपर का रेफ ' ॅ ' और म् (अनुस्वार बनकर) सब अक्षरों के सिर पर मुकुटमणि की भाँति विराजता है (जैसे शं में अनुस्वार ' ं ' जो हलंत म् का ही दूसरा रूप है।

(४२) अर्थांतरन्यास

जहाँ प्रस्तुत अर्थ का अप्रस्तुत अर्थ के द्वारा समर्थन किया जाय।

'अर्थांतरन्यास' शब्द में 'अर्थांतर' का अर्थ है 'अन्य अर्थ' और 'न्यास' का अर्थ है 'रखना'। इस अलंकार में एक अर्थ के समर्थन के लिए दूसरे अर्थ का प्रयोग होता है।

इसके दो प्रकार है—(१) विशेष-भेद और (२) सामान्य-भेद।

(१) विशेष-भेद—जहाँ किसी सामान्य अर्थ का समर्थन विशेष अर्थ से किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

अधम-मलीन प्रसंग तें, अधमै ही फल होत।
स्वाति-अमृत अहि-मुख परे,बनि विप होत उदोत॥

पहला वाक्य सामान्य है और दूसरा विशेष। दूसरा पहले के समर्थन में आया है।

(२) सामान्य-भेद—जहाँ किसी विशेष अर्थ का समर्थन सामान्य अर्थ से किया जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

अस कहि चला बिभीषन जबहीं। आयुहीन भे निसिचर तबहीं।
साधु-अवज्ञा[1] तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कइ हानी॥

यहाँ विभीषण के चले जाने से निशिचरों का आयुहीन होना विशेष बात है। इसका समर्थन 'साधुओं के अपमान से तुरत कल्याण की हानि होती है' इस सामान्य बात से किया गया है।

सूचना—दृष्टांत अलंकार और अर्थांतरन्यास में अंतर यह है कि दृष्टांत में दोनों ही वाक्य विशेष या सामान्य होते हैं, पर अर्थांतरन्यास में एक वाक्य सामान्य और दूसरा विशेष रहता है।

(४३) उल्लास

जहाँ किसी के गुण या दोष से किसी दूसरे को गुण या दोष हो वहाँ उल्लासालंकार होता है।

'उल्लास' शब्द का अर्थ है 'उत्कट सुख'। यह अर्थ इस अलंकार के कुछ प्रकारों मे इसी प्रकार लग जाता है और कुछ मे लक्षणा से।

प्रस्तार करने से इसके चार भेद हुए—(१) गुण से गुण, (२) दोष से दोष, (३) गुण से दोष और (४) दोष से गुण।

(१) गुण से गुण

उदाहरण—(कवित्त)

आगे परे पाहन कृपा, किरात, कोलिनी,
कपीस, निसिचर अपनाए नाए माथ जू।
साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय,
ऋनियाँ कहाए हौ बिकाने ताके हाथ जू।
'तुलसी' से खोटे खरे होत ओट नाम ही की,
तेजी माटी मगहू की मृगमद-साथ जू।
बात चले बात को न मानिबो बिलग, बलि,
काकी सेवा रीझि कै नेवाजी रघुनाथ जू॥

तृतीय चरण में नाम के गुण से खोटों को गुण होना। (खरे होत) और मृगमद के गुण से 'माटी' को गुण होना (तेजी) कहा गया है।

(२) दोष से दोष

उदाहरण—(दोहा)

मुकुता-कर करपूर-कर, चातक-जीवन जोइ।
एतो बड़ो 'रहीम' जल, ब्याल-बदन[1] बिष होइ॥

यहाँ 'ब्याल' के दोष से (स्वाति के) जल को दोष (विष) होना कहा गया है।

(३) गुण से दोष

उदाहरण—(दोहा)

बरपि बिस्व हरषित करत, हरत ताप, अघ, प्यास।
'तुलसी' दोष न जलद को, जो जल जरै जवास॥

---

१ सर्प के मुख में।

यहाँ बादल के जल बरसने के गुण से जवास का जलना दोष कहा गया है।

(४) दोष से गुण

उदाहरण—(दोहा)

दसकंधर अति कोप करि, उर किय चरन-प्रहार।
मिल्यो विभीषन राम सन, राजतिलक अनुसार[१]॥

रावण के लात मारने दोष से विभीषण को राज मिलना गुण हुआ।

(४४) तद्गुण

जहाँ अपना गुण त्याग कर किसी उत्कट गुणवाले समीपस्थ पदार्थ का गुण ग्रहण किया जाय।

'तद्गुण' का अर्थ है 'उसका गुण'। इसमे एक वस्तु दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण करती है।

उदाहरण—(बरवै)

सिय तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत।
हार वेलि[२] पहिरावउँ, चंपक होत॥

यहाँ वेले का हार (उज्ज्वल) सीताजी के अंग के रंग से चंपक (पीला) हो गया।

सूचना—कुछ लोग केवल रंग ग्रहण करने में ही तद्गुण मानते हैं, पर गुण से अन्य गुणों (रूप, रस और गंध) का भी ग्रहण होता है*।

---

१ कराकर। २ वेला।

* तद्गुणातद्गुणयो गुणशब्दो रूपरसगंधादिगुणवाची।—कुवलयानंद।

(४५) अतद्गुण

जहाँ समीपवर्ती उत्कट गुणवाली वस्तु का गुण ग्रहण न किया जाय ।

उदाहरण—(दोहा)

संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति के धंध ।
राखौ मेलि कपूर मै, हींग न होय सुगंध ॥

सूचना—'उल्लास' में गुण शब्द दोष का उलटा होता है और तद्गुण एवम् अतद्गुण में उसका तात्पर्य रूप, रस, गंधादि से होता है ।

यद्यपि 'अतद्गुण' विशेषोक्ति के सामान्य लक्षण—कारण की उपस्थिति में भी कार्य का अभाव—से युक्त होता है, पर यह उल्लास और तद्गुण का प्रतिद्वंद्वी है इसलिए इसको अलग अलंकार माना गया है।

(४६) मीलित

जहाँ उत्कट धर्मवाली वस्तु मे तादृश वस्तु छिप जाय और उनका भेद न जाना जाय ।

उदाहरण—(कवित्त)

इंद्र निज हेरत फिरत गज-इंद्र[1] अरु,
इंद्र को अनुज[2] हेरै दुगध-नदीस[3] को ।
'भूपन' भनत सुर-सरिता[4] को हंस हेरैं,
बिधि हेरैं हंस को चकोर रजनीस[5] को ।

१ ऐरावत । २ उपेंद्र (विष्णु) । ३ क्षीरसागर । ४ गंगा । ५ चंद्रमा ।

साहितनै सरजा यौं करनी करी है तैं जु,
होत है अचंभौ देव कोटियौ तैंतीस को।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने[1] निज
गिरि[2] कों गिरीस हेरैं, गिरिजा गिरीस[3] कों॥

इसमें शिवाजी के श्वेत यश में ऐरावत आदि श्वेत-धर्मवाले पदार्थों का छिप जाना कहा गया है।

(४७) उन्मीलित

जहाँ सादृश्य के कारण एक वस्तु के दूसरी में विलीन हो जाने पर भी हेतु से भेद का ज्ञान हो।

उदाहरण—(बरवै)

चंपक हरवा अँग मिलि, अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय-हियरे, जब कुँभिलाइ॥

चपक-हार के कुँभला जाने से उसका सीता के अंग से भेद ज्ञात हो गया।

(४८) सूक्ष्म

जहाँ किसी के आकारादि अथवा चेष्टा से लक्षित अर्थ किसी दूसरे के द्वारा (साभिप्राय चेष्टा से) प्रकाशित कर दिया जाय वहाँ सूक्ष्मालंकार होता है।

'सूक्ष्म' का अर्थ है बारीक। इस अलंकार में किसी की बारीकी समझकर कोई उसका बारीकी से ही उत्तर देता है। इसलिए इसे स्थूल बुद्धिवाले नहीं समझ सकते।*

१ खो गए। २ कैलास। ३ महादेव।

* सूक्ष्मः स्थूलमतिभिरसंलक्ष्यः। —साहित्यदर्पण।

चेष्टा-द्वारा भाव का प्रकाशन

उदाहरण—(कवित्त)

दाहे लंक रावन-गरब चकचूर करि,
अछयकुमारहिं पछारे पैज[1]-पन के।
'लछिराम' कुसल प्रबोधि मैथिली को, तोरि
बाग, सोधि राकस अभंग-रन-रंग के।
धनुप-बलित श्रीबिभीषन करन्ह दीन्हे,
चारु चित्रपट हनूमान स्यामघन के।
पल्लव जवा-से बगराय दै, कछूक तिन,
जुगल प्रबीन त्यों सँभारे मौज मन के॥

हनूमान ने काले बादल पर (इंद्र) धनुप बनाकर बिभीषण को दिया और इससे बतलाया कि मैं धनुर्धर राम का सेवक हूँ। बिभीषण ने जवा-पुष्प के दल फैलाकर यह प्रकट किया कि राम के जवा-सदृश लाल चरणों में मेरा भी अनुराग है। यहाँ चेष्टा के द्वारा बिभीषण ने हनूमान के भाव को समझकर उसे अपनी चेष्टा के द्वारा प्रकट कर दिया है।

आकार-द्वारा भाव का प्रकाशन

उदाहरण—(सवैया)

जल को गए लक्खन है लरिका परिखौ[2] पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ[3] बयारि[4] करौं अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े[5]।
'तुलसी' रघुबीर प्रिया-श्रम जानिकै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो पुलको तनु बारि-बिलोचन बाढ़े॥

यहाँ सीताजी के आकार द्वारा भाव को लक्षित कर राम ने

---

१ प्रतिज्ञा। २ प्रतीक्षा करो। ३ पसीना। ४ हवा। ५ गर्म धूल से झुलसे।

कंटक काढ़ने के बहाने ठहरकर उनके छिपे भाव को प्रकाशित किया है।

सूचना—कुछ लोग आकार-द्वारा भाव-प्रकाशन को 'पिहित' नामक दूसरा ही अलंकार मानते हैं। पर वस्तुतः सूक्ष्म से इसमें कोई अधिक विशेषता नहीं है। इसलिए इसे भी सूक्ष्म के ही अंतर्गत समझना चाहिए।

(४९) स्वभावोक्ति

जहाँ किसी के जाति, क्रिया, गुण आदि स्वभावों का यथावत् वर्णन हो वहाँ स्वभावोक्ति होती है।

'स्वभावोक्ति' शब्द का अर्थ है 'स्वभाव के संबंध मे उक्ति (कथन)'। इसमें बच्चो, पशुओ आदि के 'स्वभाव' का यथावत वर्णन रहता है।

उदाहरण—(सवैया)

कबहूँ ससि माँगत आरि करै, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरै।
कबहूँ करताल बजाइके नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं।
कबहूँ रिसियाइ कहैं हठिकै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा 'तुलसी' मन-मंदिर में बिहरैं॥

सूचना—कुछ लोगों के विचार से यह वस्तुतः अलंकार का विषय नहीं है, क्योंकि अलंकार वर्णन की शैली है। वर्ण्य वस्तु का निर्देश अथवा उसकी स्वाभाविक क्रिया का निरूपण शैली के अंतर्गत नहीं आ सकता है।*

(५०) उदात्त

किसी वस्तु की समृद्धि का अथवा महानो की उपलक्षणता का वर्णन उदात्त कहलाता है।

'उदात्त' का अर्थ है 'स्वरूप का निश्चय कराना'। किसी

---

* अलंकारकृता येषा स्वभावोक्तिरलंकृतिः।
अलंकार्यतया तेषा किमन्यदवतिष्ठते ॥—वक्रोक्तिजीवित।

समृद्धि के वर्णन अथवा महान् व्यक्तियों के उपलक्षण से उस वस्तु का स्वरूप स्पष्ट किया जाता है। ऊपर के लक्षण में वस्तु से तात्पर्य है धन, शौर्य, औदार्य आदि। इस अलंकार में संबंधातिशयोक्ति भी निहित रहती है, क्योंकि वर्णन में असंबंध मे संबंध का कथन होता है। 'महानों की उपलक्षणता' का तात्पर्य यह हुआ कि जहाँ महान् व्यक्ति का चरित अंग होकर किसी अंगी के महत्त्व का प्रतिपादन करे।

वस्तु की समृद्धि

उदाहरण—(चौपाई)

बेनु हरित-मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरन परहिं नहिं चीन्हे।
कनककलित अहि-बेलि[२] बनाई। लखि नहिं परइ सपर्न सुहाई।
तेहि के रचि-रचि बंध बनाए। बिच-बिच मुकुता-दाम[३] सुहाए।
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि[६] पचि[७] रचे सरोजा॥

यह जनक-नगर के विवाहोत्सव का वर्णन है। धन की समृद्धि का निरूपण है।

महानों की उपलक्षणता

उदाहरण—(कबित्त)

जहाँ बालमीकि भए ब्याध ते मुनींद्र साधु,
'मरा-मरा' जपे सुनि सिष ऋषि सात की।
सीय को निवास लव-कुस को जनमथल,
'तुलसी' छुवत छाँह ताप गरै गात की।
बिटप-महीप सुरसरित समीप सोहै,
सीटाबट पेखत पुनीत होत पातकी।

१ सपर्ण, पत्ते सहित। तांबूल। ३ माला। ४ हीरा। ५ हरा रंग लिए नीला रत्न। ६ गड्ढा करके। ७ पच्चीकारी करके।

वारिपुर दिगपुर[1] बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकी-चरन-जलजात[2] की ॥

यहाँ चित्रकूट के 'सीतावट' का वर्णन है। इसमें सीताजी आदि महानो के चरित उक्त स्थल के अंग होकर आए है।

सूचना—कुछ लोग शौर्यादि की समृद्धि के वर्णन को अत्युक्ति नामक अलग अलंकार मानते है। पर उसे उदात्त से अलग नही समझना चाहिए। नीचे उसके उदाहरण दिए जाते हैं। अत्युक्ति का लक्षण लिखा गया है—किसी वस्तु का मिथ्यापूर्ण वर्णन जो बढ़ाकर किया गया हो। यह उदात्त के प्रथम भेद से अलग नहीं है।

अत्युक्ति के उदाहरण

(१) सौंदर्यात्युक्ति

उदाहरण—(दोहा)

भूषन-भार सँभारिहै, क्यों यह तन सुकुमार।
सूधे पायँ न धर परत, सोभा ही के भार॥

(२) शौर्यात्युक्ति

उदाहरण—(कवित्त)

साजि चतुरंग-सैन अंग में उमंग धरि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषन' भनत नाद बिहद[3] नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन[4] के रलत[5] है।
ऐल-फैल[6] खैल-भैल[7] खलक[8] मै गैल-गैल,
गजन की ठेल-पेल सैल उसलत[9] है।

---

१ चित्रकूट के समीप के दो गाँव। २ कमल। ३ बेहद, अत्यधिक। ४ (गजवर) श्रेष्ठ हाथी। ५ बह चलते हैं। ६ समूह (सेना) के फैलने से। ७ खलबली। ८ संसार। ९ पहाड़ उखड़ जाते हैं।

तारा-सो तरनि[1] धूरि-धारा मैं लगत, जिमि
थारा पर पारा पारावार[2] यों हलत है।

(३) औदार्यात्युक्ति

उदाहरण—(कवित्त)

संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि,
तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना।
कहै 'पदमाकर' सु हेम[3] हय[4] हाथिन के,
हलके[5] हजारन के वितरि[6] बिचारै ना।
गज-गंज-बकस[7] महीप रघुनाथराव,
याहि गज-धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रहीं[8],
गिरि ते गरे ते निज गोद ते उतारै ना॥

(४) विरहात्युक्ति

उदाहरण—(कवित्त)

'शंकर' नदी-नद-नदीसन के नीरन की,
भाप बन अंबर[9] ते ऊँचो चढ़ जायगी।
दोनो ध्रुव छोरन लौं पल में पिघलकर,
घूम-घूम धरनी धुरी-सी बढ़ जायगी।
भारैंगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति,
जारैंगे खमंडल मे आग मढ़ जायगी।
काहू विधि विधि[10] की बनावट बचैगी नाहिं,
जो पै वा वियोगिनी की आह कढ़ जायगी॥

---

१ सूर्य। समुद्र। ३ सोना। ४ घोडा। ५ समूह। ६ विभाजित करना। ७ हाथियों का समूह दान करनेवाले। ८ पार्वती गणेश की देख-भाल कर रही हैं। ९ आकाश। १० ब्रह्मा।

३ उभयालंकार

दो या इससे अधिक अलंकारों के मेल को उभयालंकार कहते हैं।

यहाँ 'दो अलंकारो' का तात्पर्य यह है कि वे दोनों चाहे दो शब्दालंकार हो, चाहे दो अर्थालंकार अथवा एक शब्दालंकार और दूसरा अर्थालंकार। दो या दो से अधिक अलंकारो का मेल दो ढंग से हो सकता है; एक तो ऐसे ढंग से कि दोनो अलंकार अलग-अलग साफ प्रकट दिखाई दे और दूसरे इस तरह कि दोनो एक-दूसरे मे ऐसे मिल गए हों कि किसी के लिए अलग कर लेना संभव न हो। इसी से उभयालंकारों के दो प्रकार हे—(१) संसृष्टि और (२) संकर।

(१) संसृष्टि

जहाँ दो अलंकार तिल और तंदुल की तरह मिले हो वहाँ संसृष्टि होती है।

तिल और चावल यदि मिलाकर रख दिए जायँ तो वे दोनों ही साफ अलग-अलग जान पड़ेगे। इसी प्रकार संसृष्टि वहीं होगी जहाँ दोनो अलंकार पृथक्-पृथक् प्रतीत हो। इसके तीन प्रकार होते है—(१) शब्दालंकार-संसृष्टि, (२) अर्थालंकार-संसृष्टि और (३) शब्दार्थालंकार-संसृष्टि।

(१) शब्दालंकार-संसृष्टि—जहाँ दो शब्दालंकार एक ही स्थान पर पृथक्-पृथक् प्रतीत हों।

उदाहरण—(द्रुतविलंबित)

जनम से पहले विधि ने दिए,
रजत राज्य रथादि तुम्हें स्वयम्।

तदपि क्यों उसको न सराहते,
मचलते चलते तुम हो वृथा ॥

इसके दूसरे चरण में वृत्त्यनुप्रास है ('र' का) और चौथे चरण में यमक है ('मचलते चलते' में 'चलते' का)। ये दोनों पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं।

(२) अर्थालंकार-संसृष्टि—जहाँ दो अर्थालंकारों की पृथक्-पृथक् प्रतीति हो।

उदाहरण—(मंदाक्रांता)

चिंता की सी कुटिल उठतीं अंक में जो तरंगें।
वे थीं मानों प्रगट करतीं भानुजा की व्यथाएँ।
धीरे-धीरे मृदु पवन में चाव से थीं न डोली।
शाखाएँ भी सहित लतिका शोक से कंपिता थीं ॥

इसके प्रथम चरण में उपमा है (चिंता की सी), दूसरे चरण में हेतूत्प्रेक्षा है और उत्तरार्ध मे अपह्नुति है। ये सब पृथक्-पृथक् प्रतीत हो रहे हैं।

(३) शब्दार्थालंकार-संसृष्टि—जहाँ शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों हों और पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हों।

उदाहरण—(सवैया)

सुविशाल नभो में उड़े फिरते, अवलोकते प्राकृत चित्र-छटा।
कहीं शस्य से श्यामल खेत खड़े, जिन्हें देख घटा का भी मान घटा
कही कोसों उजाड़ में झाड़ खड़े, कही आड़ में कोई पहाड़ सटा।
कहीं कुंज लता के वितान तने, सब फूलो का सौरभ था सिमटा ॥

इस सवैये मे अनुप्रास, यमक ('घटा–घटा' मे) और

लुप्तोपमा (घटा का भी मान घटा) एवम् रूपक ('लता के वितान' मे) अलंकार पृथक्-पृथक् पड़े है।

(२) संकर

जहाँ दो अलंकार दूध और पानी की भाँति मिले हो वहॉ 'संकर' नामक उभयालंकार होता है।

दूध और पानी के मिल जाने पर दोनो को अलग-अलग दिखा सकना कठिन होता है। इसी प्रकार 'संकर' वहीं होता है जहॉ दो अलंकार एक-दूसरे मे ऐसे मिले हों कि एक-दूसरे को अलग न कर सके। इस प्रकार का मेल तीन प्रकार से संभव है - (१) अंगांगी भाव, (२) संदेह-संकर और (३) एक-वाचकानुप्रवेश।

(१) अंगांगी भाव—जहाँ दो अलंकार इस प्रकार से पड़े हो कि एक अंगी हो और दूसरा अंग।

इसको समझाने के लिए बीज-वृक्ष-न्याय का सहारा लिया जाता है। जिस प्रकार वृक्ष अंगी होता है और बीज अंग, उसी प्रकार इस 'सकर' में दो अलंकार मिले रहते है। साथ ही जिस प्रकार बीज वृक्ष की उत्पत्ति मे सहायक होता है और वृक्ष बीज की उत्पत्ति मे, उसी प्रकार ये दोनों अलंकार एक दूसरे की स्थिति में सहायक भी होते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

आश्रम-सागर सांत रस पूरन पावन पाथ।
सेन मनहुँ करुना-सरित लिए जाहिं रघुनाथ॥

यहॉ सेना पर 'करुना-सरित' की जो उत्प्रेक्षा है। उसका

अंग है 'आश्रम-सागर' रूपक। ये दोनों अन्योन्याश्रित और एक-दूसरे के उपकारक हैं।

(२) संदेह-संकर—जहाँ एक ही स्थान में दो अलंकारों की स्थिति ऐसी हो कि दोनो में से किसी एक का निश्चय न हो सके।

किसी अलंकार की किसी स्थान पर स्थिति के संबंध मे साधक और बाधक कारणों को देखना चाहिए। यदि किसी अलंकार की स्थिति मे साधक कारण है और अन्य अलंकारो की स्थिति मे बाधक कारण भी है, तो वही अलंकार होगा जिसके लिए साधक हेतु प्रस्तुत हैं। पर यदि किसी अलंकार के साधक कारण तो हैं पर उसी अंश मे दूसरे अलंकार की स्थिति मे बाधक कारण नहीं है तो दोनों अलंकारो का संदेह होगा। वह भी हो सकता है और यह भी। एक ही अंश में दो अलंकार निश्चित रूप मे हो तो वह संदेह-संकर नहीं है, पर जैसे दिन और रात में से एक समय मे एक ही होगा उसी प्रकार यदि दो अलंकारो मे से किसी एक की निश्चयात्मक स्थिति का प्रमाण न हो तो 'संदेह-संकर' ही मानना पड़ेगा। वस्तुतः होना एक ही चाहिए, पर संदेह होता है कि माने किसे।

उदाहरण—(द्रुतविलंबित)

यदपि विश्व समस्त प्रपंच से।
पृथक-से रहते नित आप है।
पर कहाँ जन को जग त्राण है।
प्रभु गहे पद-पंकज के बिना॥

यहाँ 'पद-पंकज' शब्द में उपमा भी हो सकती है और रूपक

भी। दोनों का भेद जो पहले बताया जा चुका है (देखिए पीछे 'रूपक' की सूचना) उसके अनुसार भी क्रियापदों और विशेषणों का अन्वय दोनों पक्षों मे हो जाता है, इसलिए यहाँ दोनो अलंकारों का 'संदेह-संकर' है।

(३) <u>एकवाचकानुप्रवेश</u>—जहाँ एक ही पद में दो अलंकार पड़े हों।

इसके संबंध में लोग नृसिंह-न्याय का व्यवहार करते हैं। जिस प्रकार 'नृसिंह' में मनुष्य और सिंह दोनों के स्वरूप एक ही शरीर में दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार एक ही पद में स्पष्ट दो अलंकार होते हैं। ये चाहे एक शब्दालंकार हों चाहे दोनों अर्थालंकार चाहे एक शब्दालंकार हो और दूसरा अर्थालंकार।

उदाहरण—(कवित्त)

आते जो यहाँ है व्रजभूमि की छटा वे देख,
नेक न अघाते होते मोद-मद-माते हैं।
जिस ओर जाते उस ओर मन-भाए दृश्य,
लोचन लुभाते और चित्त को चुराते है।
पल-भर को वे अपने को भूल जाते सदा,
सुखद अतीत सुध-सिंधु मे समाते है।
जान पड़ता है उन्हें आज भी कन्हैया यहाँ,
मैया-मैया टेरते है गैया को चराते है॥

यहाँ 'सुध-सिंधु' मे अनुप्रास भी है और रूपक भी। दोनों एक ही पद में स्थित है।

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि ऊपर अलंकारो के जितने उदा-

हरण दिए गए हैं उनमें भी ससृष्टि और कहीं-कहीं संकर नामक उभया-लंकार हो सकते हैं, पर उन स्थानों पर केवल प्रधान अलंकारो का ही उल्लेख है। बात यह है कि काव्य-ग्रंथों में से किसी अलंकार का शुद्ध उदाहरण उपस्थित करना बहुत कठिन होता है। एक ही छंद में कई अलंकार होते हैं, पर जो अलंकार गौण हों उनका उल्लेख उदाहरण में नहीं किया जाता। यों तो अलंकार-निर्णय करते समय प्रधान और गौण सभी का उल्लेख होगा, पर उदाहरण में केवल मुख्य अलंकार का ही निर्देश करना उचित होता है। इसलिए यदि कही अधिक अलंकार दिखाई पड़ें तो चौंकना नहीं चाहिए, अन्य अलंकार वहाँ गौण होगे। जैसे अर्थालंकार के उदाहरणों में अनुप्रास बहुधा मिल जाता है।

षष्ठ प्रकाश

दोष

मुख्यार्थ की हीनता को दोष कहते हैं *।

कवि जिस अभिप्राय से कुछ लिखना या कहना चाहता है उस अभिप्रेतार्थ को 'मुख्यार्थ' कहते है। काव्य मे 'रस' मुख्य होता है पर कही-कही दोष नीरस काव्यो मे भी माने जाते है, इसलिए वहाँ पर 'मुख्यार्थ' शब्द नहीं लग सकता। अतः यह मानना पड़ता है कि जब वाच्यार्थ के आश्रय में ही रस होता है, तब वाच्य भी मुख्य हुआ। नीरस काव्य मे वाक्यार्थ के चमत्कार को क्षति पहुँचानेवाले कारण दोष माने जायँगे†।

---

* मुख्यार्थहतिर्दोषः।—काव्यप्रकाश।

† नीरसे त्वविलम्बितचमत्कारिवाक्यार्थप्रतीतिविघातका एव हेया।

—काव्यप्रदीप।

'हीनता' का तात्पर्य यह है कि मुख्यार्थ की प्रतीति मे बाधा पड़ती है। नीरस काव्यो में चमत्कार का विलंब से ज्ञान होना ही अर्थप्रतीति मे बाधा पड़ना है। इस प्रतीति मे तीन प्रकार से बाधाएँ उपस्थित होती है—(१) जहाँ प्रतीति होती ही नहीं, (२) जहाँ प्रतीति अत्यंत विलंब से होती है, (३) जहाँ प्रतीति तो होती है, पर रस का अपकर्ष होता है (रसयुक्त काव्य में) अथवा कथन मे रमणीयता नही होती (रसहीन काव्य मे)। अभिप्रेतार्थ की प्रतीति में क्षति कहीं तो सीधे होती है (जैसे रस-दोष मे) और कहीं सीधे नही होती, क्रम-प्राप्त होती है (जैसे शब्द-दोष या अर्थ-दोष मे)।

दोष के दो विभाग हो सकते हैं—(१) नित्य और (२) अनित्य। जिन दोषों का समर्थन 'अनुकरण' के अतिरिक्त और किसी प्रकार से नहीं हो सकता वे नित्य है। अनित्य दोष वे हैं जिनका (दोषोद्धार में) अन्य प्रकार से भी समर्थन किया जा सकता है।

मुख्यार्थ शब्द, अर्थ और रस के आश्रय द्वारा लक्षित होता है। इसीलिए दोप भी इनमे ही होगा। अतः तीन प्रकार के दोष हुए -(१) शब्दगत दोष, (२) अर्थगत दोप, और (३) रसगत दोप। इन्हीं को संक्षेप मे शब्द-दोष, अर्थ-दोष और रस-दोष कहते है। शब्द-दोष का विभाग इस प्रकार और हो सकता है—(१) पद-दोष, (२) पदांश-दोप और (३) वाक्य-दोष। पद-दोष से पदांश-दोष भिन्न है, क्योंकि पद-दोष संज्ञा आदि मे होता है और पदांश-दोप प्रत्यय, विभक्ति आदि में।
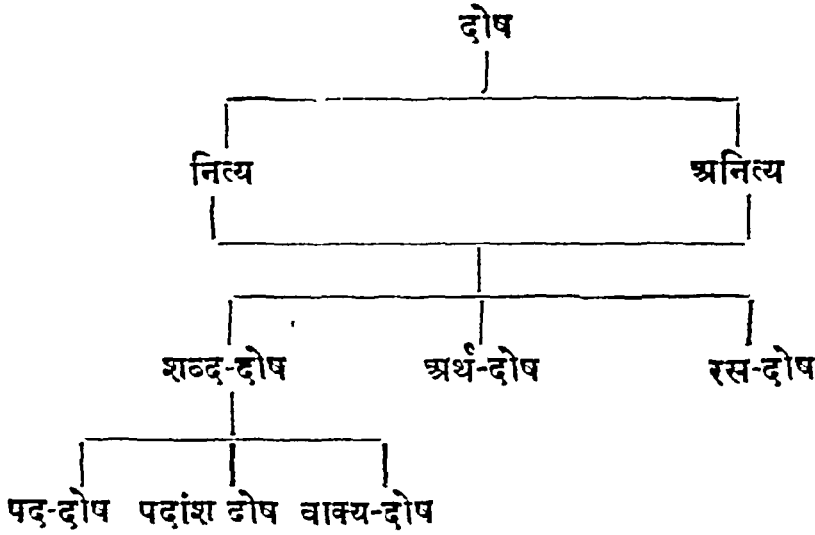
सूचना—अलकारगत दोष भी इन्हीं के अंतर्गत आ जाते हैं, इससे उन्हे भिन्न नहीं समझना चाहिए।

(१) शब्द-दोष

शब्दार्थ या वाक्यार्थ की प्रतीति के पहले जो दोष जान पड़ते हैं शब्द-दोप कहलाते है।

शब्द-दोप १६ प्रकार के होते है, जिनमे से कुछ गौण है और कुछ प्रधान। उन दोषो के नाम ये है—(१) श्रुतिकटु, (२) च्युतसंस्कृति, (३) अप्रयुक्त, (४) असमर्थ, (५) निहतार्थ (६) अनुचितार्थ, (७) निरर्थक, (८) अवाचक, (६) अश्लील (१०) संदिग्ध, (११) अप्रतीत, (१२) ग्राम्य, (१३) नेयार्थ, (१४) क्लिष्ट, (१५) अविमृष्टविधेयांश और (१६) विरुद्धमतिकृत्। इसमें से कविता में बहुधा दिखाई पड़नेवाले कुछ दोषों का वर्णन नीचे किया जाता है।

(१) श्रुतिकटु—कठोर वर्णों का रचना में प्रयुक्त होना श्रुतिकटु दोष है।

'श्रुतिकटु' शब्द का अर्थ है जो कानों को कड़ुआ (बुरा) जान पड़े अर्थात् खटके। कविता में कठोर वर्णों की रचना बुरी जान पड़ती है, कोमल-कांत-पदावली का प्रयोग अपेक्षित होता है।

उदाहरण—(हरिगीतिका)

जो इस विषय पर आज कुछ कहने चले हैं हम यहाँ।
क्या कुछ सजग होंगे सखे, उसको सुनेंगे जो जहाँ।
कवि के कठिनतर कर्म की करते नहीं हम धृष्टता।
पर क्या न विषयोत्कृष्टा[1] करती विचारोत्कृष्टता[2] ?

इसमें विषयोत्कृष्टता और विचारोत्कृष्टता शब्द कानों को खटकते है। इनका उच्चारण करने में भी जीभ को कष्ट जान पड़ता है।

सूचना—स्मरण रखना चाहिए कि शृंगार, शांत, करुण आदि कोमल रसों में ही अक्षरों की कठोर रचना दोष है। वीर, रौद्र आदि रसों में ऐसी वर्णरचना दोष न होकर गुण हो जाती है वहाँ तो कोमल शब्दों को रखना ही दोष होगा। यथा—

बक्र बक्र करि[3] पुच्छ करि, रुष्ट[4] रिच्छ[5] कपि गुच्छ[6]।
सुभट-ठट्ट[7] घन वट्ट[8] सम, मर्दहिं रच्छस[9] तुच्छ[10]

इस दोहे में वक्र आदि कठोर अक्षरोंवाले शब्दों का प्रयोग तो हुआ है पर वीर रस होने के कारण यह गुण है, दोष नहीं।

---

१ विषय की उत्तमता। २ विचार की उत्तमता। ३ मुख टेढ़ा करके। ४ क्रुद्ध। ५ भालु। ६ बंदरों का समूह। ७ वीरों का समूह। ८ बादलों की घटा। ९ राक्षस। १० निकृष्ट।

इसी प्रकार यदि बोलनेवाला या सुननेवाला ऐसा हो जो कठोर वर्णों का ही प्रयोग किया करता है (जैसे वैयाकरण) तो भी कोई दोष न होगा।

(२) च्युतसंस्कृति—व्याकरण के लक्षण के विरुद्ध रचना में च्युतसंस्कृति दोष होता है।

'च्युतसंस्कृति' शब्द का अर्थ है संस्कृति (व्यवहार या व्याकरण के लक्षण के अनुगमन) से च्युत (गिरा हुआ = हीन)।

उदाहरण—(वसंततिलका)

गत जब रजनी हो पूर्व-संध्या बनी हो।
उडुगण चय भी हों दीखते भी कहीं हों।
मृदुल मधुर निद्रा चाहता चित्त मेरा।
तब पिक करती तू शब्द प्रारंभ तेरा॥

इसमें हिंदी के व्याकरणानुसार 'तेरा' के स्थान पर 'अपना' होना चाहिए।

सूचना—गँवारी भाषा का यदि काव्य में व्यवहार हो तो उसमें यह दोष नहीं माना जायगा।

(३) अप्रयुक्त—जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जो कोश-व्याकरणादि से तो सिद्ध हो पर काव्य मे उनका प्रयोग न होता हो।

उदाहरण—(दोहा)

नक्त अँधेरी मैं जु कहुँ विहँसत मग मों लाल।
कूकत मुकता हेतु चलि, बरटा वर अरु बाल॥

इस दोहे में 'नक्त' शब्द रात के लिए और 'बरटा' शब्द

हंसिनी के लिए प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत-कोश से दोनों सिद्ध हैं। पर ब्रजभाषा में इनका प्रयोग नहीं देखा जाता।

सूचना—अनुकरण, यमक और श्लेष मे यह दोष न माना जायगा। इस दोष में शब्द व्याकरण-समत होता है और च्युतसंस्कृति में व्याकरण-विरुद्ध।

(४) असमर्थ—जिस अर्थ को प्रकट करने के लिए कोई शब्द रखा गया हो, उस अर्थ को प्रकट करने की उसमे शक्ति ही न हो।

उदाहरण—(दोहा)

सीय-स्वयंवर मैं जुरे, नरपति सुभग बिसाल।
धनु न टर्यो, बोल्यो निरखि, तब अनंग महिपाल॥

इस दोहे में 'अनंग' शब्द राजा जनक के लिये प्रयुक्त हुआ है। वे 'विदेह' थे। 'विदेह' शब्द के समानार्थ मे 'अनंग' शब्द का प्रयोग हुआ है। पर यह 'अनंग' शब्द कामदेव का बोधक है, इसलिए यहाँ पर असमर्थ दोष होगा।

सूचना—अप्रयुक्त दोष में शब्द का प्रयोग स्वच्छंद होता है, असमर्थ में कुछ विशेष शर्तों के कारण वैसा प्रयोग अनुचित होता है। दूसरे एकार्थवाची शब्दो में ही अप्रयुक्त दोष होता है और असमर्थ अनेकार्थवाची शब्दो मे। अप्रयुक्त में अर्थ किसी से दबता नही, पर असमर्थ में अभिप्रेत अर्थ दब जाता है।

(५) निहतार्थ—जिस शब्द के दो अर्थ होते हों उसे अप्रसिद्ध अर्थ में प्रयुक्त करना।

उदाहरण—(दोहा)

चपला यह रहिहै नहीं, देखु हरिहि चित लाय।
यहि मकरध्वज तरन कौं, नाहिन और उपाय॥

यहाँ चपला और मकरध्वज शब्द लक्ष्मी और समुद्र अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं, पर यह इन शब्दों का अप्रसिद्ध अर्थ है। देखते ही बिजली और कामदेव अर्थ प्रतीत होते हैं।

सूचना—अप्रयुक्त दोष एकार्थी शब्दों में होता है और निहतार्थ अनेक अर्थवाले शब्दों में। पहला श्लेष और यमकादि के अतिरिक्त और कहीं सार्थक नहीं होगा, पर दूसरा अन्यत्र भी प्रयुक्त हो सकता है। असमर्थ में अर्थ की प्रतीति ही नहीं होती और निहतार्थ में प्रतीति देर से होती है। पहला प्रयोगाभाव से दोष होता है और दूसरा बिरल प्रयोग के कारण। पहले में जो अर्थ दूसरे अर्थ को दबाता है उसका संबंध वाक्य में कहीं नहीं होता और दूसरे में संबंध रहता है।

(६) <u>अनुचितार्थ</u>—जहाँ ऐसा शब्द प्रयुक्त किया गया हो जो अभीष्ट अर्थ का तिरस्कार करता हो।

उदाहरण—(दोहा)

कदम-डार विहरत विहँसि, बाल निरखि नँदलाल।
उझकि आज इत-उत झकत, बानर-सम ततकाल॥

यहाँ श्रीकृष्ण (नायक) की उपमा बानर से देना अनुचितार्थ। श्रीकृष्ण का झाँकना कौतूहल-वश है, प्रकृतिस्थ दुर्गुण के कारण नहीं।

(७) <u>निरर्थक</u>—जहाँ छंद की पूर्ति के लिए अनावश्यक शब्द रख दिया गया हो।

उदाहरण—(पीयूषवर्ष)

दास बनने का बहाना किसलिए?
क्या मुझे दासी कहाना, इसलिए?
देव होकर तुम सदा मेरे रहो—
और देवी ही मुझे रखो, अहो!

इस छंद मे 'अहो' शब्द निरर्थक है। इसे संबोधन में अथवा आश्चर्य के द्योतक रूप में भी गृहीत नही कर सकते।

सूचना—यमक, श्लेष आदि मे यह दोष नहीं होगा।

(८) अश्लील—जहाँ लज्जासूचक, घृणा-प्रदर्शक अथवा अमंगलवाची शब्द का प्रयोग हो।

उदाहरण—(दोहा)

बौरे चूतन[1] रंग मैं, हलि-हलि अलि झगरैल।
अंतक-दिन[2] बर बिहरिहौ. लखि न भौर यह सैल॥

इस दोहे में 'चूत' शब्द लज्जा-सूचक, 'हलि-हलि' घृणोत्पादक और 'अंतक' (यम) अमंगलवाची है।

सूचना—शांत रस में जुगुप्सा, शृंगार में अश्लीलता और भविष्य-अमगल-सूचन मे आचार्यों ने यह दोष नहीं माना है।

(९) अप्रतीत—जहाँ ऐसे शब्द का प्रयोग हो जो किसी विशेष शास्त्र का पारिभाषिक शब्द हो और लोक मे अप्रसिद्ध हो।

उदाहरण—(दोहा)

तत्त्वज्ञान की ज्योति सों, भो आसय को नास।
करम किएहूँ परै नहिं, ताके कबहूँ फाँस॥

यहाँ 'आशय' शब्द का अर्थ है 'शुभ-अशुभ कर्मों से उत्पन्न वासना का संस्कार'। यह शब्द योगशास्त्र में ही इस अर्थ में प्रयुक्त होता है, इससे यहाँ अप्रतीत दोष है।

सूचना—विशिष्ट शास्त्रो के पंडित वक्ता के स्वगत-कथन में यह दोप नहीं होगा। अप्रयुक्त और अप्रतीत में अंतर यह है कि पहले में जानकार और न जाननेवाले दोनो को अर्थ की प्रतीति नही होती। पर दूसरे में

---

१ आम। २ अतिम दिन (आखिरकार)।

जानकार को अर्थ की प्रतीति हो जाती है। पहले में शब्द कोश में प्रसिद्ध रहता है, पर दूसरे में (विशिष्ट शास्त्र का पारिभाषिक शब्द होने के कारण) कोश में प्रसिद्ध नहीं होता।

(१०) ग्राम्य—जहाँ केवल लोकव्यवहार (ग्रामों) में ही चलनेवाले (काव्य में नहीं) शब्दों का प्रयोग किया जाय।

उदाहरण—(बरवै)

करिया फरिया[1] पहिरे, कुरता लाल।
गुजरी[2] गोड़[3] सु गुजरी,[4] चमकी[5] चाल॥

यहाँ पर करिया-फरिया, कुरता, गुजरी, गोड़ और चमकी शब्द ग्राम्य हैं।

सूचना—संस्कृत-साहित्य में 'कटि' शब्द ग्राम्य कहा गया है। एक महाशय ने सलाह दी है कि "हिंदी में 'कमर' शब्द को ग्राम्य मान सकते हैं।" उन्होंने 'गाल' शब्द को भी ग्राम्य कहा है। काल के गाल में जाना, गाल बजाना आदि मुहावरे अतिप्रचलित है। ऐसी दशा में 'गाल' को ग्राम्य मानना ठीक न होगा। ग्रामीण वक्ता की उक्ति में यह दोष नही माना जायगा।

(११) क्लिष्ट—जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिनका अर्थ बड़ी कठिनता से जाना जाय।

उदाहरण—(दोहा)

खग-पति पति-तिय-पितु-बधू-जल-समान तुव बैन।
हंस-बाहिनी-पति-पिता-दल-समान है नैन॥

खग = पक्षी + पति = उसका स्वामी गरुड़ + पति = उसका

---

१ काला लहँगा। २ पैर में पहनने का एक गहना। ३ पैर। ४ ग्वालिन। ५ मटकवाली।

स्वामी विष्णु + तिय = उसकी स्त्री लक्ष्मी + पितु = उसका पिता समुद्र + वधू = उसकी पत्नी गंगा। इस प्रकार गंगा-जल अर्थ बड़ी देर मे ज्ञात होता है। इसी प्रकार दूसरी पंक्ति में भी हंसवाहिनी = सरस्वती + पति = ब्रह्मा + पिता = कमल।

सूचना—ऊपर जिन १६ शब्द-दोषों का नाम गिनाया गया है उनमें से क्लिष्ट, अविमृष्टविधेयांश और विरुद्धमतिकृत् समास में होने के कारण दोष होते हैं। यदि भिन्न-भिन्न शब्दों में रहने पर भी इसी प्रकार का दोष हो तो वह वाक्य-दोष होगा, शब्द-दोष नही। क्लिष्ट दोष प्रहेलिका और श्लेष में नही माना जाता।

उक्त १६ दोषो में से क्लिष्टादि तीन को छोड़ देने से शब्दगत केवल १३ दोष हुए। ये वाक्य में भी होते हैं, इसलिए २६ हुए। १६ समास-गत हुए। पदांश-दोष ७ ही होते है (श्रुतिकटु, निहतार्थ, निरर्थक, अवाचक, अश्लील, संदिग्ध, नेयार्थ)। इसलिए कुल मिलाकर ४९ शब्दगत दोष हुए। इनके अतिरिक्त २१ शब्द-दोष ऐसे होते हैं जो केवल वाक्यगत ही होते हैं। इसलिए सब दोष ७० हुए।

वाक्य-दोष

वाक्यार्थ की प्रतीति के पहले जो दोष जान पड़ते है वे वाक्य-दोष कहलाते है।

ऊपर जिन १६ शब्द-दोषो का नाम लिया गया है वे वाक्य में भी होते है। पर निम्नलिखित दोष केवल वाक्य मे होते हैं—(१) प्रतिकूलवर्ण, (२) उपहतविसर्ग, (३) लुप्तविसर्ग, (४) विसंधि, (५) हतवृत्त, (६) न्यूनपद, (७) अधिकपद, (८) कथितपद, (९) पतत्प्रकर्ष, (१०) समाप्तपुनरात्त, (११) अर्थातरैकवाचक, (१२) अभवन्मत

योग, (१३) अनभिहितवाच्य, (१४) अस्थानस्थ पद, (१५) अस्थानस्थ समास, (१६) संकीर्ण, (१७) गर्भित, (१८) प्रसिद्धिहत, (१९) भग्न-प्रक्रम, (२०) अक्रम (२१) अमत-परार्थ। इन दोषो में से कुछ दोष जैसे उपहतविसर्ग, लुप्तविसर्ग आदि हिंदी मे नहीं हो सकते, क्योकि हिंदी में विसर्ग का झमेला नहीं है। शेष दोषो मे से भी बहुत से दोष प्रायः लक्ष्य-ग्रंथों में नहीं दिखाई पड़ते। जो दोष बहुधा हो जाया करते हैं उनका नीचे उल्लेख किया जाता है।

(१) प्रतिकूलवर्ण—जहाँ रस के अनुकूल वर्णों के विपरीत वाक्य-रचना हो।

उदाहरण—(सवैया)

सब जाति फटी दुख की दुपटी[1] कपटी न रहै जहँ एक घटी[2]।
निघटी रुचि[3] मीचु घटीहूँ घटी जग जीव-जतीन की छूटी तटी[4]।
अघ-ओघ की वेरी[5] कटी बिकटी निकटी[6] प्रकटी गुरु ज्ञान-गटी[7]।
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति-नटी गुन-धूरजटी[8] वन-पंचवटी॥

यहाँ लक्ष्मण की उक्ति में प्रकृति की शोभा के प्रति जो अनुराग भाव है उसके प्रतिकूल 'टकार' युक्त शब्दों का प्रयोग दोष है।

सूचना—यदि तीन-चार ही 'ट' होते और अनुप्रास की लपेट में न होकर फुटकल रूप में यत्र-तत्र पडे होते तो दोष न होता। श्रुतिकटु में केवल एक अक्षर से भी दोष हो सकता है। इससे कई अक्षरों के आने से दोष होता है। यदि रौद्र आदि उग्र रसो में कोमल वर्ण होंगे तो दोष होगा।

---

१ दुपट्टा। २ घड़ी। ३ मृत्यु की इच्छा घट जाती है। ४ समाधि। ५ पापों के समूह की वेड़ी। ६ निकट आने पर। ७ गठरी। ८ महादेव।

(२) <u>हतवृत्त या छंदोभंग</u>—जहाँ छंदों का प्रवाह दूषित हो, उसमें यति का निर्वाह न किया गया हो तथा रस के अनुकूल छंदो का प्रयोग न हो।

इसके चार प्रकार हो सकते हैं—(१) जहाँ लक्षण से ठीक होने पर भी छंद का प्रवाह ठीक न हो, (२) चरणांत में ऐसा लघु वर्ण हो जो दीर्घ होने की आवश्यकता को पूर्ण न कर सके, (३) छंदों की यति ठीक स्थान में न लग सके अथवा एक चरण का शब्द टूटकर दूसरे चरण में चला गया हो और (४) रस के अनुकूल छंदो का प्रयोग न किया गया हो। स्मरण रखना चाहिए कि दूसरे प्रकार का दोष हिंदी में कम संभव है। यह प्रायः वर्णवृत्तो में होता है और हिंदी मे वर्ण-वृत्त कम प्रयुक्त होते है। संस्कृत मे वसंततिलका, इंद्रवज्रा आदि के प्रथम चरण के अंत का लघु वर्ण गुरु वर्ण मान लिया जाता है, वहाँ दोष न होगा। हिंदी में भी जहाँ इन छदो का प्रयोग हुआ है, वही नियम लग जायगा।

गतिभंग

उदाहरण—(कवित्त)

एक प्रभुता को धाम, सजे तीनौ वेद काम,
रहैं पंच-आनन पड़ानन सरबदा।
सातौ बार आठौ जाम जाचक नेवाजै नव,
अवतार थिर राजै कृपान हरिगदा।
सिवराज 'भूषन' अटल रहै तौ लौं,
जौ लौं त्रिदस भुवन सब गंग औ नरमदा।
साहितनै साहसिक भौंसिला सुरज-वंस,
दासरथि राज तौ लौ सरजा थिर सदा॥

यह मनहरण कबित्त है। इसके प्रत्येक चरण में १६ और १५ के विराम से ३१ अक्षर होते हैं। इस कबित्त में लक्षण तो ठीक घट जाता है, पर प्रत्येक चरण का उत्तरार्ध प्रवाह से हीन है। विशेषत: दूसरे और चौथे चरण का उत्तरार्ध एकदम प्रवाहहीन है।

यतिभंग

उदाहरण—(दोहा)

दोउ समाज निमिराज रघु,-राज नहाने प्रात।
बैठे सब बट-बिटप-तर, मन मलीन कृसगात॥

यहाँ 'रघुराज' शब्द दोहे के पहले और दूसरे चरणों मे कटकर लगता है, 'रघु' एक ओर रह जाता है और 'राज' दूसरी ओर चला जाता है।

रस-प्रतिकूल

करुण रस में मंदाक्रांता आदि, शृंगार में स्रग्धरा आदि और वीर में शिखरिणी, शार्दूलविक्रीड़ित आदि छंद अनुकूल हैं। प्रतिकूल का वर्णन दोष होगा। जैसे, बरवै मे वीर रस, अमृत-ध्वनि में शृंगार आदि कोमल रस।

(३) न्यूनपद—जहाँ वास्तविक अर्थ को प्रकट करनेवाले शब्दों की कमी हो।

उदाहरण—(दोहा)

राज तिहारे खड्ग ते, प्रगट भयो जस-फूल।
दान देइ सीचत सदा, भिक्षुकगन को मूल॥

यहाँ पहले खड्ग (तलवार) को 'लता' कहना चाहिए था तब यश को फूल कहने से वास्तविक अर्थ स्पष्ट होता।

इसी प्रकार दान को सरिता या जल कहने से भिक्षुकों का जड़ को सींचना सार्थक होगा। इसलिए यहाँ शब्दों की कमी है।

(४) अधिक-पद—जहाँ ऐसे शब्द भी पड़े हों जिनकी वाच्यार्थ में आवश्यकता न हो।

उदाहरण (दोहा)

कीरति-हंसिनि कौमदी-लौं फैली तुव राज।
डसै तिहारे सत्रु को, खड्गलता-अहिराज॥

यहाँ पहली पंक्ति मे 'हंसिनी' शब्द और दूसरी पंक्ति मे 'लता' शब्द अधिक है। 'कीर्ति-कौमुदी' और 'खड्ग-अहिराज' से काम चल जाता है।

(५) कथित-पद—जहाँ बिना प्रयोजन के एक अर्थवाले शब्द आगे-पीछे पड़े हो।

उदाहरण—(दोहा)

स्याम गात पर पीत-पट, स्याम करन मैं बेनु।
स्याम बदन पै मोर को मुकुट, चरावत धेनु॥

यहाँ तीन बार 'श्याम' शब्द एक ही अर्थ में निष्प्रयोजन प्रयुक्त हुआ है।

सूचना—कुछ अलंकारो (लाटानुप्रासादि) में भी दोहरे शब्द प्रयुक्त होते हैं, पर वहाँ चमत्कार होता है, शब्द व्यर्थ नहीं आते।

(६) पतत्प्रकर्ष—जहाँ किसी अलंकार या किसी रचना की उत्कृष्टता का निर्वाह न हो सके अर्थात् जहाँ पहले कोई उत्कृष्टता-सूचक बात कह लेने पर एक ऐसी बात कह दी जाय जो उसकी हीनता प्रकट करे।

उदाहरण—(रोला)

तिमिर-ग्रसित सब लोक-ओक-दुख देखि दयाकर।
प्रगट कियो अद्भुत-प्रभाव भागवत-विभाकर।
जे सँसार-अँधियार-अगर[1] मै भए मगन बर।
तिन हित अद्भुत दीप प्रगट कीनो जु कृपाकर॥

यहाँ श्रीमद्भागवत को पहले 'विभाकर' (सूर्य) कहकर फिर 'दीप' कहना पतत्प्रकर्ष है।

(७) समाप्तपुनरात्त—जहाँ वाक्य समाप्त हो जाने पर भी उससे संबंध रखनेवाले शब्द रह जायँ।

उदाहरण—(दोहा)

डाभ बचाए पग धरौ, ओढ़ौ पट अति छाम[2]।
सियहिं सिखावैं बाम सब, बिरमहु मग के ग्राम॥

यहाँ 'बाम सब' पर वाक्य समाप्त हो गया, 'बिरमहु' आदि पद उसके बाद पड़े हुए हैं, जो इसी से संबद्ध हैं। अतः दोष है।

(८) प्रसिद्धि-हत—जहाँ कवि-संप्रदाय में प्रसिद्ध परंपरा के विरुद्ध किसी शब्द का प्रयोग किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

नाचि रहे तरु पर हरे, लहि सुभ दच्छिन पौन।
गावत कोकिल रँग-भरे, छावत छवि ऋतुरौन[3]॥

यहाँ कोकिलों का नाचना-गाना कवि-संप्रदाय-विरुद्ध है।

सूचना—अप्रयुक्त दोष में शब्द के प्रयोग का सर्वथा निषेध होता है। यहाँ शब्द कवि-संप्रदाय के विरुद्ध पड़ता है। जैसे, कवि संप्रदाय

---

१ आगार, घर। २ क्षाम, पतला, महीन। ३ ऋतुरमण, वसंत।

में पक्षियों के लिए कूजना, भौंरों के लिए गूँजना, बादलों के लिए गर्जना प्रसिद्ध है। इसके विरुद्ध कहना प्रसिद्ध-हत दोष है।

(६) भग्न-प्रक्रम—जहाँ उपक्रम और उपसंहार का मिलान न किया जाय। अर्थात् पहले जिस ढंग से बात कही गई है वह ढंग आगे टूट जाय।

उदाहरण (दोहा)

सचिव, बैद, गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय-आस।
राज, धर्म, तनु तीन कर होइ बेगि ही नास॥

यहाँ सचिव (मंत्री), वैद (वैद्य) और गुरु के क्रम से राज, तनु और धर्म कहना चाहिए था, पर ऐसा नहीं है।

सूचना—यहाँ जो उदाहरण दिया गया है उसमें क्रमपूर्वक कही जानेवाली वस्तुओं का क्रम आगे चलकर ठीक नहीं रह गया है। इसी प्रकार जहाँ किसी वाक्य में पहले भूतकाल, पीछे वर्तमान काल; कहीं एक वचन और कहीं बहुवचन; कहीं 'तुम' और कहीं 'आप' आदि का प्रयोग मिले वहाँ भी 'भग्न प्रक्रम' ही समझना चाहिए।

(१०) अक्रम—जिस शब्द के अनंतर जो शब्द आना चाहिए उस शब्द का अन्यत्र रख देना अक्रम दोष है।

उदाहरण—(दोहा)

बंसी सुंदर बट जितै, कान्ह चरावत धेनु।
लकुटी इक कर मै लिए, मगन बजावत वेनु॥

यहाँ 'बंसी सुंदर बट' के स्थान पर 'सुंदर बंसीबट' होना चाहिए।

(२) अर्थ-दोष

जहाँ कविता में ऐसे अर्थ का प्रयोग हो जो अभीष्ट तात्पर्य का पोषक न हो।

अर्थ-दोष २३ प्रकार के हैं—(१) अपुष्ट, (२) कष्ट, (३) व्याहत, (४) पुनरुक्त, (५) दुष्क्रम, (६) ग्राम्य, (७) संदिग्ध, (८) निर्हेतु, (९) प्रसिद्धि-विरुद्ध, (१०) विद्या-विरुद्ध, (११) अनवीकृत, (१२) सनियम-परिवृत्त, (१३) अनियम-परिवृत्त, (१४) विशेष-परिवृत्त, (१५) अविशेष-परिवृत्त, (१६) साकांक्ष, (१७) अपदयुक्त, (१८) सहचरभिन्न, (१९) प्रकाशितविरुद्ध, (२०) विध्ययुक्त, (२१) अनुवादायुक्त, (२२) त्यक्तपुनःस्वीकृत, (२३) अश्लील। इनमे से बहुधा देखे जानेवाले दोषो का वर्णन नीचे किया जाता है।

(१) अपुष्ट—जहाँ ऐसे विशेषणों का प्रयोग हो जिनके न रहने से भी अर्थ को कोई क्षति न पहुँचती हो।

उदाहरण—(दोहा)

उयो अति बड़े गगन मैं, उज्जल चारु मयंक।
मान मानिनी मोचिबे हेतु, मनहु इक-अंक॥

यहाँ 'अति बड़े' और 'उज्जल' शब्दो के न रहने से भी अर्थ को क्षति नहीं पहुँचती। अतः ये व्यर्थ है।

सूचना—पूर्वोक्त अधिकपद नामक शब्द-दोष की व्यर्थता पदो का अन्वय करते ही ज्ञात हो जाती है, पर इस दोष की व्यर्थता अन्वय के समय नही ज्ञात होती, अर्थ करते समय जान पडती है।

(२) कष्ट—जहाँ अर्थ का ज्ञान बड़ी कठिनता से हो।

उदाहरण—(सवैया)

कल काव्य के व्योम मे है बहती जो सरस्वती शुभ्र सुधा से भरी।
मल दूर हटा, पथ शुद्ध करे, क्षण मे करके हिय-भूमि हरी।

उसकी मधुता, मृदुता, शुचिता, मन-मोदकरी उसकी लहरी।
लख कैसे सकें वे भला उसको बस देख सके जो घटा घहरी॥

यहाँ कविजी का भाव यह है कि काव्याकाश में मेरी सरस्वती सुधा से युक्त होकर बहती है और अन्य कवियों की वाणी मेघ-तुल्य है अर्थात् मेरी कविता औरों से बढ़कर है। जिन्होंने उन साधारण कवियों की ही कविता देखी है वे मेरी कविता का आनंद क्या लूट सकेंगे। इस अर्थ का बोध बड़े कष्ट से होता है।

सूचना—क्लिष्ट नामक शब्द-दोष के शब्द बदल देने से दोष दूर हो जाता है, पर इस दोष में पर्यायवाची शब्द रखने पर भी दोष बना रहता है।

(३) व्याहत—जहाँ किसी वस्तु का उत्कर्ष कहकर हीनता कहे या हीनता कहकर उत्कर्ष कहे।

'व्याहत' शब्द का अर्थ है 'विशेष रूप से घायल'। इस दोष में पूर्वकथित बात उत्तरकथित बात से बिगड़ जाती है। इसी से इसे 'व्याहत' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

चंद्रमुखी के बदन-सम, हिमकर कह्यो न जाय।
कमलदृगी के नैन-सम, कंज न एकौ भाय॥

यहाँ चंद्रमुखी कहकर फिर चंद्रमा को उसके मुख-सम न कहना व्याहत दोष है। इसी प्रकार दूसरे चरण में भी समझना चाहिए।

(४) पुनरुक्त—जहाँ एक बार कहा हुआ अर्थ फिर से प्रयुक्त हो।

उदाहरण—(द्रुतविलंबित)

क्वणित मंजु-विषाण हुए कई,
रणित शृंग हुए बहु साथ ही।
फिर समाहित[1] प्रांतर भाग में,
सुन पड़ा स्वर धावित धेनु का ॥

यहाँ विषाण और शृंग का एक ही अर्थ है इसलिए पहली पंक्ति दूसरी पंक्ति के रूप मे पुनरुक्त है।

(५) दुष्क्रम—जहाँ लोक और शास्त्र-विहित क्रम का उल्लंघन हो।

उदाहरण—(सवैया)

लीन्हो उखारि पहार बिसाल चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो।
मारुतनंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो।
तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यो धुकि धायो ॥

यहाँ 'मन को' शब्द सबसे पीछे होना चाहिए, क्योंकि मन का वेग (खगराज के वेग से) बहुत अधिक माना गया है।

(६) संदिग्ध—जहाँ कोई निश्चित अर्थ न किया जा सके।

उदाहरण—(दोहा)

लै कर मै लेखिनि ललित, प्रगटि स्वकला अछेह।
केहि कारन कामिनि लिख्यो, सिवमूरति निज गेह ॥

यदि कहा जाय कि काम के डर से शिव की मूर्ति बनाई तो भी निश्चय नहीं। संभव है पूजनादि के लिए उसकी रचना की गई हो।

---

१ शात।

(७) प्रसिद्ध-विरुद्ध—जहाँ लोक या कवि-संप्रदाय में अप्रसिद्ध बात का वर्णन हो।

उदाहरण—(दोहा)

मार-कटार-सरिस दिपै घन मैं बिज्जु बिलास।
दहकत आग-समान है, इंद्रबधू सहुलास॥

यहाँ 'कामदेव की तलवार' कवि-संप्रदाय में अप्रसिद्ध है। काम का धनुष-बाण ही प्रसिद्ध है।

(८) विद्या-विरुद्ध—जहाँ शास्त्र से विरुद्ध बात कहा जाय।

पूजौ तीनौ बर्न जग, करि बिप्रन सों भेद।
पुनि लीन्हो उपबीत तुम, पढ़ि लीजै सब वेद॥

यहाँ ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य तीन वर्णों (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) का पूजन और वेदाध्ययन करने पर यज्ञोपवीत धारण करना शास्त्रविरुद्ध है।

सूचना—इसी प्रकार अन्य शास्त्रों—योगशास्त्र, कामशास्त्र आदि—के विरुद्ध बातें लिखना भी यही दोष होगा।

(९) साकांक्ष—जहाँ किसी और पद की आकांक्षा रह जाय वहाँ यह दोष होता है।

उदाहरण—(दोहा)

परम बिरागी चित्त निज, पुनि देवन को काम।
जननी-रुचि पुनि पितु-बचन, क्यों तजिहै बन राम॥

'तजिहै' के पहले 'जाइबो' (जाना) शब्द की आवश्यकता है।

(१०) सहचरभिन्न—जहाँ सजातीय वस्तुओं के बीच विजातीय वस्तु का भी उल्लेख हो। यहाँ 'विजातीय' का भाव यह है कि उत्कृष्ट के साथ अपकृष्ट भी वर्णित हो।

उदाहरण—(दोहा)

निसि ससि सो जल कमल सों, मूढ़ व्यसन सों मित्त ।
गज मद सो नृप तेज सों, सोभा पावत नित्त ॥

यहाँ 'मूढ़ व्यसन सो' विजातीय है ।

(३) रस-दोष

जहाँ मुख्यार्थ द्वारा जिस रस की प्रतीति होती हो उसमें बाधा उपस्थित हो ।

ऊपर जो दोष कहे गए है वे भी रस-प्रतीति मे यथास्थान बाधक होते है, पर वे परोक्ष रूप से बाधक होते है और ये दोष साक्षात् (सीधे) रस का विरोध करते है। रस-दोष १० प्रकार के होते है—

(१) स्वशब्दवाच्यता अर्थात् रस, स्थायी भाव और संचारी भावो को उन्हीं के वाचक शब्दों मे प्रकट करना, (२) विभावानुभाव की कष्ट कल्पना से व्यक्ति अर्थात् विभाव अथवा अनुभाव का पता बहुत कठिनाई से और देर मे लगे, (३) प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण अर्थात् जिस रस मे जो विभाव होता है उसके विरुद्ध विभाव का वर्णन हो जाय, (४) पुनर्दीप्ति अर्थात् किसी रस को बारंबार उद्दीप्त करना, (५) अकांड-प्रथन अर्थात् असमय मे किसी रस का विस्तार दिखाना, (६) अकांड-छेदन अर्थात् असमय मे रसादि का भंग हो जाना, (७) अंग-विस्तार अर्थात् किसी अप्रधान रस को बहुत अधिक बढ़ा देना, (८) अंगी का अननुसंधान अर्थात् रस के आलंबन नायक आदि को भूल बैठना (९) प्रकृतियों का विपर्यय अर्थात् नायक आदि की जो प्रकृतियाँ बतलाई गई है (देखिए द्वितीय प्रकाश) उनके स्वभाव के अनुरूप

उनका वर्णन न करना और (१०) अनंग का अभिधान अर्थात् जो वर्णन का अंग नहीं है—उसके लिए उपयोगी नहीं है—उसका वर्णन करना। इन दोषों में से पीछेवाले ७ दोष (पुनर्दीप्ति से अनंग के वर्णन तक) प्रबंधगत दोष कहे जाते है, प्रकीर्ण काव्य में इनकी संभावना कम है। इसलिए प्रबंधगत दोषों को छोड़कर शेष का उल्लेख नीचे किया जाता है।

(१) स्वशब्दवाच्यता—ऊपर रस का वर्णन करते समय यह बताया जा चुका है कि भाव और रस व्यंग्य होते हैं। इसलिए वाच्य रूप में इनका वर्णन दोष होगा।

उदाहरण—(दोहा)

परशुराम ने जब किया, श्रीरघुनाथ-विरोध।
तब लक्ष्मण को आ गया, तुरत बड़ा ही क्रोध॥

सूचना—स्वशब्दवाच्यत्व दोष इसीलिए माना जाता है कि केवल शब्द कह देने से रस या भाव की प्रतीति नही होती। यदि ऊपर के उदाहरण में यह कहा गया होता कि लक्ष्मण के नेत्र लाल हो गए, ओठ फडकने लगे, भौंहे टेढी हो गई तो क्रोध की प्रतीति हो जाती। क्रोध का नाम लेने की आवश्यकता ही न पडती। इसी प्रकार यदि कहा जाय कि 'कैसा करुण दृश्य है' 'कैसा अद्भुत व्यापार है' आदि तो इससे करुण एवम् अद्भुत रस की प्रतीति न होगी। इसी प्रकार सचारी भावो को भी समझना चाहिए।'राम को बडा हर्ष हुआ, उन्हें बडी लज्जा आई' से कोई रूप सामने नही आता, पर 'उनका चेहरा खिल उठा और उनका सिर नीचा हो गया' से हर्ष और लज्जा का रूप सामने आ जाता है।

(२) विभावानुभाव की कठिनता से प्रतीति

उदाहरण—(दोहा)

हिमकर किरण पसारकर, जब देता आनंद।
तब वह हँसती, दृग नचा, खिल उठता मुखचंद्र॥

इस दोहे में नायिका आलंबन है और चंद्रमा उद्दीपन, पर नायक के प्रेम को प्रकट करनेवाले अनुभाव की प्रतीति बड़ी कठिनाई से होती है। नायक का लेख न होने से यह नहीं कहा जा सकता कि नायिका का हँसना, नेत्र नचाना आदि प्रेम के ही कारण है, वे प्रकृतिगत विलासमात्र भी हो सकते हैं।

(३) प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण

उदाहरण—(वीर)

मधु कहता है ब्रजवाले, उन पद-पद्मों का करके ध्यान।
जाओ जहाँ पुकार रहे हैं श्रीमधुसूदन मोद-निधान।
करो प्रेम-मधुपान शीघ्र ही यथासमय कर यत्न-विधान।
यौवन के सु रसाल-योग में कालरोग है अति बलवान॥

यहाँ 'काल-रोग' शब्द के द्वारा यह बतलाया गया है कि यौवन स्थिर नहीं रहेगा। इस प्रकार का कथन शांत रस में आलंबन (विभाव) होता है और यहाँ शृंगार रस का वर्णन है, इसलिए यह दोष है।

सूचना—ऊपर जितने दोष दिखाए गए हैं, वे यथास्थान दोष नहीं भी होते जिनका उल्लेख सूचनाओं में किया गया है। स्मरण रखना चाहिए कि अनुकरण कहीं भी दोष नहीं होता *। दोष का कारण अनौचित्य ही है, औचित्य को ध्यान में रखकर लिखी बात कभी दोष के अंतर्गत नहीं आ सकती †।

---

* अनुकारे च सर्वेषां दोषाणां नैव दोषता।—साहित्यदर्पण।

† अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम्।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा॥—ध्वन्यालोक।

सप्तम प्रकाश

गुण

काव्य में प्रधानभूत रस के धर्मो को गुण कहते है।*

जिस प्रकार शरीर मे आत्मा प्रधान है, उसी प्रकार काव्य मे रस प्रधान है। जिस प्रकार आत्मा का धर्म शूरत्व आदि हैं उसी प्रकार रस का धर्म गुण है। गुण रस के उत्कर्ष के कारण होते हैं और इनकी स्थिति अचल होती है†। अचल स्थिति का तात्पर्य यह है कि विना रस के इनकी स्थिति नहीं हो सकती और जब इनकी स्थिति हुई तो ये रस का उपकार अवश्य करेंगे।

---

* रसस्याङ्गित्वमानस्य धर्माः शौर्यादयो यथा।—साहित्यदर्पण।

† ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥—काव्यप्रकाश।

यद्यपि किसी विशेष वर्ण, शब्द या अर्थ में किसी गुण की स्थिति नहीं हो सकती, किंतु परंपरा-संबंध से इन्हें वर्णादि मे भी मान लिया जाता है क्योंकि इनकी व्यंजना शब्दार्थ के द्वारा होती ही है और शब्द अक्षरों से बने होते ही हैं।

यहीं पर अलंकार और गुण का अंतर भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है। अलंकार काव्य के बाह्य धर्म हैं और गुण आभ्यंतर। अलंकार उसके पोषक हो सकते है, पर सीधे उसके धर्म नहीं कहे जा सकते। इसके अतिरिक्त अलंकार बिना रस के भी हो सकते है, पर गुण बिना रस के नहीं रह सकते। प्राचीन आचार्यो ने गुण दस गुण माने थे—श्लेष, समाधि, औदार्य, अर्थव्यक्ति, कांति, सुकुमारता, समता, प्रसाद, माधुर्य और ओज। पर पीछे के आचार्य केवल माधुर्य, ओज और प्रसाद ये तीन ही गुण मानते है। इसका कारण यह है कि शेष सात गुणों में से कुछ तो दोषों के परिहार-स्वरूप होने से गुण मान लिए गए थे और कुछ का अंतर्भाव उपर्युक्त तीन गुणो मे ही हो जाता है। उदाहरण के लिए 'अर्थ-व्यक्ति' का लक्षण प्राचीन लोगों ने लिखा था कि जहाँ पदो का अर्थ झटपट खुल जाय वहाँ अर्थव्यक्ति होती है। यही लक्षण 'प्रसाद' का भी है अर्थात् शब्दो के सुनते ही उनका अर्थ तुरंत लग जाय। इसलिए अर्थव्यक्ति प्रसाद से भिन्न गुण नही है। दूसरा उदाहरण लीजिए। 'सुकुमारता' का लक्षण किया गया था कि जहाँ कठोरता न हो, शब्द कोमल हो, वहाँ यह गुण होगा। यह गुण श्रुतिकटु दोष का अभाव-मात्र है अर्थात् श्रुतिकटु दोष का न होना ही सुकुमारता है। इसके अतिरिक्त कुछ गुण ऐसे भी है जो वस्तुतः दोष थे, भ्रम से गुण मान लिए गए थे।

(१) माधुर्य

जहाँ ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म वर्णों द्वारा; ङ, ञ, ण, न, म से युक्त और अनुस्वारवाले अक्षरों की अधिकता से; रेफ और लंबे समासों को त्यागकर छोटे-छोटे समासों के व्यवहार से मधुर रचना की गई हो वहाँ 'माधुर्य' गुण माना जाता है।

इस गुण का प्रयोग शृंगार, करुण और शांत रसों में विशेषरूप से और हास्य एवम् अद्भुत मे सामान्यतः आवश्यक है।

उदाहरण—(कवित्त)

मंद-मंद चढ़ि चल्यौ चैत-निसि चंद चारु,
मंद-मंद चाँदनी पसारत[1] लतन ते।
मंद-मंद जमुना-तरंगिनि[2] हिलोरैं लेति,
मंद-मंद मोद[3] मंजु-मल्लिका-सुमन[4] ते।
'देव' कबि मंद-मंद सीतल सुगंध पौन[5],
देखि छबि छीजत मनोज छन-छन[6] ते।
मंद-मंद मुरली बजावत अधर धरे,
मंद-मद निकस्यौ मुकुंद[7] मधुबन ते॥

इस कबित्त में ऊपर कहे हुए मधुर एवम् सानुस्वार वर्णों की अधिकता है। शब्दों से माधुर्य टपका पड़ रहा है।

---

१ फैलाता है। २ नदी। ३ सुगंध। ४ बेले का फूल। ५ (पवन) वायु। ६ क्षण-क्षण की शोभा से कामदेव लज्जित होता है। ७ श्रीकृष्ण

(२) ओज

जहाँ द्वित्व वर्णों (क्क, च्च, ट्ट, त्त, प्प), संयुक्त वर्णों, (क्ख, ग्घ, च्छ, ड्ड, ड्ढ, त्थ, द्ध, प्फ, ब्भ), रेफ (र्क, र्च आदि) एवम् रकारयुक्त (क्र, द्र, प्र,) वर्णों, ट, ठ, ड, ढ से बने हुए शब्दों की अधिकता और लंबे - लंबे समासों द्वारा कविता की रचना की जाय, वहाँ 'ओज' गुण होता है।

यह गुण वीर एवम् रौद्र रसों मे विशेष रूप से तथा बीभत्स एवम् भयानक-रसो मे सामान्यतः आवश्यक होता है।

उदाहरण—(अमृतध्वनि)

दिल्लिय-दलन[१] दबाय करि, सिव सरजा[२] निरसंक।
लूटि लियो सूरति सहर, वंकक्करि अति डंक[३]।
वंकक्करि अति, डंकक्करि अस, संकक्कुलि खल[४]।
सोचच्चकित, भरोचच्चलिय, बिमोचच्चखजल[५]।
तट्ठट्ठइ मन[६] कट्ठट्ठिक सोइ[७] रट्ठट्ठिल्लिय[८]।
सद्दद्दिसिदिसि[९] भद्दद्दवि भइ रद्ददिल्लिय[१०]॥

इस छंद में भी 'ओज' गुण उत्पन्न करनेवाले पूर्वोक्त प्रकार के वर्णों द्वारा रचना की गई है।

---

१ दिल्ली की सेना को। २ शिवाजी की उपाधि। ३ डंके को अत्यंत वक (टेढ़ा) करके, जोर से नगाड़े बजाकर। ४ सब खल शंकित हो गए। ५ सोचते हुए और चकपकाकर आँखो से जल बहाते हुए भड़ोच की ओर चले। ६ वह बात मन में ठानकर। ७ उसे कठिनता से ठीक करके। ८ रटकर ठट्ट को ठेला। ९ सद्यः (तुरत) सब दिशाओ में। १० दिल्ली की भद्द हुई और वह दबकर रद्द (खराब नष्टभ्रष्ट) हो गई।

(३) प्रसाद

जहाँ सरल, सीधे-सादे, सुबोध शब्दों के द्वारा वाक्य-रचना की जाती है वहाँ 'प्रसाद' गुण होता है ।

इस गुण का उपयोग सभा रसों में हो सकता है। वस्तुतः माधुर्य और ओज गुण शब्दो से संबंध रखते है और प्रसाद गुण उनके अर्थ से संबंध रखता है। इसलिए इसका प्रयोग सभी रसो के लिए आवश्यक है।

उदाहरण—

उठो हिंदुओ अपने बल को सँभालो।
दशा हिंदी-भाषा की कुछ देखो-भालो।
जमाने के धक्कों से इसको बचा लो।
सपूती दिखा दो झपटकर उठा लो।
सहित-प्रेम छाती से इसको लगा लो।
हृदय के सिँहासन पै इसको बिठा लो ॥

इसमे सभी शब्द सरल और सुबोध है।

अष्टम प्रकाश

पिंगल

(१) पद्य और छंदशास्त्र

यों तो भावों को शब्द और अर्थ के द्वारा व्यक्त किया जाता है, पर उन्हें समन्वित रूप में व्यक्त करने की दो शैलियाँ हैं— गद्य और पद्य। गद्य व्याकरण के द्वारा शासित होता है और पद्य 'पिंगल' के द्वारा। कहना यह चाहिए कि 'पिंगल' पद्य का व्याकरण है। जिस प्रकार संस्कृत के प्रचलित व्याकरण का नाम उसके निर्माता पाणिनि के नाम पर पाणिनीय है उसी प्रकार पद्य के इस व्याकरण के बनानेवाले आचार्य पिंगल—जो शेष के अव- तार माने जाते हैं—के नाम पर ही इसका नाम 'पिंगल' है। यदि किसी ऋषि के नाम का आग्रह न हो तो सामान्य रूप में इसे

'छंदशास्त्र' कहा जायगा। 'छंद' शब्द का अर्थ है 'बंधन'। पद्य को रचने के लिए जिन-जिन बंधनों की आवश्यकता है उनका जिस शास्त्र मे यथावत् वर्णन हो उसे 'छंदशास्त्र' कहेंगे। 'पद्य' के पर्याय-रूप मे 'छंद' शब्द का भी व्यवहार होता है। 'पद्य' से 'छंद' शब्द अधिक व्यापक है। 'पद्य' का अर्थ होता है 'पद-संबंधी'। यह नियमबद्ध रचना के लिए रूढ़ हो गया है।

पद्य मे प्रवाह और विराम आदि का विचार बहुत आवश्यक है, गद्य में उसके लिए कोई नियमित नियत स्थान नहीं होता। इसी प्रकार पद्य में व्याकरण के नियम भरपूर नहीं लगते। कर्ता, कर्म, क्रिया आदि का इधर-उधर हो जाना कोई दोष नहीं है, पर इतने पर भी यह विचार रखना आवश्यक होता है कि शब्दावली के द्वारा कवि का जो अभिप्रेत है, वहाँ तक पाठक के पहुँचने में कोई बाधा तो नहीं पड़ती। यदि हेर-फेर के कारण कोई गड़बड़ी होगी तो वह दोप होगा, पीछे वाक्य-दोप गिनाते समय इसका उल्लेख दोपो मे हो चुका है।

छंदशास्त्र का प्रचार वेदों के समय से है। छंद वेदो के छह अंगो (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष) मे माना जाता है। इसके साथ ही कविता और संगीत का संबंध भी आरंभ से ही है और छंदशास्त्र नाद-सौंदर्य उत्पन्न करने के नियमों का ही शास्त्र है। छंदोबद्ध रचना कर्ण-सुखद और मुख-मधुर तो होती ही है, साथ ही स्मरण रखने के लिए इसमें सुगमता रहती है। यही कारण है कि कविता के अतिरिक्त छंद का व्यवहार अन्य विषयों (ज्योतिष, वैद्यक,

गणित आदि) में भी किया गया, क्योंकि पद्य या छंद में लिखा बहुत दिनों तक स्मरण रखा जा सकता है, गद्य में यह बात नही है।

(२) वर्ण और मात्रा

व्याकरण में मोटे रूप से प्रत्येक अक्षर अथवा वर्ण के दो रूप होते है—(१) ह्रस्व और (२) दीर्घ। जिन अक्षरों मे अ, इ, उ, ऋ स्वर हों वे ह्रस्व होते हैं और शेष दीर्घ। किसी वर्ण के उच्चारण मे जो समय लगता है उसका नाम 'मात्रा' है। ह्रस्व वर्ण के उच्चारण मे जो समय लगता है उसकी एक मात्रा मानी जाती है। दीर्घ वर्ण के उच्चारण में उससे दूना समय लगता है। इसलिए उसकी दो मात्राएँ हुई *। छंदशास्त्र मे ह्रस्व को 'लघु वर्ण' और दीर्घ को 'गुरु वर्ण' कहते हैं। इनके लिए संक्षिप्त रूप 'ल' और 'ग' रखा गया है। इन्हें व्यक्त करने के लिए दो रेखाएँ भी नियत है। लघु के लिए खड़ी रेखा (।) और गुरु के लिए वक्र रेखा (ऽ)।

ऊपर ह्रस्व और दीर्घ के लिए जिन स्वरों का निर्देश किया गया है उनके अतिरिक्त भी यथास्थान ह्रस्व और दीर्घ का होना पाया जाता है। इसके लिए नीचे लिखे नियमों को स्मरण रखना चाहिए—

(१) संयुक्त अक्षर के पहलेवाला अक्षर दीर्घ माना जायगा;

---

* एकमात्रो भवेद्ह्रस्वो द्विमात्रो द्विदीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रकम्॥

—श्रुतबोध।

जैसे - पथ्य। इसमे 'थ्य' संयुक्त वर्ण है इसलिए 'प' दीर्घ अर्थात् गुरु माना जायगा। जब संयुक्त के पहले लघु होता है तो वह दीर्घ हो जाता है; जब दीर्घ रहता है तब तो वह दीर्घ है ही। इसके अतिरिक्त जब दो शब्दों का समास होता है और उसमें दूसरे शब्द का प्रथम अक्षर संयुक्त वर्ण होता है तो वहाँ उसके पूर्व के लघु अक्षर को दीर्घ मान भी सकते है और नही भी; जैसे—राम-प्रताप। इसमे 'म' दीर्घ माना भी जा सकता है और नहीं भी।

कहीं-कहीं संयुक्त के पूर्व का वर्ण दीर्घ नहीं माना जाता; जैसे—कुम्हार, कुल्हाड़ी, उन्हें आदि। बात वस्तुतः यह है कि पढ़ने में जब संयुक्त वर्ण के पूर्व-वर्ण पर जोर पड़ता है तो वह दीर्घ हो जाता है। सभी स्थानो में यह नियम तो नहीं लगता, पर जिन संयुक्त अक्षरों की ध्वनि हिंदी में अशक्त हो गई है उनके पूर्व के वर्ण पर प्रायः जोर नही पड़ता; जैसे—म्ह, न्ह, ल्ह आदि। कोई 'सत्य' के 'त्य' को इस प्रकार नही पढ़ता कि 'त्य' का उच्चारण 'अशक्त' हो। हाँ, प्राचीन कविता मे इस प्रकार के बहुत से संयुक्त वर्ण मिलते है (न्य, ह्य, ठ्य आदि) और उनमे 'त्य' भी है; जैसे—'पत्याना'।

(२) अनुसार-युक्त वर्ण भी दीर्घ होता है; जैसे—संसार मे 'सं'। जहाँ अक्षर केवल सानुनासिक भर होता है वहाँ वह लघु ही रहेगा, जैसे लँगोटी मे 'लँ'। स्मरण रखना चाहिए कि हिंदी मे छापेवालों ने अपनी सुविधा के लिए मात्राओ मे चंद्रविंदु लगाने के स्थान पर अनुस्वार लगा रखा है। इसलिए भ्रम मे नहीं पड़ना चाहिए; जैसे 'नहिं' मे प्रायः 'अनुस्वार' ही छपता

है, पर होना चाहिए चंद्रबिंदु (नहिँ)। ऐसे स्थानों पर अनुस्वार सानुनासिकता का संकेत-मात्र है। इन्हें भी चंद्रबिंदुवाले वर्णों की ही तरह पढ़ना और मानना होगा।

(३) विसर्ग से युक्त वर्ण भी दीर्घ होता है ; जैसे—अतः में 'तः'।

(४) हलंत के पूर्व का वर्ण दीर्घ माना जाता है और हलंत की मात्रा नहीं गिनी जाती ; जैसे—श्रीमन् में 'म' दीर्घ है और 'न्' की मात्रा नहीं गिनी जायगी।

(५) छंद (वर्णवृत्त) के चरण के अंत मे आवश्यकता पड़ने पर ह्रस्व वर्ण भी दीर्घ मान लिया जायगा ; जैसे—

दुखित है धनहीन, धनी सुखी।
यह विचार परिष्कृत[1] है यदि।
मन, युधिष्ठिर को फिर क्यों हुई।
विभवता[2] भव-ताप-विधायिनी[3] ॥

यहाँ दूसरे चरण में 'यदि' का 'दि' अक्षर चरण के अंत मे होने से दीर्घ माना जा सकता है। इस छंद में प्रत्येक चरण के अंत का अक्षर दीर्घ होता है, यह शेष तीन चरणो के देखने से साफ लक्षित होता है। इसलिए 'यदि' का 'दि' भी दीर्घ ही माना जायगा, क्योंकि दीर्घ मानने की आवश्यकता है।*

सूचना—हिंदी की पुरानी कविता अर्थात् ब्रजी और अवधी की

---

१ ठीक। २ ऐश्वर्य। ३ सासारिक कष्ट देनेवाली।

* उक्त नियम सस्कृत के एक छंद मे इस प्रकार दिए गए है—

संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रम्।
विज्ञेयमक्षरं गुरुं पादान्तस्थं विकल्पेन ॥—श्रुतबोध।

कविता में दीर्घ वर्ण को ह्रस्व मानने का भी नियम है। यदि आजकल के ढंग से कहें तो कह सकते हैं कि इन भाषाओं में कुछ दीर्घ स्वरों का उच्चारण ह्रस्व भी होता है। ये दीर्घ स्वर हैं 'ए' और 'ओ' उदाहरण लीजिए—

व्रजी—

(१)

हरि कीजत तुम सों यहै, बिनती बार हजार।
जेहि तेहि भाँति डरो रहौं, परो रहौं दरबार॥

(२)

रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान-बिन।
जो बिष देइ बुलाय, मान-सहित मरिबो भलो॥

अवधी—

(१)

कहहिं परस्पर लोग लोगाई। बातैं सरल सनेह सोहाई।
ते पितु-मातु धन्य जिन्ह जाए। धन्य सो नगर जहाँ ते आए॥

(२)

गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा।
नागमती यह दुनिया-धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा॥

इधर जब से खड़ी बोली में सवैया छंद का प्रचार हुआ तब से इसमें भी दीर्घ को लघु पढने की व्यवस्था करनी ही पड़ा है। कुछ पहले जो लोग उर्दू छंदों का खड़ी बोली में व्यवहार करते थे उनमें तो यह प्रवृत्ति बहुत अधिक थी, क्योंकि उर्दू के छंद (बहर) भी एक प्रकार से वर्ण-वृत्त ही है, जो 'वजन' पर चलते हैं। स्मरण रखना चाहिए की खड़ी बोली में यह नियम वर्णवृत्तों में ही विशेष देख पड़ता है।

खड़ी बोली—

उर्दू बहर में

निज देश की उन्नति का है सब भार इन्हीं पर।
निज धर्म की रक्षा का है सब दार इन्हीं पर।
इन्कार इन्हीं पर है तो इकरार इन्ही पर।
इन ही पै रिआया भी है, सरकार इन्ही पर॥

वर्णवृत्त में

बन-बीच बसे थे फँसे थे ममत्व में एक कपोत-कपोती कहीं।
दिन रात न एक को दूसरा छोड़ता, ऐसे हिले-मिले दोनो वहीं।
बढ़ने लगा नित्य नया-नया नेह, नई-नई कामना होती रहीं।
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं॥

(३) छंदों के प्रकार

छंदो का प्रचार वैदिक काल से है, यह ऊपर कहा जा चुका है। वैदिक युग मे जिन छंदों का प्रचार था वे इधर की कविता में प्रचलित छंदो से एक प्रकार से अलग है। इसलिए काव्यो मे जिन छंदों का प्रयोग होता है, उन्हें 'लौकिक' कह सकते है। इन लौकिक छदो मे वर्ण और मात्रा के विचार से छंदो के मोटे-मोटे दो भेद हो सकते है—मात्रिक और वर्णिक। मात्रिक छंद वे हैं जिनमे अक्षरों की मात्राओ के अनुसार नियम निर्धारित हो और वर्णिक छंद वे है जिनमे वर्णो के आधार पर नियम बनाए गए हो। मात्रिक छंदो को 'जाति' और वार्णिक को 'वृत्त' भी कहते है। प्रत्येक छंद मे चार पंक्तियों

रखी जाती है। इन्हें चरण या पाद कहते हैं। कुछ छंद ऐसे भी होते है जिनमे चरण तो चार होते है पर लिखे वे दो ही पंक्तियों मे जाते है। उनकी प्रत्येक पंक्ति का नाम 'दल' रख लिया गया है। हिंदी में कुछ छंद ऐसे भी हैं जो छह पंक्तियों के होते हैं। ये छंद प्रायः दो छंदों के योग से बनते हैं। एक छंद के चार चरण चार पंक्तियों में रखे जाते है और दूसरे छंद के चार चरण दो दलों में अर्थात् दो पंक्तियों में। इस प्रकार उनमें छह पंक्तियाँ हो जाती है। छंदशास्त्र में पहले-तीसरे चरणों को 'विषम चरण' और दूसरे-चौथे को 'सम चरण' कहते है।

उपर्युक्त मात्रिक और वर्णिक छंदों के तीन-तीन उपभेद भी होते है, जिनका नाम सम, अर्धसम और विषम है।

(१) सम—जिन छंदों के चारो चरणों में मात्राएँ या वर्ण समान हो।

(२) अर्धसम—जिन छंदों के विषम चरणो में एक समान मात्रा या वर्ण हों और सम चरणों मे एक समान।

(३) विषम—जिन छंदो मे प्रत्येक चरण की मात्राएँ अथवा वर्ण भिन्न-भिन्न हो।

सूचना—हिंदी मे मात्रिक विषम छंद नहीं होते। इसलिए विषम के अंतर्गत ऐसे छंद माने गए हैं जिनमें चार से अधिक चरण हो। इधर कुछ महाशयो ने उन छंदों को भी छह चरणो में लिखना आरंभ किया है जिनमें प्राचीन ग्रंथो के अनुसार चार ही चरण माने गए हैं। उदाहरण देखना हो तो 'सौरभ' नामक ग्रंथ देखिए; इसमे 'कवित्त' की रचना छह चरणों में भी हुई है।

इसके अतिरिक्त वर्णिक अर्द्धसम और वर्णिक विषम इन दोनों प्रकार के छंद हिंदी मे नहीं प्रयुक्त होते ।

उपर्युक्त 'सम छंदों' के भी दो-दो भेद होते है—(१) साधारण और (२) दंडक। मात्रिक साधारण वे है जिनके प्रत्येक चरण में बत्तीस तक या इससे कम मात्राएँ हों। इससे अधिक मात्रावाले छंद मात्रिक दंडक कहलाते हैं। वर्णिक साधारण वे है जिनके प्रत्येक चरण में २६ तक या इससे कम वर्ण हो। इससे ऊपर वाले वर्णिक छंद दंडक होंगे।

सूचना—बाईस वर्णों से छब्बीस वर्णों तक के छंद साधारणतः 'सवैया' नाम से प्रसिद्ध हैं।
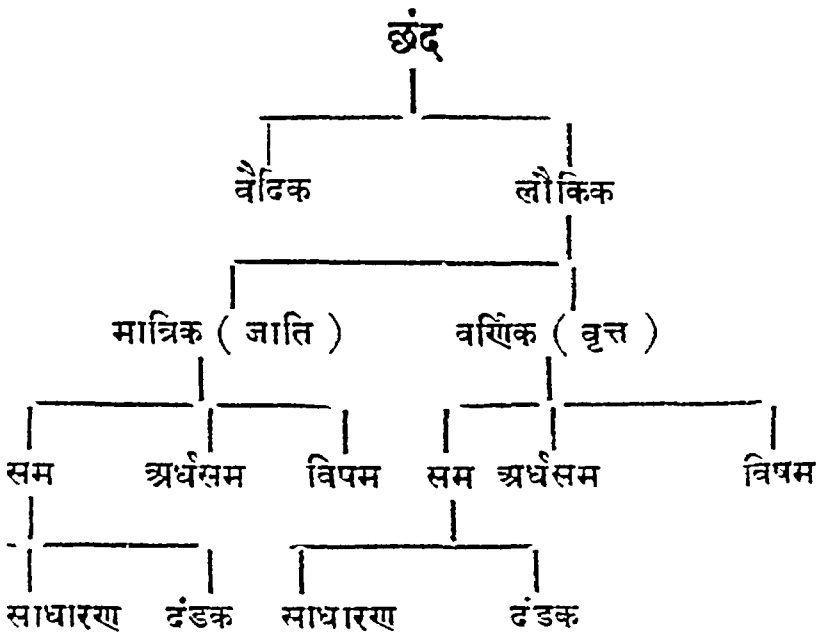
मात्रिक और वर्णिक छंद की पहचान के लिए ये बाते ध्यान मे रखनी चाहिए—

(१) जिस छंद के चारों चरणों में या तो अक्षर समान हों या केवल अक्षरों का क्रम एक-सा हो अर्थात् लघु और गुरु समान क्रम से मिले, वह वर्णिक होगा। वर्णिक समवृत्तों में अक्षर तो समान होते हैं, साथ ही लघु और गुरु का क्रम भी एक-सा रहने से मात्राएँ भी बराबर होती है।

(२) जिस छंद के चरणों में गुरु-लघु का कोई क्रम न हो, पर मात्राओं में समानता हो वह मात्रिक होगा।

(४) गण

छंदों (विशेषतः वर्णिक छंदों) का 'गण' के ही आधार पर लक्षण बनाया जाता है। मात्रिक छंदो में जिन गणों का उल्लेख है उनकी जानकारी के बिना भी काम चल सकता है, पर वर्णिक छंदो के गणों की जानकारी के विना पिंगल का काम एकदम नहीं हो सकता। पिंगल मे मात्रिक छंदो में जिन गणो का व्यवहार होता है उनमे मात्राओ के भिन्न-भिन्न समूहो को 'गण' कहते है। पर वर्णिक छंदो मे प्रयुक्त होनेवाले गणों का सामान्य लक्षण है—तीन अक्षरों का समूह।

मात्रिक गण पॉच होते है। इनका नाम है—टगण, ठगण डगण, ढगण और णगण। क्रमशः छह, पॉच, चार, तीन और दो मात्राओ के समूह के ये नाम रखे गए है। मात्रिक गणों का रूप एक ही नहीं रह सकता। ज्यो-ज्यो मात्राएँ अधिक होती गई है उनके रूपो की संख्या भी बढ़ती गई है। उदाहरण के लिए दो मात्राओंवाले णगण को लीजिए। इसका एक रूप तो यह होगा कि एक ही दीर्घ वर्ण मे दो

मात्राएँ हों; जैसे—'सौ'। इसका दूसरा रूप ऐसा होगा जिसमें दो लघु अक्षर होंगे; जैसे—शत। तीन मात्रा
|S S|
वाले ढगण के भी तीन रूप होंगे; जैसे—रमा, राम
|||
रमण। चार मात्रावाले गणों से रूपों की संख्या बढ़ने लगती
SS ||S |S|
है। डगण के पाँच रूप होंगे; जैसे—श्यामा, मुरली, करील,
S|| ||||
माधव, नटवर। इसी प्रकार पाँच मात्रावाले ठगण के आठ रूप होंगे और छह मात्रावाले टगण के तेरह रूप। छंदशास्त्र के ग्रंथों मे सुभीते के लिए इन रूपों के भी अलग-अलग नाम रख लिए गए है। इन मात्रिक गणों का उपयोग लक्षण लिखने मे किया जाता है। मान लीजिए, किसी छंद के लक्षण में यह बतलाना है कि यदि इसके प्रत्येक चरण मे तीन मात्राओंवाले शब्दों के बाद पाँच मात्राओंवाले शब्द रखे जायँ तो प्रवाह ठीक रहेगा। इसे संक्षेप में लिखेंगे कि यदि ठगण के बाद ढगण रहे तो गति ठीक रहेगी और संक्षेप में लिखने के लिए 'ठ' और 'ढ' से ही काम चल जायगा।

वर्णिक गणो के संबंध मे कहा जा चुका है कि तीन अक्षरों के समूह को गण कहते है। अक्षर दीर्घ और ह्रस्व होता है, इसलिए तीन अक्षरो के आठ रूप हो सकते है। इन्हीं आठ रूपो के अलग-अलग नाम रखे गए है। उनके रूप नीचे की तालिका से समझ मे आ जायँगे।

नाम	चिन्ह	सकेत	रूप
मगण	SSS	म	कौसल्या

यगण	।SS	य	सुमित्रा
रगण	S।S	र	जानकी
सगण	।।S	स	सरयू
तगण	SS।	त	साकेत
जगण	।S।	ज	वसिष्ठ
भगण	S।।	भ	राघव
नगण	।।।	न	भरत

ऊपर जैसे गणों के सांकेतिक नामों के अक्षर दिए गए हैं उसी प्रकार 'लघु' के लिए 'ल' और 'गुरु' के लिए 'ग' अक्षर का प्रयोग होता है। गणों के स्वरूप को ध्यान में रखने के लिए यद्यपि कई सरल ढंग निकाले गए हैं* पर गुजराती के निम्नलिखित सूत्र से सरल कोई नहीं है—

'यमाताराजभानसलगा'

इस सूत्र में कुल दस अक्षर है। पहले के आठ अक्षर आठो गणों के लिए आए हैं और शेप दो अक्षर लघु-गुरु के लिए। इस सूत्र की व्याख्या यह है कि आपको जिस गण का रूप जानना है उसी अक्षर से आप आरंभ करें और

---

* जैसे संस्कृत में—

(१) आदिमध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम्।
यरता लाघवं यान्ति मनौ तु गुरुलाघवम्॥
—श्रुतबोध।

(२) मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो र लमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥
—छंदोमंजरी।

आगे के दो अक्षरों को और ले लें। यह तीन अक्षरो का एक अलग गण हो गया। यही आपके अभिप्रेत गण का रूप होगा। मान लीजिए, आपको 'नगण' का रूप जानना है। अब आप 'न' अक्षर से आरंभ करें और आगे के दो अक्षर 'सल' को भी उसमे जोड़ ले तो 'नसल' (।।।) रूप बन गया। यही 'नगण' का रूप (।।।) हुआ। इसी प्रकार रगण का हुआ 'राजभा' और उसका रूप (ऽ।ऽ सामने आ गया। लघु के लिए 'ल' ह्रस्व है ही और 'गुरु' के लिए 'गा' दीर्घ।

(५) शुभाशुभ-विचार

हमारे यहाँ मंगल और अमंगल का विचार सभी स्थानो पर होता आया है। इन गणो के संबंध में भी यही बात है। इनमे से कुछ गण शुभ माने गए हैं और कुछ अशुभ। अशुभ गण कविता के आदि मे कभी न पड़े। कुछ लोग प्रत्येक पद्य के आरंभ में अशुभ गण बचाने की सलाह देते है और कुछ लोग कहते है कि ग्रंथ के आरंभ मे अथवा जहाँ से प्रकरण का आरंभ हो। साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि वर्ण-वृत्तो में सर्वत्र या अधिकांश मे यह नियम नहीं चल सकता। क्योंकि वर्णवृत्त ऐसे है जिनमे नियम है कि अमुक गण आदि में रहे ही। अब चाहे वह गण शुभ हो चाहे अशुभ, उस छंद मे कविता लिखने से वह अशुभ गण अवश्य पड़ेगा। इस लिए लोगो ने यह नियम किया कि वर्णवृत्तो मे जहाँ 'कुगण' पड़े वहाँ देववाची या मंगलवाची शब्द रख देने से दोष का परिहार हो जायगा। उन्ही लोगो ने यह भी नियम कर

रखा है कि नर-काव्य में ही इन बातों का विचार होगा देव-काव्य में नहीं। इस बखेड़े का यहीं अंत नहीं है। गणों के देवता और फल भी कहे गए हैं।* यही नहीं आगे चलकर बताया जाएगा कि केवल एक ही गण का नहीं द्विगण का विचार भी होता है अर्थात् दो गणों के एक साथ पड़ने से उनके संमिलन का क्या प्रभाव होता है। इन गणों के नाम भी रख लिए गए हैं। नीचे की तालिका से इन बातों का स्पष्टीकरण होगा।

शुभाशुभ	नाम	गण	देवता	फल
शुभ	मित्र	मगण	भूमि	लक्ष्मी
		नगण	स्वर्ग	आयु
	दास	भगण	चंद्रमा	यश
		यगण	जल	वृद्धि
अशुभ	उदासीन	जगण	सूर्य	रोग
		तगण	आकाश	धनहानि
	शत्रु †	रगण	अग्नि	विनाश
		सगण	वायु	देशाटन

---

* देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः।
ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा॥
—काव्यालंकार (भामह)।

† मो भूमिस्त्रिगुरुः श्रियं दिशति यो वृद्धिं जलं चादिलो,
रोऽग्निर्मध्यलघुर्विनाशमनिलो देशाटनं सोन्त्यगः।
तो व्योमान्तलघुर्धनापहरणं जोऽर्को रुजं मध्यगो,
भाश्चन्द्रो यश उज्ज्वलं मुखगुरुर्नो नाक आयुस्त्रिलः॥
—वृत्तरत्नाकर टीका।

(६) गति और यति

यह तो स्पष्ट है कि छंदों का विधान लय के ही लिए किया गया है। लय नाद-सौंदर्य स्थिर रखने के लिए आवश्यक है।

कुछ लोग आदि के दो गणों का विचार करते है, ऊपर गणों के साथ जो नाम (मित्र आदि) दिए गए है* उन्हीं के परस्पर मिलने से। जैसे मगण और नगण दोनो का नाम 'मित्रगण' है। अब यदि मगण और नगण दोनो अथवा इनमें से कोई एक दो बार पड़ जाय तो मित्र-मित्र गण हुआ; इसका फल माना गया है सिद्धि। इसी प्रकार अच्छे, बुरे और मध्यम संयोगो के अनुसार और भी फल बतलाए गए है। कहने का तात्पर्य यह कि भारी विस्तार है।

केवल गणों तक ही इस शुभाशुभ का झमेला नही है। अक्षरों मे भी इसका विचार है। सभी स्वर शुभ माने गए है। व्यंजनों में से ङ, झ, ञ, ट, ठ, ढ, ण, प, फ, ब, भ, म, र, ल, व, ष, ह को छोड़कर शेष शुभ है। संयुक्ताक्षर आदि मे रखना अशुभ माना गया है। उक्त अशुभ वर्णों मे से पॉच वर्ण अत्यंत अशुभ माने गए है और उनका नाम 'दग्धाक्षर' रखा गया है। वे पॉचो है—झ, भ, र, ष, ह। इनका परिहार यही है कि देववाची या मंगलवाची शब्द के आदि में आने पर इनका प्रभाव नष्ट हो जाता है।

---

* 'म-नौ मित्रे भ यौ भृत्यावुदासीनौ ज-तौ स्मृतौ।
र-सवारी नीचसंज्ञौ ज्ञेयावेतौ मनीषिभिः॥—वृत्तरत्नाकर टीका।

पद्य की धारा अथवा प्रवाह ठीक रहे। जब तक छंद में धारा न होगी तब तक वह किसी काम का नहीं। पद्य क्या, गद्य तक में प्रवाह देखा जाता है। अड़-अड़कर आगे बढ़नेवाला गद्य भी अच्छा नहीं समझा जाता। छंदशास्त्र मे उक्त प्रवाह को 'गति' कहते है। गति के लिए कोई विशेष नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह अभ्यास की बात है। हाँ, भिन्न-भिन्न छंदो पर यदि अधिक परिश्रम किया जाय तो बतलाया जा सकता है कि अमुक छंद में मात्राओं और गणो का क्या-क्या क्रम रखा जाय कि गति ठीक रहे। जैसे 'घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर' में केवल घनाक्षरी छंद की गति ठीक रखने के नियम दिए गए है।

गतिभंग

मेरे जान जब तें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग,
तब ते बेसाह्यो दाम लोभ कोह काम को।
मन तिन ही की सेवा, तिन ही सो भाव नीको,
बचन बनाइ कहौं, 'हौं गुलाम राम को'।
नाथहू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै
प्रभुहू ते प्रबल प्रताप प्रभु-नाम को।
अपनी भलाई भलो कीजै तौ भलाई, न तौ
'तुलसी' को खुलैगौ खजानो खोटे दाम को॥

इसके प्रथम चरण के पूर्वार्ध मे गति ठीक नही है। 'गति-भंग' की गणना दोषों में है (देखिए ऊपर, वाक्य-दोष)।

छंदो की लय को ठीक रखने के लिए यति और विरति का भी विधान होता है। इसमें यह बतलाया जाता है कि अमुक

छंद की यति और विरति (विश्राम) इतने-इतने वर्णों या मात्राओं पर होगी। जब इनका उल्लंघन किया जाता है तो भी छंद की लय बिगड़ जाती है। इसे भी दोष कहते है। जब एक चरण का शब्द कटकर दूसरे चरण मे लगता हो तो 'यति-भंग' होगा। विरति-भंग वहाँ होगा जहाँ नियत विश्राम-स्थान पर शब्द के कटने पर विरति लगती हो।

यतिभंग

कुसुम-सा सुप्रफुल्लित बालिका-
हृदय भी न रहा सुप्रफुल्ल ही।
वह मलीन सकल्मप हो गया।
प्रिय - मुकुंद - प्रवास - प्रसंग से ॥

इस छंद मे 'बालिका-हृदय' समस्त पद है। पर वह कट-कर आधा पहले चरण में है और आधा दूसरे चरण मे।

विरतिभंग

अकथ अपार भव-पंथ[1] के चले को श्रम-
हरन करन-बिजना[2] - से बरदाइए[3]।
इहलोक परलोक सुफल - करन कोक-
नद[4]-से चरन हिये आनि कै जुड़ाइए[5]।
अलिकुल-कलित-कपोल[6] ध्याइ ललित,
अनंद - रूप - सरित मै 'भूषन' अन्हाइए।
पाप - तरु - भंजन बिघन - गढ़[7] - गंजन,
भगत-मन - रंजन द्विरद - मुख[8] गाइए॥

---

१ संसार रूपी मार्ग। २ पंखे के समान कान। ३ बलदायी, शक्ति देनेवाले। ४ लाल कमल। ५ हृदय मे लगाकर उसे ठढा कीजिए। ६ भौरो से युक्त कपोल। ७ किला। ८ गणेश।

यह 'कवित्त' छंद है। इसके प्रत्येक चरण मे १६ और १५ अक्षरों पर विराम देकर ३१ अक्षर होते है। उक्त कवित्त के दूसरे, तीसरे और चौथे चरणों में 'विश्राम' ठीक नही है। दूसरे चरण में 'कोकनद' शब्द कटकर एक ओर 'कोक' और दूसरी ओर 'नद' हो जाता है। तीसरे और चौथे चरणों का विराम नियमानुसार क्रमशः 'अनंद' और 'भगत' के 'अ' और 'भ' के बाद होना चाहिए।

(७) संख्याओं के संकेत

बहुत-सी बाते काव्यों में परंपराभुक्त भी चलती रहती हैं। कुछ बातें ऐसी भी होती है जिन्हें 'विशेषाधिकार' (कन्सेशन) कह सकते है। जैसे पुरानी कविता मे आवश्यकता पड़ने पर शब्दो की ह्रस्व मात्रा दीर्घ और दीर्घ मात्रा ह्रस्व कर दी जाती थी। इसीलिए हिंदी की पुरानी कविता मे क्रियापदों का रूप स्थिर नहीं रह पाया, आवश्यकता से अधिक विकृत हो गया है। इसी प्रकार के और भी विशेषाधिकार होते है। कविता में संख्याओं को ज्यो-का-त्यों सूचित करने में कठिनाई पड़ती है, इसलिए उनके लिए सांकेतिक प्रतीक रख लिए गए है। अब यह एक परंपरा-सी हो गई है कि कवि ग्रंथ का कम-से-कम निर्माणकाल इन्हीं सांकेतिक प्रतीकों द्वारा व्यक्त करता है। नीचे कुछ संख्याओं के सांकेतिक प्रतीक दिए जाते है। स्मरण रखना चाहिए कि इनके पर्यायवाची शब्दों से भी काम लिया जा सकता है।

०—आकाश ।

१—पृथ्वी, चंद्र, आत्मा ।

२—आँख, पक्ष, भुज, सर्प-जिह्वा, नदी-कूल, कर्ण, पद ।

३—गुण, राम, काल, अग्नि, शिव-नेत्र, ताप ।

४—वेद, वर्ण, आश्रम, मुख, युग, धाम, पदार्थ, पाद ।

५—काम-शर, इंद्रिय, शिव-मुख, पांडव, मति, प्राण, कन्या, यज्ञ, भूत, वर्ग, गव्य ।

६—ऋतु, राग, रस, वेदांग, शास्त्र, ईति, कार्त्तिकेय के मुख, भ्रमर-पद ।

७—मुनि, स्वर, पर्वत समुद्र, लोक, सूर्याश्व, वार, पुरी, गोत्र, ताल ।

८—सिद्धि, वसु, प्रहर, नाग, दिग्गज, योग ।

९—भू-खंड, अंक, निधि, ग्रह, भक्ति, नाड़ी, रंध्र, द्रव्य, रस (काव्य के) ।

१०—दिशा, दशा, अवतार, दोष ।

११—शिव ।

१२—सूर्य, राशि, भूषण, मास ।

१३—नदी, परमभागवत, किरण ।

१४—भुवन, रत्न, मनु, विद्या ।

१५—तिथि ।

१६—संस्कार, शृंगार, कला ।

१७—एक और सात के कोई दो संकेत मिलाइए ।

१८—पुराण ।

१९—एक और नौ के कोई दो संकेत मिलाइए ।

२०—नख ।

बीस के आगे की संख्याओं के भी सांकेतिक प्रतीक होते हैं, पर सब संख्याओं के नहीं। जैसे २७ के लिए 'नक्षत्र', ३३ के लिए 'देवता' आदि। प्रायः १ से लेकर ६ तक के सांकेतिक शब्द अधिक काम में लाए जाते है और उन्हीं से सब काम निकाला जाता है। संख्याओं के इन प्रतीकों की विधि बैठाते समय एक बात और ध्यान में रखने योग्य है। इनमे संख्याओं की गणना उलटी चलती है।* जैसे यदि लिखना होगा १५४ तो लिखेगे ४५१। उदाहरण लीजिए—

२ ० ६ १
कर नभ रस अरु आतमा, संवत फागुन मास।
सुकुल पच्छ तिथि चौथ रबि, जेहि दिन ग्रंथ-प्रकास॥

यहाँ लिखा गया है २०६१, पर पढ़ा जायगा १६०२। यहाँ 'रस' से षट्रस नहीं समझना चाहिए, ये काव्य के नव रस है।

(८) तुक

पद्यों के चरणांत के अक्षरों का नाम तुक है। इसे अंत्यानुप्रास भी कहते है। हिंदी मे पदांत मे अक्षर-मैत्री का नियम है। यह प्रवृत्ति अपभ्रंश से आई है। इधर अँगरेजी ब्लैक वर्सों की देखादेखी हिंदी मे अतुकांत कविता लिखने की प्रवृत्ति अधिक जग उठी है। कुछ लोग तुकांत कविता लिखना ठीक नहीं समझते, क्योंकि कभी-कभी तुक की चिंता मे भावो की स्वच्छंदता को क्षति पहुँचती है। पर ऐसा कहना ठीक नही,

---

* अङ्कानां वामतो गतिः।

क्योंकि "जो लोग अंत्यानुप्रास की बिलकुल आवश्यकता नहीं समझते उनसे मुझे यही पूछना है कि अंत्यानुप्रास ही पर इतना कोप क्यों? छंद और तुक दोनों ही नाद-सौंदर्य के उद्देश्य से रखे गए हैं। फिर क्यों एक निकाला जाय और दूसरा नहीं? यदि कहा जाय कि सिर्फ छंद ही से उस उद्देश्य की सिद्धि हो जाती है तो यह जानने की इच्छा बनी रहती है कि क्या कविता के लिए नाद-सौंदर्य की कोई सीमा नियत है। यदि किसी कविता में भाव-सौंदर्य के साथ नाद-सौंदर्य भी वर्तमान हो तो वह अधिक ओजस्विनी और चिरस्थायिनी होगी।"*

इधर लोग छंदों को भी छोड़कर केवल लय को ही पकड़ रहे हैं; यहाँ तक तो ठीक है। पर यह कहना कि लयहीन और छंदहीन कविताएँ ही ठीक हैं, उचित न होगा। बात यह है कि हमारे यहाँ नाद-सौंदर्य के लिए बहुत जगह है और विदेशी भाषाओं—जैसे अँगरेजी आदि—में नाद-सौंदर्य के लिए उतनी जगह नहीं है; इसलिए यदि वे लोग छंद का सिक्कड़ तोड़े डाल रहे हैं तो हिंदी के लिए भी वही करना ठीक न होगा†।

जो कुछ हो तुकांत कविताएँ बराबर होती आ रही हैं और होती रहेंगी। छंद का बंधन भी अवश्य रहेगा। यह

* 'कविता क्या है' शीर्षक निबंध से—हिंदी-निबंधमाला, भाग २।

† "संस्कृत से संबंध रखनेवाली भाषाओं में नाद-सौंदर्य के समावेश के लिए बहुत अवकाश रहता है। अतः अँगरेजी आदि अन्य भाषाओं की देखादेखी, जिनमें इसके लिए कम जगह है, अपनी कविता को हम इस विशेषता से वंचित कैसे कर सकते हैं?"

—विचार-वीथी।

लिखने का तात्पर्य यह नही कि अतुकांत कविताएँ सुंदर नही होतीं। होतीं क्यों नही, हिंदी में 'प्रियप्रवास' नामक मनोहर ग्रंथ अतुकांत ही है। देखने में आता है कि अतुकांत कविता भी वर्णिक छंदो में ही होती है क्योंकि उन छंदो मे रूप बँधा होता है। मात्रिक छंदो में अतुकांत कविता हुई अवश्य है, पर उत्तम न होने से उसका प्रचार एकदम नहीं हुआ। यही दशा छंदहीन कविता की भी देखने मे आती है। पहले इस प्रकार की कविता तो हुई, पर अब वैसी कविता कम देखने मे आती है।

तुक का विचार तुकांत के स्वरो के आधार पर ही हो सकता है। अनुस्वारो से युक्त वर्ण भी उसी में संमिलित मान लिए जायँगे। स्वरो के आधार पर तुक तीन भागो में बाँटे जा सकते है—(१) उत्तम, (२) मध्यम और (३) अधम या निकृष्ट।

(१) यदि पद्य के अंत में दो गुरु (SS) आ पड़े तो पाँच मात्राओं का सम-स्वर होना उत्तम है, चार का मध्य और दो का अधम।

उत्तम

नींद बहुत प्रिय सेज-तुराई[1]। लखहु न भूप कपट-चतुराई॥

मध्यम

बाजहिं बाजन बिबिधि बिधाना[2]। पुरप्रमोद[3] नहि जाइ बखाना[4]॥

अधम

राम-सीय-पद-प्रीति घनेरी। नित-प्रति नूतन होइ हमारी॥

---

१ दुलाई, रजाई। २ तरह। ३ आनद। ४ वर्णन नहीं किया जाता।

(२) यदि पद्य के अंत मे गुरु-लघु (ऽ।) या लघु-गुरु (।ऽ) आ पड़े तो पॉच और चार मात्राओ का तुक उत्तम, तीन का मध्यम, दो या एक का अधम है।

उत्तम

(१) कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवासु।
व्याकुल बिलपत राज-गृह, मानहु सोक-निवासु॥
(२) लागे सराहन भाग सब, अनुरागबचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय-राम-चरन-सनेहु लखि सुख पावहीं॥

मध्यम

(१) कहा होय उद्यम किए, जो प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसे उपजे खेत को, करत सलभ निरमूल॥
(२) क्या पाप ही की जीत होती, हारता है पुण्य ही।
इस दृश्य को अवलोक कर, तो जान पड़ता है यही॥

अधम

(१) सरनि सरोरुह जल-विहँग, कूजत गुंजत भृंग।
वैर-बिगत बिहरत बिपिन, मृग बिहंग बहु रंग॥
(२) रहती मैं अकेली तो क्या भय था मुझे सोच न था तन का अपुने
पर साथ मे लाड़ले जीवन-मूर, ये छौने दुलारे है दोनो जने॥

(३) यदि पद्य के अंत मे दो लघु (।।) आ पड़े तो चार मात्राओ का तुक उत्तम, दो का मध्यम और एक का अधम होता है।

उत्तम

बिबिधि रंग की उठति ज्वाल दुर्गंधनि महकति।
कहुँ चरबी सो चटचटाति कहुँ दहदह दहकति॥

मध्यम

व्योम को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठो पहर॥

अधम

अकपट-चित से वन अनन्य-मन रोप युगल पग।
वे करते अनुसरण राम का नीरवता-संग॥

भिखारीदास ने इसी बात पर कुछ दूसरे ढंग से विचार किया है। उन्होंने उत्तम, मध्यम और अधम के भी तीन-तीन भेद किए हैं। इन भेदो पर विचार करने से जान पड़ता है कि ये भी उसी प्रकार की तीन कोटियाँ हैं। अर्थात् उत्तम मे जो तीन भेद हैं वे स्वयम् उत्तम, मध्यम और अधम है। भेद के नाम इस प्रकार है—

(१) उत्तम—सम-सरि[1], विषम[2]-सरि, कष्ट-सरि[3]।

(२) मध्यम—असंयोग-मीलित,[4]स्वर-मीलित,[5]दुर्मिल[6]

(३) अधम—अमिल[7]-सुमिल, आदिमत्त[8] अमिल,अंतमत्त-अमिल।

(१) सम-सरि—जहाँ तुकांत मे जितने वर्ण मात्रा-सहित मिले है उनका स्वरूप सब जगह एक-सा रहे। साथ ही तुकांत के शब्द 'पूर्ण' हो, खंडित नहीं। जैसे—चलना, पलना, मलना आदि। यदि 'चल ना' दो शब्द अलग-अलग हो जायँ तो वह 'सम-सरि' न होगी। यथा—

आनन-कलानिधि में दूनी कला देख-देख,
चाहक-चकोरों के उदास उर ऊलेंगे[१]।
दाड़िम के दानी फल दाने उगलेंगे नहीं,
कुंद-कलियों के झुंड झाड़[२] मे न झूलेंगे।
सीप के सपूतों[३] पर शोभा न करेगी प्यार,
'शंकर' चमेली और मोतिया न फूलेंगे।
दाँतों की बतीसी मणि-मालिका हँसी की इस
दामिनी की दूती को न देवता भी भूलेंगे॥

(२) विषम-सरि—जहाँ सभी तुकांतों के शब्द एक-से न हों, कोई तुक बड़े शब्द का खंड हो तो कोई पूर्ण। यथा—

बुद्धि बिबेक की जोति बुझी ममता मद मोह घटा घनी घेरी।
है न सहारो, अनेकन है ठग पाप के पन्नग की रहै फेरी।
त्यों अभिमान को कूप इतै उतै कामना रूप सिलान की ढेरी।
तू चलु मूढ़ सँभारि अरे मन राह न जानी है रैन अँधेरी॥

यहाँ घेरी, फेरी आदि के साथ 'अँधेरी' भी है। यदि 'घेरी' ही रहता तो 'सम-सरि' होती।

(३) कष्ट-सरि—जहाँ कुछ तुकांत खंडित हों और कुछ पूर्ण। यथा—

बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति बानर बिलोकिए।
अध ऊर्ध्व बानर, बिदिसि दिसि बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिए।

---

१ लालायित होंगे। २ पेड़। ३ अर्थात् मोती।

मूँदे आँखि हीय मे, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ-तहाँ, और कोऊ को किए।
लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखाओ मानो,
सोइ सतराइ जाइ जाहि-जाहि रोकिए॥
यहाँ तीसरे चरण मे 'को किए' कष्ट-सरि है।

(४) असंयोग-मीलित—जहाँ संयुक्त वर्ण के तुकांत में कोई असंयुक्त वर्ण हो। जैसे—

बरसती है खचित मणियों की प्रभा।
तेज मे डूबी हुई है सब सभा॥

यहाँ 'प्रभा' मे 'प्र' संयुक्त वर्ण है, पर 'सभा' मे 'स' संयुक्त वर्ण नहीं है, यदि 'स्र' होता तो यह उत्तम तुकांत कहा जाता।

(५) स्वर-मीलित— जहाँ तुकांत मे केवल स्वर मिलता हो। (यहाँ स्वर से तात्पर्य आकार से भिन्न अन्य स्वरों और विशेषतः दीर्घ स्वरो से जान पड़ता है)।
दसरत्थ के दानि, सिरोमनि राम, पुरान-प्रसिद्ध सुन्यौ जसु मैं।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सो मन-भावत पायो न कैं।
'तुलसी' कर जोरि करै बिनती जो कृपा करि दीनदयालु सुनै।
जेहि देह सनेह न रावरे सों असि देह धराइ कै जाय जियै॥
यहाँ केवल 'ऐ' स्वर का साम्य है।

(६) दुर्मिल—जहाँ अंत का वर्ण या स्वर मिला तो हो पर उसके पूर्व के स्वर-व्यंजन एकदम भिन्न हों, विजातीय हों।

सरलपन ही था उसका मन।
निरालापन था आभूपन॥

(७) अमिल-सुमिल—जिसमें कोई तुक एकदम विरूप भी पड़ा हो। यथा—

हरि की अति नींद-भरी पलकैं।
लटकी मुख ऊपर है अलकैं।
श्रमबिंदु कपोलन मैं झलकैं।
सुषमा लखि क्यों अँखियाँ न छकैं॥

यहाँ 'न छकैं' अमिल अर्थात् विरूप है।

(८) आदिमत्त-अमिल—जहाँ ऐसे तुकांत हों, जिनमें अंत की मात्राएँ और वर्ण तो मिलते हों, पर 'तुकांत' के आदि में स्वर भिन्न हों। यथा—

मृदु बोलन तीय सुधा श्रवती।
तुलसी-बन-बेलिन मे भँवती॥
नहि जानिय कौन अहै युवती।
वहि ते अब औध है रूपवती॥

(९) अंतमत्ता-अमिल—जहाँ तुक की अंतिम मात्रा अमिल हो, व्यंजन-भर मिलता हो। यथा—

गंगे, बढ़कर विप हुआ, सुधा-सदृश तव अंबु।
जीवन पाकर खो रहे, जीवन जीव-कदंब॥

सूचना—'दास' ने तुक के तीन ढंग के भेद और माने हैं—(१) वीप्सा, (२) यामकी और (३) लाटिया।* वीप्सा का तात्पर्य यह है कि कोई शब्द दो बार पड़े—जोर देने के विचार से। यामकी का तात्पर्य

* होत वीप्सा, यामकी, तुक अपने ही भाउ।
उत्तमादि तुक आगे ही, है लाटिया बनाउ॥—काव्यनिर्णय।

यह है कि तुकांत के भिन्नार्थ हों पर स्वरूप एक रहे। लाटिया जिसमें कुछ शब्द सभी चरणों में आवें और तुकांत उपांत में मिले, जैसा उर्दू की कविता में प्रायः होता है (जिसे वे लोग 'रदीफ' कहते हैं)। उदाहरणार्थ—बन जाते है, तन जाते हैं आदि। लाटिया ऊपर कहे हुए उत्तमादि तुक के आगे पड़ता है। इन तीनो तुको में आकार एक से रहते है। वीप्सा और लाटिया में तात्पर्य भी एक ही रहता है।

वीप्सा-तुक

रीझि-रीझि रहसि-रहसि हँसि-हँसि उठै,
साँसैं भरि आँसू भरि कहत दई-दई।
चौंकि-चौंकि, चकि-चकि औचकि उचकि 'देव'
छकि-छकि जकि-जकि, बहत बई-बई।
दोउन को रूप-गुन बरनत फिरैं बीर,
धीर न धरात रीति नेह की नई-नई।
मोहि-मोहि मोहन को मन भयौ राधामई,
राधा-मन मोहि-मोहि मोहन मई-मई।

यामकी

अंबर से बरसा रहे, रस है वे घनश्याम।
रस-सागर उमडा रहे, ये मेरे घनश्याम।

लाटिया

आतुर न होहु ऊधौ, आवति दिवारी अबैं,
वैसियै पुरंदर-कृपा जौ लहि जाइगी।
होत नर ब्रह्म, ब्रह्म-ज्ञान सो, बतावत जो,
कछु इहि नीति की प्रतीति गहि जाइगी॥
गिरिवर धारि जौ उबारि ब्रज लीन्यौ बलि,
तौ तौ भाँति काहू यह बात रहि जाइगी।

नातरु हमारी भारी विरह-बलाय संग,
सारी ब्रह्मज्ञानता तिहारी बहि जाइगी ॥

यहाँ 'जाइगी' लाटिया अंत्यानुप्रास है, 'लहि, जहि' आदि में तुकांत मिला है।

चरणों के साम्य के आधार पर तुकांत के ६ प्रकार हो सकते हैं—(१) सर्वांत्य, (२) समांत्य-विषमांत्य, (३) समांत्य, (४) विषमांत्य, (५) सम-विषमांत्य और (६) भिन्नांत्य।

(१) सर्वांत्य—जिस छंद के चारों चरणों मे तुक मिली रहती है। जैसे—

उचित यही है करे वीर-पूजा मिल हम सब।
यही धर्म है सत्य यही है सच्चा करतब।
भारत पर अति कठिन विपति आती है जब-जब।
इसी भाँति अवतार ईश लेते है तब-तब ॥

(२) समांत्य-विषमांत्य—जिस छंद के विषम (पहले-तीसरे) चरणों का तथा सम (दूसरे-चौथे) चरणों का तुकांत एक-सा हो; जैसे—

आँख का आँसू छलकता देखकर।
जो तड़प करके हमारा रह गया।
क्या गया मोती किसी का है बिखर।
या हुआ पैदा रतन कोई नया ॥

(३) समांत्य—जिस छंद में केवल दूसरे और चौथे चरणों का तुकांत मिले। जैसे—

कल्पना मे है कसकती वेदना,
अश्रु मे जीता सिसकता गान है।

शून्य आहों में सुरीले छंद है,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है ॥

(४) विषमांत्य—जिसमें पहले और तीसरे चरण का तुकांत एक-सा हो । जैसे—

'रहिमन' मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान बिन ।
जो बिष देई बुलाय, मान-सहित मरिबो भलो ॥

(५) सम-विषमांत्य—जिस छंद में पहले-दूसरे चरणों का और तीसरे-चौथे चरणों का तुकांत एक-सा हो । जैसे—

नव-नव अभिलाषा और आशा घनेरी ।
बहु विध सुख इच्छा कामना हाय ! तेरी ।
बस, पल-भर ही में क्या हुई मित्र माली ?
उस विभुवर की है सर्व लीला निराली ॥

(६) भिन्नांत्य—जिस छंद के प्रत्येक चरण मे भिन्न भिन्न तुकांत हो उसे भिन्नतुकांत या बेतुकी कविता कहते हैं । जैसे—

पल-पल जिसके मै पंथ को देखती थी ।
निशिदिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती ।
उर पर जिसके है सोहती मुक्त-माला ।
वह नव-नलिनी-से नैनवाला कहाँ है ॥

(६) प्रत्यय

जिनके द्वारा अनेक प्रकार के छंदो के विस्तार और संख्या आदि प्रकट किए जाते है उन्हें छंदशास्त्र में 'प्रत्यय' कहते हैं ।

इस शास्त्र मे कुल नौ प्रत्यय है—(१) प्रस्तार, (२) सूची, (३) उद्दिष्ट, (४) नष्ट, (५) पाताल, (६) मेरु, (७) खंड-मेरु, (८) पताका और (९) मर्कटी। पिगल मे इन सबका बहुत ही विस्तृत विवेचन किया गया है। वस्तुतः यह पिगल का गणित-विभाग है। इन सबके द्वारा हम यह जान सकते है कि अमुक मात्रा के छंदो का स्वरूप और उनकी संख्या कितनी हो सकती है, अमुक भेद अमुक मात्राओ के छंद की कौन संख्या है, अमुक मात्रा के छंद का अमुक भेद कैसा होगा इत्यादि। परंतु यह विषय विशेष उपयोग मे नही आता। अतएव इसका संक्षेप में उल्लेख किया जाता है।

(१) कितनी मात्रा या वर्ण के कितने भेद हो सकते है और उनके स्वरूप क्या है, यही प्रस्तार में दिखलाया जाता है। प्रस्तार के स्पष्टीकरण से यह जाना जाता है कि एक मात्रा के छंद का १, दो मात्राओ के छंद के २, तीन मात्राओ के छंद के ३, चार मात्राओं के छंद के ५, पॉच मात्राओ के छंद के ८ और छह मात्राओं के छंद के १३ भेद होते है; इनसे अधिक नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त आगे के छंदो की संख्या जानने के लिए पिछले दो की छंद-संख्या जोड़ देनी चाहिए। जैसे सात मात्राओ की छंद-संख्या—पॉच मात्राओ की छंद-संख्या ८ और छह मात्राओ की १३ के योग के बराबर—अर्थात् २१ होगी। इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए। इसे सूची-अंक कहते है।

यह मात्राओ के प्रस्तार की बात हुई। वर्ण-प्रस्तार मे छंद-सख्या दूनी होती जाती है। जैसे, एक वर्ण की छंद-संख्या २, दो वर्ण की ४, तीन की ८, चार की १६।

प्रस्तार किस प्रकार किया जाता है संक्षेप में उसे भी बड़ी सरलता के साथ बतला दिया जाता है। पहले मात्रिक छंद का प्रस्तार लीजिए। मात्राएँ विषमकल[1] (जैसे—३,५,७, ६ आदि) और समकल (२, ४, ६, ८, १० आदि) दो प्रकार की होती है। किसी मात्रा के छंद का पहला भेद वह होगा जिसमे सब गुरु वर्ण बना लिए गए हो। विषमकल मे १ मात्रा बढ़ती है, उसे बाएँ हाथ की ओर रख देते है। जैसे ५ मात्राओं के छंदों का पहला रूप होगा 'ISS' और छह मात्राओं का पहला रूप 'SSS'। प्रस्तार करने मे पहला रूप ऊपर रखकर जब दूसरा रूप बनाना होता है तो इस बात का ध्यान रखते है कि पहले रूप मे जो सबसे पहला गुरु है उसके नीचे लघु रखे (।) और दाहिने हाथ की ओर जो कुछ रूप रहे ज्यों-का-त्यो उतार दें और बाएँ हाथ की ओर 'गुरु' (S) रखने का प्रयत्न करते चले जायँ। अंत मे जाकर यदि गुरु रखने से मात्रा बढ़ती हो तो लघु रखे। पर स्मरण रखना चाहिए कि लघु मात्रा जब रखनी पड़ती है तो वह बाएँ हाथ की ही ओर रखी जाती है। अर्थात् आदि-गुरु-वर्ण के नीचे लघु उतार लेने पर और उसके आगे दाहिने हाथ को ओर जो रूप है उसे ज्यों-का-त्यो नकल कर लेने पर मात्राएँ गिन ले। जितनी मात्राएँ शेष रह जायँ उनमे दो का भाग दे। गुरु रूप को उक्त उद्धृत 'लघु' के पास रखें और लघु को एकदम बाएँ हाथ की ओर छोर पर। उदाहरण के लिए पाँच मात्राओ का प्रस्तार दिया जाता है।

---

१ मात्रा।

पाँच मात्राओं का प्रस्तार

I S S
S I S
I I I S
S S I
I I I S I
I S I I
S I I I
I I I I I

वर्णिक प्रस्तार भी इसी प्रकार होता है। अंतर केवल इतना ही है कि प्रत्येक भेद का रूप लिखते समय इसमें मात्राओं के स्थान पर वर्णों की गिनती का ध्यान रखना चाहिए। यदि पाँच वर्णों के वृत्त का प्रस्तार है तो प्रत्येक भेद में पाँच ही वर्ण रहें। याद रखना चाहिए कि वर्णिक में भी सबसे पहला भेद 'सर्वगुरु' वर्ण है और अंतिम भेद 'सर्वलघु'।

तीन वर्णों का प्रस्तार

S S S
I S S
S I S
I I S
S S I
I S I
S I I
I I I

(२) सूची या संख्या के द्वारा छंदों की संख्या की शुद्धता और उनके भेदों में आदि-अंत गुरु अथवा आदि-अंत लघु की संख्या सूचित होती है ।

(३) यदि कोई कितनी ही मात्रा या वर्ण के प्रस्तार का कोई भेद लिखकर पूछे कि यह कौन-सा भेद है, तो हम उद्दिष्ट द्वारा उसका उत्तर दे सकते हैं ।

(४) नष्ट के द्वारा कितनी ही मात्रा या वर्ण के प्रस्तार के किसी भेद का रूप जाना जाता है ।

(५) पाताल के द्वारा प्रत्येक छंद के भेद अर्थात् उसकी संख्या का ज्ञान, लघु-गुरु, संपूर्ण मात्राएँ तथा वर्ण आदि जाने जाते है ।

(६) कितनी ही मात्रा या वर्ण के संपूर्ण प्रस्तार के भेदों अर्थात् छंदों के रूपों मे जितने-जितने गुरु और जितने-जितने लघु के जितने रूप होते है उनकी संख्या दिखलाने को मेरु कहते हैं ।

(७) खंडमेरु का भी वही प्रयोजन होता है, जो मेरु का है । यह उससे कम प्रकारों को व्यक्त करता है ।

(८) मेरु के द्वारा गुरु और लघु के जितने-जितने भेद प्रकाशित होते है, पताका के द्वारा उतने-उतने भेदों के योग्य स्थान जाने जाते हैं ।

(९) मर्कटी के द्वारा मात्रा के प्रस्तार में लघु-गुरु, सर्वकला और सब वर्णों की संख्या जानी जाती है ।

यद्यपि सब मिलाकर ९ प्रत्यय हैं तथापि सूची, प्रस्तार,

नष्ट और उद्दिष्ट ये चार ही विशेष प्रयोजनीय है। अन्य पॉच प्रत्यय केवल कौतुक हैं और उन सबका प्रयोजन एक ही है, केवल रूपभेद करके विस्तार कर दिया गया है।

(१०) मात्रिक छंद

(क) सम

(१) तोमर—इसके प्रत्येक चरण में १२ मात्राऍ होती है। अंत में गुरु-लघु (ऽ।) होते है। जैसे—

जय राम सोभा-धाम। दायक प्रनत बिश्राम।
धृत त्रोन[1] बहु सर चाप। भुज-दंड प्रबल प्रताप॥

(२) उल्लाला—इसके प्रत्येक चरण में १३ मात्राएँ होती है और अंत मे त्रिकल। जैसे—

बात पुरानी उड़ गई, गया पुराना ढंग है।
नई सभ्यता आ गई, चढ़ा नया अब रंग है॥

(३) चौपई—इसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राऍ होती है और अंत मे गुरु-लघु (ऽ।) रहते है। जैसे—

पवन-हिंडोले पर झुक, मूल। मुसका मधुर मनोहर फूल।
कोकिल कलरव मे चुपचाप। ठगे जा रहे क्यों तुम आप॥

---

१ तरकस।

* इसी से मिलता-जुलता 'उल्लाल' छंद भी होता है। किसी-किसी ने उसे भी 'उल्लाला' ही लिखा है। यह मात्रिक अर्द्धसम छंद है। इसके पहले-तीसरे चरणो मे १५-१५ और दूसरे-चौथे चरणों मे १३-१३ मात्राऍ होती हैं। यथा—

जहँ धन-विद्या बरसत रही, सदा अबै वाही ठहर।
बरसत सब ही विधि बेबसी, अब तौ चेतौ बीर-बर॥

(४) चौपाई—इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होतीं हैं। तुकांत में जगण (।ऽ।) अथवा तगण (ऽऽ।) का निषेध है। अंत में प्रायः दो गुरु वर्ण रखे जाते हैं। जैसे—

बिनु सतसंग बिवेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई।
सत-संगति मुद-मंगल-मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

सूचना—इसके चरणांत में दो गुरु वर्ण प्रायः रखे जाते हैं, इससे धारा ठीक रहती है। इसके दो चरणों को 'अर्धाली' कहते हैं। जैसे—
साधु-चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुन[1] मय फल जासू।

(५) पद्धरि—इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। ८,८ मात्राओं पर विश्राम होता है। तुकांत में जगण होता है। जैसे—

शुभ-सौम्य मूर्ति, तेजोनिधान। हो अन्य भानु-ज्यों भासमान।
ध्यानस्थ स्वस्थ, सद्धर्म-धाम। भगवान व्यास, तुमको प्रणाम।

(६) अरिल्ल—इसमें भी प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में भगण या यगण होता है। जैसे—

गुरु-पद-रज मृदु मंजुल अंजन। नयन-अमिय[2] दृग-दोष-बिभंजन।
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ रामचरित भव-मोचन[3]॥

सूचना—अरिल्ल आदि भी चौपाई के एक प्रकार के भेद ही हैं। 'रामचरित-मानस' में—जो दोहे-चौपाई में लिखा गया है—इनके लक्षणों से मेल रखनेवाली चौपाइयाँ भरी पड़ी हैं।

(७) पीयूषवर्ष—१० और ९ के विश्राम से प्रत्येक चरण में १९ मात्राएँ होती हैं। अंत में लघु-गुरु होते हैं। जैसे—

स्वर्ग का यह सुमन, धरती पर खिला।
नाम इसका उचित, ही है उर्मिला।

---

१ गुण और सूत। २ अमृत। ३ छुड़ानेवाला।

शील-सौरभ की तरंगे आ रहीं।
भव्य-भाव भवाब्धि[1] मे हैं ला रहीं॥

(८) प्लवंगम—इसके प्रत्येक चरण में २१ मात्राएँ होती है। चरण का आदि-वर्ण प्रायः गुरु रहता है। अंत मे प्रायः एक जगण और गुरु रहता है अथवा रगण (ऽ।ऽ)—कम-से-कम गुरु-लघु अवश्य रहें। ८, १३ पर विराम रहता है। जैसे—

बढ़ी पदो की ओर तरंगित सुरसरी,
मोद-भरी मदमत्तझूमती थी तरी[2]।
धो ली गुह[3] ने धूलि अहल्या-तारणी,
कवि की मानस-कोश-विभूति-विहारिणी॥

(९) रोला—इसके प्रत्येक चरण में ११,१३ के विश्राम से २४ मात्राएँ होती है। जिस रोला के चारो चरणों मे ग्यारहवी मात्रा लघु हो उसे 'काव्य छंद' कहते है। प्रायः इसके चरणांत मे दो गुरु रखे जाते है। पर अंत में चार लघु या भगण (ऽ।।) या सगण (।।ऽ) भी मिलते है। जैसे—

(क) नव उज्जल जलधार, हार-हीरक सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद, मध्य मुकता-मनि पोहति[4]॥
लोल[5] लहर लहि पवन, एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन-मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥
(ख) कबहुँ वायु सौं विचलि बंक गति लहरति धावै।
मनहुँ सेस सित[6]-वेस गगन ते उतरत आवै।
(ग) भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके।
हरके[7] बाहन रुकत नैनु नहि बिधि हरि-हर के॥

---

१ ससार-समुद्र। २ नौका। ३ निषादराज। ४ गुहती है। ५ चंचल। ६ उज्ज्वल। ७ रोकने से।

(घ) लागे करन बिचार बहुरि जग-हित अनहित पर।
पाप-पुन्य-फल-उचित-लाभ-मर्याद खचित पर॥

(१०) दिग्पाल—इसके प्रत्येक चरण में १२,१२ के विश्राम से २४ मात्राएँ होती है। इसकी पाँचवीं और सत्रहवीं मात्राएँ लघु होनी चाहिए। गानेवाला 'रेखता' इसी ढंग पर होता है।

हरि-नाम एक साँचो, सब झूठ है पसारा।
भाई न बाप कोई, तुव संग जानहारा।
रे मान बात मेरी, मायाहि त्यागि दीजै।
सब काम छाँड़ि मीता, इक राम-नाम लीजै॥

(११) रूपमाला—१४, १० के विश्राम से इसके प्रत्येक चरण मे २४ मात्राएँ होती है। अंत में गुरु-लघु (ऽ।) होने चाहिए। आदि मे एक त्रिकल (ऽ।) के बाद एक द्विकल का आना आवश्यक जान पड़ता है। इसका एक नाम 'मदन' भी है

वर्न-बर्न जहाँ-तहाँ बहुधा तने सुवितान[१]।
झालरैं मुकुतान की अरु झूमके बिन मान।
चौकठे मनि नील की फटिकान के सुकपाट।
देखि-देखि सो होत है सब देवता जनु भाट॥

(१२) विष्णुपद—१६ और १० के विराम से इसके प्रत्येक चरण मे २६ मात्राएँ रहती है। अंत में गुरु होता है।

प्रीति पतंग करी दीपक सो आपै प्रान दह्यो।
अलिसुत प्रीति करी जलसुत[२] सो संपुट विकट लह्यो।
सारँग[३] प्रीति करी जो नाद सो संमुख बान सह्यो।
हम जो प्रीति करी माधव सो चलत न कछू कह्यो॥

---

१ चँदोवा। २ कमल। ३ हरिण।

(१३) झूलना—इसके प्रत्येक चरण मे ७, ७, ७, ५ के विराम से २६ मात्राएँ होती है। अंत मे गुरु-लघु होते है।

तुम हौ अनंत अनादि सर्बग सर्बदा सर्बज्ञ।
अव एक हौ कि अनेक हौ महिमा न जानत अज्ञ[1]।
भ्रमियो करैं जन लोक चौदहु लोभ-मोह-समुद्र।
रचना रचो तुम ताहि जानत हौं न वेद न रुद्र॥

(१४) कामरूप—९, ७ और १० के विराम से इसके प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ होती है। अंत मे गुरु-लघु होते है। इसे कोई-कोई 'वेताल' भी कहते है।

सित पछ सुदसमी, विजय तिथि सुरबैद्य नखत[2] प्रकास।
कपि-भालु-दल-युत, चले रघुपति निरखि समय सुभास।
तरु कुधर[3] मुख नख, अस्त्र चित बुधि, वीर्य बिक्रम प्रूढ़[4]।
नभ भूमि जहँ-तहँ, भरे बनचर, राम-कृपा अरूढ़[5]॥

(१५) गीतिका—इसके प्रत्येक चरण मे १४, १२ के विश्राम से २६ मात्राएँ होती है। अंत में लघु-गुरु (IS) होते है। इसका मुख्य नियम यह है कि प्रत्येक चरण की तीसरी, दसवी, सत्रहवी और चौबीसवी मात्राएँ लघु रहें। अंत मे रगण (SIS) आ जाने से छंद श्रुतिमधुर हो जाता है।

वीर-मंडल की महाविद्या महामाया नही।
वालि की वनिता न समझो जीव की जाया[6] नहीं।
सत्य-सागर सूरमा हरिचंद की रानी नहीं।
आपने यह पाँचवीं तारा अभी जानी नही॥

---

१ मूर्ख। २ अश्विनी नक्षत्र। ३ पर्वत। ४ प्रौढ़। ५ स्थित। ६ स्त्री।

(१६) सरसी—१६ और ११ के विराम से इसके प्रत्येक चरण में २७ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु-लघु होते हैं। इसका दूसरा नाम 'समंदर' भी है।

पीड़ित की पीड़ा, भूखे की, क्षुधा, तृषित की प्यास।
उदासीनता निराश्रयों की, आशा-रहित उसास।
क्लेशित जाति के उन्नति-पथ के, कंटक चुनकर दूर।
प्रेमी परम तृप्त होता है, आह्लादित भरपूर॥

(१७) सार—इसके प्रत्येक चरण मे १६ और १२ के विराम से २८ मात्राएँ होती है। अंत मे दो गुरु रहते है। इसे 'ललितपद' भी कहते है।

जब गभीर तम अर्धनिशा मे, जग को ढक लेता है।
अंतरिक्ष की छत पर तारो, को छिटका देता है।
सस्मित वदन जगत का स्वामी, मृदु गति से आता है।
तट पर खड़ा गगनगंगा के, मधुर गीत गाता है॥

(१८) हरिगीतिका—इसके प्रत्येक चरण मे २८ मात्राएँ होती हैं। १६ और १२ पर विराम होता है। अंत मे लघु-गुरु (।ऽ) रहें। इसकी मात्राओं का क्रम यों होना चाहिए—२ + ३ + ४ + ३ + ४ ; ३ + ४ + ५। जहाँ चौकल है वहाँ जगण (।ऽ।) कभी न पड़े। अत मे रगण (ऽ।ऽ) ही अच्छा होता है। पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवी और छब्बीसवी मात्राएँ लघु रहने से इसकी गति ठीक रहती है।

वे मोह-बंधन-मुक्त थे, स्वच्छंद थे, स्वाधीन थे।
संपूर्ण सुख-संयुक्त थे, वे शांति-शिखरासीन थे।
मन से, वचन से, कर्म से, वे प्रभु-भजन मे लीन थे।
विख्यात ब्रह्मानंद-नद के, वे मनोहर मीन थे॥

(१९) चवपैया—१०, ८ और १२ के विराम से इसके प्रत्येक चरण मे ३० मात्राएँ होती है। इसके तुकांत मे एक सगण और एक गुरु (।।ऽऽ) रहना चाहिए, इससे यह अच्छा जान पड़ता है। इसके अंत मे गुरु अवश्य रहे। इसमें पहले द्विकल रखकर फिर चौकल रखे। सम के साथ सम और विषम के साथ विषम कल रहने से धारा ठीक रहेगी।

कह दुहुँ कर जोरी, अस्तुति तोरी, केहि बिधि करउँ अनंता[1]।
माया-गुन-ग्यानातीत[2] अमाना, वेद-पुरान भनंता।
करुना-सुख-सागर सब-गुन-आगर, जेहि गावहि श्रुति[3]-संता।
सो मम हित लागी, जन-अनुरागी, भयउ प्रगट श्रीकंता॥

(२०) ताटंक—१६ और १४ के विराम से इसके प्रत्येक चरण मे ३० मात्राएँ रहती है। अंत में भगण रहता है। लावनी भी इसी ढंग की होती है।

निरखि शत्रु की स्वर्णपुरी वह, मुझे दिशा-सी भूली थी।
नील जलधि में लंका थी या, नभ मे संध्या फूली थी।
भौतिक विभूतियो की निधि-सी छवि की छत्रच्छाया-सी।
यंत्रो मंत्रों तंत्रों की थी, वह त्रिकूटिनी[4] माया-सी॥

(२१) ककुभ—१६ और १४ के विश्राम से इसके प्रत्येक चरण मे ३० मात्राएँ रहती है। अंत मे दो गुरु रहते है।

गर्जन करता हुआ गगन में, जलधर क्या ही छवि पाता।
स्वर्ण शक्र-धनु[5] रत्न-खचित तनु है किरीट सा बन जाता।
विद्युद्दाम[6] पहन कर विधि से, शोभित होता है ऐसे।
मुकुलित लता गले लिपटा कर, अति सुंदर तरुवर जैसे॥

---

१ विष्णु। २ ज्ञान से परे। ३ वेद। ४ तीन शिखरोवाली। ५ इंद्र-धनुष। ६ बिजलीरूपी माला।

सूचना—इसे 'ताटंक' का एक भेद ही समझना चाहिए।

(२२) वीर—१६ और १५ के विश्राम से इसके प्रत्येक चरण मे ३१ मात्राएँ होती है। अंत मे गुरु-लघु होते हैं। इसे 'आल्हा' भी कहते हैं।

सुमिरि भवानी जगदंबा का, श्रीसारद के चरन मनाय।
आदि सरस्वति तुमका ध्यावौं, माता कंठ विराजौ आय।
जोति बखानौं जगदंबा कै, जिनकी कला बरनि ना जाय।
सरद चंद-सम आनन राजै, अति छबि अंग-अंग रहि छाय॥

(२३) त्रिभंगी—इसका प्रत्येक चरण ३२ मात्राओ का होता है। १०, ८, ८, ६ पर विश्राम होता है। अंत मे गुरु होता है। इसके किसी चौकल मे जगण (।ऽ।) कभी न पड़े।

जेहि पद सुरसरिता, परम पुनीता, प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद-पंकज, जेहि पूजत अज, मम सिर धरेउ कृपाल हरी।
एहि भाँति सिधारी, गौतम नारी, बार-बार हरि-चरन परी।
जो अति मन-भावा, सो वर पावा, गइ पतिलोक अनंद-भरी॥

(ख) अर्धसम

(१) वरवै—इसके विषम (पहले-तीसरे) चरणों मे १२ और सम (दूसरे-चौथे) में ७ मात्राएँ होती है। इसलिए इसके प्रत्येक दल* में १६-१६ मात्राएँ रखी जाती हैं। सम चरणों मे तुकांत मिलता है और जगण (।ऽ।) अच्छा होता है।

अब जीवन कइ है कपि, आस न कोइ।
कनगुरिया कइ मुँदरी, कँगना होइ॥

(२) दोहा—इसके विषम (पहले-तीसरे) चरणों मे १३-१३

---

* देखो पृष्ठ २१७।

तथा सम (दूसरे-चौथे) में ११-११ मात्राएँ होती है। विषम चरणो के आरंभ मे जगण न रहे। सम चरणो के अंत मे गुरु-लघु होने चाहिए।

> अपनै-अपनै मत लगे, बादि[1] मचावत सोरु।
> ज्यौं-त्यौं सबकौ सेइबौ, एकै नंदकिसोरु ॥

(३) सोरठा—यह दोहे का उलटा होता है। दोहे के सम चरण सोरठे के विषम और दोहे के विषम चरण इसके सम चरण हो जाते है। इसके विषम चरणों में ११-११ तथा सम मे १३-१३ मात्राएँ होती है।

> जाचै बारह मास, पियै पपीहा स्वाति-जल।
> जान्यो 'तुलसीदास', जोगवत नेही मेह[2]-मन ॥

(ग) विषम

(१) कुंडलिया—इसमे २४-२४ मात्राओ के छह चरण रहते है। इस प्रकार कुल १४४ मात्राओ का यह मात्रिक विषम है। आदि के दो चरणो से दोहा रहता है जो दो दलो मे लिखा रहता है। आगे रोला जोड़ देने से यह छंद बन जाता है। दोहे के आदि के कुछ शब्दो का रोला के चौथे चरण के अंतिम शब्दो के साथ, और दोहे के चौथे चरण का रोला के आदि से सिहावलोकन होना आवश्यक है। कुंडलिया के पाँचवे चरण के पूर्वार्द्ध मे प्रायः कविनाम रहता है।

देखिए ऊपर 'यमक' अलङ्कार।

१ व्यर्थ। २ मेघ, बादल।

चिंता-ज्वाल सरीर-बन, दावा[1] लगि-लगि जाय।
प्रगट धुवाँ नहि देखियत, उर अंतर धुँधुवाय[2]।
उर-अंतर धुँधुवाय, जरै ज्यों काँच की भट्टी।
जरि गो लोहू-माँस, रहि गई हाड़ की टट्टी।
कह 'गिरिधर कबिराय' सुनो रे मेरे मिता[3]।
वे नर कैसे जियै, जाहि तन ब्यापै चिंता॥

(२) छप्पय—यह भी छह चरणो का मात्रिक विपम है। इसमे पहले २४-२४ मात्राओं के चार चरण रोला के होते है। अंतिम दो चरणो से या तो २८-२८ मात्राओ के उल्लाल छंद के दो दल होते है अथवा २६-२६ मात्राओ के उल्लाल के दो दल।

(क) नीलांबर परिधान,[4] हरित पटपर[5] सुंदर है।
सूर्य-चंद्र युग मुकुट, मेखला[6] रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मंडन[7] है।
बंदीजन खग-वृंद, शेप-फन सिहासन है।
करते अभिषेक पयोद[8] है बलिहारी इस वेश की।
हे मातृभूमि, तू सत्य ही, सगुण-मूर्ति सर्वेश[9] की॥

(ख) भीति[10] भंजिनी भुजा, शक्ति दलिता आहो की।
उमड़े उर की आग, दवा दारुण दाहो[11] की।
शौर्य-धैर्य की धरा, सपूती की शुचि शाला।
भाग्य-चक्र की धुरी, विजय की मंजुल माला।
रण-चंडी की संगिनी, विभीषिका की धार है।
काली का अवतार है, नहीं! नहीं!! तलवार है॥

(३) अमृतध्वनि—इसमें भी कुंडलिया की तरह आदि

---

१ दावाग्नि। २ सुलगता है। ३ मित्र। ४ वस्त्र (धोती)। ५ मैदान। ६ करधनी। ७ गहने। ८ बादल। ९ भगवान्। १० भय। ११ जलन।

मे एक दोहा रहता है, जो दो पंक्तियों में रखा जाता है। इसलिए प्रत्येक पंक्ति में २४ मात्राएँ हो गई, क्योंकि दोहे के पहले (१३) और दूसरे (११) चरणों की मात्राएँ मिलाने से २४ मात्राएँ होती है। शेप चार चरणों में भी प्रत्येक में २४ मात्राएँ रहती है। इसमें दोहे के अंतिम चरण की ११ मात्राओं मे से तुकांत की तीन मात्राओं को छोड़कर आठ मात्राओं का एक उग्र-ध्वनि का शब्द बना लिया जाता है। जिसमे मीलित वर्ण अधिक होते है। तीसरे चरण के आरंभ में दोहे के चौथे चरण की आवृत्ति होती है। उक्त आठ मात्रावाले शब्द के ही जोड़-तोड़ मे ७-८ मात्राओं के दो और मीलित वर्णों के शब्द आकर २४ मात्रा पूर्ण कर देते हैं। ये दोनो शब्द पहले की मात्रा, व्यंजन आदि से मिलते भी रह सकते हैं और भिन्न भी। शेष तीन चरणों में भी ८, ८ के विश्राम से मीलित वर्णों के तीन शब्द रहते है। अंतिम चरण के अंतिम शब्द कुंडलिया की ही भाँति सिंहावलोकन के ढंग के रहते है। यह वीर रस का छंद है।

लिय जिति दिल्ली मुलुक सब, सिव सरजा जुरि जंग।
भनि 'भूषन' भूपति भजे, भंगग्गरब तिलंग[१]।
भंगगरब तिलंगग्गयउ, कलिंगग्गलि[२] अति।
दुंदद्दबि[३] दुहु दंदद्दलनि, बिलंदद्दहसति[४]।
लच्छच्छिन करि म्लेच्छच्छय,[५] किय रच्छच्छबि छिति।
हल्लल्ललगि[६] नरपल्लल्लरि,[७] परनल्लल्लिय जिति[८]॥

---

१ तैलंग देश का गर्व भंग हो गया। २ उडीसा। ३ युद्ध में दब-कर। ४ भारी भय। ५ क्षण में लाखों म्लेच्छो को नष्ट करके। ६ धावा बोलकर। ७ राजाओं से लडकर। ८ परनाला जीत लिया।

(११) वर्ण-वृत्त

(१) इंद्रवज्रा—यह ११ वर्णों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'त त ज ग ग' (SSI SSI ISI S S) रहते हैं।

आधार कोई जिनका नहीं है। हा ! दुःख ही दुःख सभी कहीं है।
तू ही उन्हें आकर गोद लेती। हे मृत्यु तू ही चिर-शांति देती ॥

(२) उपेंद्रवज्रा—यह भी ११ अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'ज त ज ग ग' (ISI SSI ISI S S) रहते हैं। 'इंद्रवज्रा' का पहला अक्षर लघु कर देने से उपेंद्रवज्रा वृत्त बनता है।

बलाभिमानी धरणी-धनेश[1]। कहो, कहाँ है अब वे जनेश[2] ?
चले गए हैं सब आप-आप। हुआ न दो ही दिन का प्रताप ?
इस छंद के पदांत के वर्ण विकल्प से दीर्घ ही माने जायँगे।

सूचना—'इंद्रवज्रा' और 'उपेंद्रवज्रा' के चरणों के मिलने से कई प्रकार के छंद बनते हैं, जिन्हें 'उपजाति' कहते हैं। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

सद्धर्म का मार्ग तुम्हीं बताते। तुम्हीं अघों[3] से हमको बचाते।
हे ग्रंथ, विद्वान तुम्हीं बनाते। तुम्हीं दुखों से हमको छुड़ाते ॥

यहाँ 'तुम्हीं' में 'तु' ह्रस्व ही है।

(३) रथोद्धता—प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं। उनका स्वरूप होगा—र न र ल ग (SIS III SIS IS)।

चित्रकूट तब रामजू तज्यो। जाय यज्ञथल अत्रि को भज्यो[4]।
राम लक्ष्मण-समेत देखियो। आपनो सफल जन्म लेखियो ॥

---

१ पृथ्वी और धन के स्वामी। २ राजा। ३ पाप। ४ पहुँचे।

(४) दोधक—प्रत्येक चरण में ११ वर्ण रहते हैं। स्वरूप होगा—भ भ भ ग ग (SII SII SII S S)।

भागत है भट यौं लव[1] आगे। राम के नाम तें ज्यौं अघ भागे।
यूथप-यूथ यौं मारि भगायो। वात[2] बड़ी जनु मेघ उड़ायो।

(५) वंशस्थविलम्—यह १२ अक्षरों का वृत्त है। प्रत्येक चरण मे 'ज त ज र' (ISI SSI ISI SIS) होता है।

सशांति आते उड़ते निकुंज मे। सशांति जाते ढिग थे प्रसून[3] के।
वने महा-नीरव-शांत-संयमी। सशांति पीते मधु को मिलिंद[4] थे॥

(६) तोटक—यह भी १२ वर्णों का वृत्त है। प्रत्येक चरण में चार सगण (IIS IIS IIS IIS) होते है।

रहि पूरि बिमाननि व्योम-थली। तिनको जनु टारन भूमि चली।
परिपूरि अकासहि धूरि रही। सु गयो मिटि सूर[5] प्रकास सही॥

(७) स्रग्विणी—१२ अक्षरों का वृत्त है। इसमें चार रगण (SIS SIS SIS SIS) होते है।

जोर ही लक्ष्मणै लेन लाग्यो जही।
मुष्टि छाती हनूमंत मार्‍यो तहीं।
आसु ही प्रान को नास-सो ह्वै गयो।
दंड द्वै-तीनि मे चेत ताको भयो॥

(८) भुजंगप्रयात—यह भी १२ अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण मे चार यगण (ISS ISS ISS ISS) रहते है।

---

१ राम के पुत्र। २ वायु। ३ पुष्प। ४ भ्रमर। ५ सूर्य।

कहूँ किन्नरी किन्नरी[1] लै बजावैं।
सुरी[2] आसुरी[3] बाँसुरी गीत गावैं।
कहूँ यच्छिनी पच्छिनी[4] लै पढ़ावैं।
नगी-कन्यका[5] पन्नगी[6] को नचावैं॥

(९) द्रुतविलंबित—इसमें १२ वर्ण होते हैं। प्रत्येक चरण में 'न भ भ र' (।।। ऽ।। ऽ।। ऽ।ऽ) होते है। इसे 'सुंदरी' भी कहते है।

मन, रमा[7], रमणी, रमणीयता।
मिल गई यदि ये विधि-योग से।
पर जिसे न मिली कविता-सुधा।
रसिकता सिकता[8]-सम है उसे॥

(१०) मौक्तिकदाम—इसके प्रत्येक चरण मे ४ जगण (।ऽ। ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ।) रहते हैं।

छल्यो बलि को नहिं भूतल नाप।
छले बलि के कर सों प्रभु आप।
सदा जय पूरन विश्व-महेंद्र।
सदा जय भक्त - भविष्य - सुरेंद्र॥

(११) वसंततिलका—यह चौदह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण मे 'त भ ज ज ग ग' (ऽऽ। ऽ।। ।ऽ। ।ऽ। ऽ ऽ) रहते है।

रे क्रोध, जो सतत अग्नि विना जलावे।
भस्मावशेष नर के तनु को बनावे।

---

१ सारगी। २ देवकन्या। ३ असुरों की कन्याएँ। ४ पक्षी, मैना आदि। ५ पर्वतकन्या। ६ सर्पकन्या। ७ लक्ष्मी। ८ बालू।

ऐसा न और तुझ-सा जग-बीच पाया।
हारे विलोक हम किंतु न दृष्टि आया॥

(१२) मालिनी—यह १५ अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण मे 'न न म य य' (III III SSS ISS ISS) होते है। इसमे ८, ७ अक्षरों पर विराम रहता है।

क्षितिज-निकट कैसी, लालिमा दीखती है?
वह रुधिर रहा है, कौन-सी कामिनी का?
विहग विकल हो हो, बोलने क्यों लगे है?
सखि, सकल दिशा मे, आग-सी क्यों लगी है?

(१३) चामर—१५ वर्ण, गणरूप 'र ज र ज र' (SIS SI SIS ISI SIS)। इसे केशवदास ने 'नाराच' लिखा है।

मत्त दंतिराज-राजि[1] बाजिराज-राजि[2] कै।
हेम[3]-हीर-हार मुक्त[4] चीर चारु साजि कै।
वेप-बेष बाहिनी[5] असेष वस्तु सोधियो।
दायजो विदेहराज भाँति-भाँति को दियो॥

(१४) पंचचामर—प्रत्येक चरण मे १६ अक्षर। गणरूप 'ज र ज र ज ग' (ISI SIS ISI SIS ISI S) होता है।

भली कही भरत्थ तैं उठाउ आगि अंग ते।
चढ़ाइ चोपि[6] चाप आप बान लै निषंग ते।
प्रभाउ आपनो दिखाउ छाँडि बाल भाइ कै।
रिझाउ राजपुत्र मोहि राम लै छड़ाइ कै॥

(१५) शिखरिणी—इसमे १७ अक्षर होते हैं। ६, ११

---

१ हाथियो की पंक्ति। २ घोड़ों की पंक्ति। ३ सोना। ४ मोती। ५ सेना। ६ उत्साहित होकर।

पर विश्राम होता है। प्रत्येक चरण में गणरूप 'य म न स भ ल ग' (ISS SSS III IIS SII I S) होता है।

किए जाने से भी, फिर-फिर सदा प्रश्न तुमसे।
नहीं होते जी में, कुपित तुम हे ग्रंथ, हमसे।
तथा शिक्षा देते, तुम नित बिना ताड़न[1] हमे।
अतः हो क्यों प्यारे, फिर तुम हमारे न जग मे॥

(१६) मंदाक्रांता—इसमे १७ वर्ण होते है। प्रत्येक चरण में गणरूप 'म भ न त त ग ग' (SSS SII III SSI SSI S S) होता है। ४, ६, ७ पर विश्राम रहता है।

तारे डूबे, तम टल गया, छा गई व्योम-लाली।
पंछी बोले, तमचुर[2] जगे, ज्योति फैली दिशा मे।
शाखा डोली, सफल-तरु की, कंज फूले सरो मे।
धीरे-धीरे, दिनकर[3] कढ़े, तामसी[4] रात वीती॥

(१७) शार्दूलविक्रीड़ित—१६ अक्षर का वृत्त है। १२, ७ पर विश्राम होता है। गणरूप 'म स ज स त त ग' (SSS IIS ISI IIS SSI SSI S) होता है।

प्रातःकाल अपूर्व-यान[5] मँगवा, औ साथ ले सारथी।
ऊधो गोकुल को चले सदय हो, स्नेहांबु से भीगते।
वे आए जिस काल कांत व्रज मे, देखा महा मुग्ध हो।
श्रीवृंदावन की मनोज्ञ[6] मधुरा, श्मामायमाना[7] मही॥

(१८) स्रग्धरा—२१ अक्षर का वृत्त है। गणरूप 'म र भ न य य य' (SSS SIS SSS III ISS ISS ISS) होता है। विश्राम ७, ७, ७ पर होता है।

---

१ दड। २ मुर्गा। ३ सूर्य। ४ अंधकारयुक्त। ५ सवारी। ६ सुदर। ७ श्याम रंग में रँगी।

हे दुर्गे विश्वधात्री, जननि भगवती, हे शिवे हे भवानी।
भार्ये कल्याणि वाणी, भव-भयहरणी, चंडि त्रैलोक्य-रानी।
पा के भी हाय माता, हम सब तुम-सी, ईश्वरी शक्तिशाली।
होंगे संसार में क्या, न अब फिर सुखी, तोड़ दुखार्ति-जाली॥

सवैया

(१६) मदिरा—प्रत्येक चरण में ७ भगण (ऽ।।) और एक गुरु रखने से २२ अक्षर होते है।

सिंधु तर्यो उनको बनरा तुम पै धनु-रेख गई न तरी।
बाँदर बाँधत सो न बँध्यो उन वारिधि बाँधि कै बाट करी।
श्रीरघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हैँ दसकंठ न जानि परी।
तेलहु तूलहु[1] पूँछि जरी न जरी जरी लंक जराय-जरी[2]॥

(२०) चकोर—प्रत्येक चरण मे ७ भगण और गुरु-लघु—इस प्रकार २३ अक्षर (भ भ भ भ भ भ भ ग ल) होते है।

सावन के ढिग आवन मे वह नारि के प्रान बचावन काज।
बादर-दूत बनावन को कुसलात-सँदेस पठावन काज।
लै कर फूलन फूल नए मन-कल्पित अर्घ बनावन काज।
बोलन प्रीति के बोल लग्यो हँसते मुख नेह बढ़ावन काज॥

(२१) मत्तगयंद—यह सवैया बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध है। इसके प्रत्येक चरण मे सात भगण और दो गुरु होते है। इसे मालती और इंदव भी कहते है।

मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक-अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ, कथा हरि-नाम की बात अनूठी बनाइ सुनावै।

---

१ रूई भी। २ रत्न-जटित।

'ठाकुर' सो कवि भावत मोहिं जो राजसभा में बड़प्पन पावै।
पंडित और प्रबीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त[1] कहावै॥

(२२) सुमुखी—इसके प्रत्येक चरण में सात जगण (।ऽ।) और लघु-गुरु—सब मिलाकर २३ अक्षर होते हैं।

गहौ पद-पंकज जाहि लखे सिव[2], गंग-तरंग बही जिनते।
लजै रबि-नंदिनि[3] जा परसे, असते नहिं दोप दुसै[4] तिनते।
निसा-मद-मोह, महादुख-दानव, राम-कृपाहि मिटे किन ते[5]?
रटौ निसि-वासर नाम-उदारन, लोकन मे न बड़ो इनते॥

(२३) किरीट—यह ८ भगण (ऽ।।) का सवैया है।

बालि बली न बच्यौ पर-खोरहिं[6] क्यों बचिहौ तुम आपनी खोरहि।
जा लगि छीर-समुद्र मथ्यो कहि कैसे न बाँधि है बारिधि थोरहि।
श्रीरघुनाथ गनौ असमर्थ न देखि बिना रथ हाथिन घोरहि।
तोर्यो सरासन संकर को जेहि सोऽब कहा तुव लंक[7] न तोरहि॥

(२४) मुक्तहरा—इसमें आठ जगण (।ऽ।) होते है।

लसैं रद[8] उज्जल मोती-समान, वही छबि मोहनी मंजु रसाय[9]।
मनोहर हैं तिन सो दोउ ओठ, वही श्रुति-सोभा रही सरसाय।
भले दृग स्यामल औ रतनार सुहावत यद्यपि तेज जगाय।
तऊ इनमें बिलसै वही चारु पिया के कटाच्छन की समताय[10]॥

(२५) दुर्मिल—इस सवैया मे आठ सगण (।।ऽ) होते हैं।

तन को दुति स्याम-सरोरुह-लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि-भरे, छवि भूरि[11] अनंग की दूरि धरैं।
दमकैं दँतियाँ दुति-दामिनि ज्यो, किलकैं कल बाल-विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी'-मन-मंदिर बिहरैं॥

---

१ कविता। २ कल्याण। ३ यमुना। ४ दुःसह। ५ क्या वे नहीं मिट गए। ६ अपराध। ७ लका। ८ दाँत। ९ छिटकाकर। १० समता। ११ अत्यंत।

(२६) वाम—इसमे सात जगण (।ऽ।) और एक यगण (।ऽऽ) होता है।

अतरध्यान विरोध भयो, हिय सांत सुभाय ने रंग जमायो।
ऐंठ न जानै गई कित कों, अरु नम्रता ने अति मोहि नवायो।
दर्सन सो इनके झट ही, यह जानि परै बस काऊ[1] के आयो।
साँचु ही तीरथ को सो प्रभाव अनूपम ऐसेनु मे बिरमायो॥

(२७) अरसात—इसमे सात भगण (ऽ।।) और एक रगण (ऽ।ऽ)—इस प्रकार २४ अक्षर होते है।

लाज धरौ सिवजू सों लरौ सब सैयद सेख पठान पठाय कै।
'भूषन' ह्याँ गढ़-कोटन हारे उहाँ तुम क्यो मठ तोरे रिसाय कै।
हिंदुन के पति सों न बिसात[2] सतावत हिंदु गरीबन पाय कै।
लीजै कलंक न दिल्लि के बालम[3]आलम[4] आलमगीर[5] कहाय कै॥

(२८) सुंदरी—इसमें आठ सगण (।।ऽ) और एक गुरु वर्ण—कुल पच्चीस अक्षर होते है।

भुव-भारहि संयुत राकस को गन जाय रसातल मे अनुराग्यो।
जग मे जय शब्द समेतहि 'केसव' राज बिभीषन के सिर जाग्यो।
मय-दानव-नंदिनि के सुख सो मिलिकै सिय के हिय को दुख भाग्यौ
सुर-दुंदुभि-सीस गजा[6]सर राम को रावन के सिर साथहि लाग्यो॥

दंडक

(२९) मनहरण—यह दंडक-वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण मे ३१ अक्षर होते है। १६ और १५ अक्षरों पर विराम होता है और अंत मे कम-से-कम एक गुरु वर्ण अवश्य रहता है। इसे

१ किसी के। २ बस नहीं चलता। ३ स्वामी। ४ संसार मे। ५ ससार के रक्षक; औरंगजेब का नाम। ६ वह लकडी जिससे नगाडा बजाते हैं।

केवल कवित्त अथवा घनाक्षरी भी कहते है। यह अत्यंत प्रचलित छंद है।

उकुति अनेक ही पै एकहू न कही परै,
टेक तौ हमारी कैकईहू ते सठिन है।
कहै 'पद्माकर' न छाया है न छमा[1] की ऐसी,
काया कलि[2]-क्रोध-मोह-माया की मठिन[3] है।
यातें गुह[5] गीध[6] लौं सो बीधियो न[7] मोसों राम,
मेरी मति घोर या कठोर कमठिन[8] है।
लंका-गढ़ तोरिबे तें रावन सो रोरिबे तें[9],
मोहिं भव-बंधन तें छोरिबो कठिन है॥

(३०) रूप-घनाक्षरी—इस घनाक्षरी के प्रत्येक चरण में १६, १६ वर्णों के विराम से बत्तीस अक्षर होते हैं। अंत मे एक 'लघु' होता है।

प्रभु-रुख पाइ के[10] बोलाइ बाल-घरिनिहि[11],
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि-घेरि।
छोटो-सो कठौता भरि आनि[12] पानी गंगाजू को,
धोइ पाँय पीयत पुनीत वारि फेरि-फेरि।
'तुलसी' सराहै ताको भाग सानुराग सुर,
बरषै सुमन जय-जय कहै टेरि-टेरि।
विबुध-सनेह-सानी बानी असयानी[13] सुनि
हँसे रावो[14] जानकी-लखन-तन[15] हेरि-हेरि॥

---

१ पृथ्वी। २ शरीर। ३ पाप। ४ घर। ५ निषादराज। ६ जटायु। ७ मत लगना। ८ कच्छपी। ९ लड़ने से। १० स्वीकृति पाकर। ११ बालक और स्त्री को। १२ लाकर। १३ निष्कपट। १४ राघव, रामचंद्र। १५ ओर।

(३१) कृपान-घनाक्षरी--प्रत्येक चरण में ८, ८ के विराम रहते है। अंत में गुरु-लघु होते है। इसमें विश्राम सानुप्रास भी होता है।

(क) चली खेत रनथंभ के बिषम तरवार,
मार-मार मुख कढ़त मढ़त तन धाइ।
परे अंग कटि सुभट तुरंग न चलत,
चरबी के चहले में चलि सकत न पाइ।
भरे कुंडन रुधिर रन रुंडन की रासि,
भखैं माँस खग जंबुक पिसाच समुदाइ।
तहाँ बीर बलवान चहुँआन रन-धीर,
खग्ग बाहत हमीर हठधारी हरषाइ॥

(ख) चली ह्वै कै बिकराल, महाकालहू को काल,
किए दोऊ दृग लाल, धाइ रन समुहान[1]।
जहाँ क्रुद्ध ह्वै महान, युद्ध करि घमसान,
लोथि-लोथि पै लदान, तड़पी ज्यो तड़ितान[2]।
जहाँ ज्वाला कोटि भान,[3] के समान दरसान,
जीव जंतु अकुलान, भूमि लागी थहरान।
तहाँ लागे लहरान, निसिचरहू परान,
वहाँ कालिका रिसान, झुकि झारी किरपान॥

(३२) देव-घनाक्षरी—इस घनाक्षरी के प्रत्येक चरण मे ८, ८, ८, ९ के विराम से ३३ अक्षर होते है। अंत के तीन अक्षर लघु रहते हैं।

---

१ संमुख हुई। २ तडिद्वान्, बिजली। ३ भानु, सूर्य।

झिल्ली[1] झनकारैं[2] पिक[3] चातक पुकारैं बन,
मोरनि गुहारैं[4] उठै जुगुनू चमकि-चमकि।
घोर-घन-कारे भारे धुरवा[5] धुरारे[6] धाय,
धूमनि मचावैं नाचै दामिनो दमकि-दमकि।
भूकनि बयारि[7] बहै, लूकनि[8] लगावै अंग,
हूकनि[9] भभूकनि[10] की उर मैं खमकि-खमकि[11]।
कैसे करि राखौ प्रान प्यारे जसवंत बिना,
नान्हीं-नान्हीं बूँद झरैं मेघवा झमकि-झमकि[12]॥

---

१ झींगुर। २ बोलते हैं। ३ कोयल। ४ जोर से बोलते हैं। ५ बादलों के स्तंभ। ६ धूल से बने हुए। ७ वायु तेजी के साथ चलती है। ८ लुक, आग। ९ पीड़ा। १० ज्वाला। ११ उमड़ घुमड़। १२ घिर-घिरकर।

अँगरेजी पर्याय

[रस और अलंकार के]

रस (Flavour)

अद्भुत, Marvellous.
करुण, Pathetic.
वीभत्स, Disgustful.
भयानक, Terrible.
रौद्र, Furious.
वीर, Heroic.
शांत, Quietistic.
शृंगार, Erotic.
हास्य, Comic.

स्थायी भाव (Under-lying Emotion)

आश्चर्य, Surprise.
उत्साह, Magnanimity.
क्रोध, Resentment.
जुगुप्सा, Disgust.
भय, Fear.
रति, Love
शम या निर्वेद, Quietism.
शोक, Sorrow.
हास, Mirth.

संचारी भाव (Accessary Emotion)

अपस्मार, Dementedness.
अमर्ष, Impatience of Opposition.
अवहित्थ, Dissembling.
असूया, Envy.
आलस्य, Indolence.
आवेग, Flurry.
उग्रता, Sternness.
उत्सुकता, Longing.
उन्माद, Derangement.
गर्व, Arrogance.
ग्लानि, Debility.
चपलता, Unsteadiness.
चिंता, Painful Recollection.
जडता, Stupefaction.
त्रास, Alarm.
दीनता, Depression.
धृति, Equanimity.
निद्रा, Drowsiness.
निर्वेद, Quietism.
मति, Resolve.
मद, Intoxication.
मरण, Death.
मोह, Distraction.
वितर्क, Debate.
विबोध, Awakening.

विषाद, Despondency.
व्याधि, Sickness.
व्रीडा, Shame.
शका, Apprehension.
श्रम, Weariness.
स्मृति, Recollection.
स्वप्न, Dreaming.
हर्ष, Joy.

अनुभाव (Ensuants)

अश्रु, Tears
कप, Trembling
प्रलय, Fainting.
रोमाच, Thrill.
वैवर्ण्य, Change of Colours.
सात्विक, Internal Indication of Emotion.
स्तभ, Arrest of Emotion.
स्वरभंग, Disturbance of Speech.
स्वेद, Perspiration.

विभाव (Excitant)

आलंबन, Essential.
उद्दीपन, Enhancing

अलंकार (Ornament)

अतद्गुण, Non-Borrower.
अतिशयोक्ति, Hyperbole.
अत्युक्ति, Exaggeration.
अधिक Exceeding.
अनन्वय, Self Comparison.
अनुप्रास, Alliteration.
अपह्नुति, Concealment.
अप्रस्तुतप्रशंसा, Indirect Description.
अर्थांतरन्यास, Corroboration.
अर्थालंकार, Ornaments of Senses.
असंगति, Disconnection.
आक्षेप, Paralepsis.
उत्प्रेक्षा, Poetical Probability.
उदात्त, Exalted.
उन्मीलित, Discovered.
उपनागरिका वृत्ति, Moderate Repetition.
उपमा, Simile or Comparison
उपमेयोपमा, Reciprocal Comparison
उल्लास, Sympathetic Result.
उल्लेख; Representation.
एकावली, Necklace.
काव्यार्थापत्ति, Necessary Conclusion.
कारणमाला, Garland of Causes.
काव्यलिंग, Poetical Reason.
कोमला वृत्ति, Delicate Repetition.

छेकानुप्रास, Single Alliteration.
तद्गुण, Borrower
तुल्ययोगिता, Equal Pairing.
दीपक, Illustration.
दृष्टांत, Examplification.
निदर्शना, Illustration.
परिकर, Significant.
परिकरांकुर, Passing significance.
परिणाम, Commution.
परिवृत्ति, Barter.
परिसंख्या, Special Mention.
परुषा वृत्ति, Harsh Repetition.
पर्यायोक्ति, Periphrasis.
पिहित, Concealed.
पूर्णोपमा, Complete Comparison.
प्रतिवस्तूपमा, Parallel.
प्रतीप, Converse.
प्रत्यनीक, Revalry.
भ्रांतिमान्, Error.
मीलित, Lost.
यथासंख्य, Relative Order.
यमक, Pun.
रूपक, Mataphor.
लाटानुप्रास, Alliteration of Words.

लुप्तोपमा, Elliptical Comparison.
वक्रोक्ति, Crooked Speech.
विभावना, Peculiar Causation.
विरोध, Antithesis,
विशेषोक्ति, Peculiar Allegation.
विषम, Unequal.
वृत्त्यनुप्रास, Multiple Alliteration.
व्यतिरेक, Excellence.
व्याजस्तुति, Artful Praise and Artful Blame.
शब्दालंकार, Verbal Ornaments.
श्लेष, Paronomasia.
संदेह, Doubt.
समासोक्ति, Speech of Bravity.
समुच्चय, Conjunction.
सहोक्ति, Connected Description.
सूक्ष्म, Subtle.
स्मरण, Reminiscence.
स्वभावोक्ति, Description of Nature.